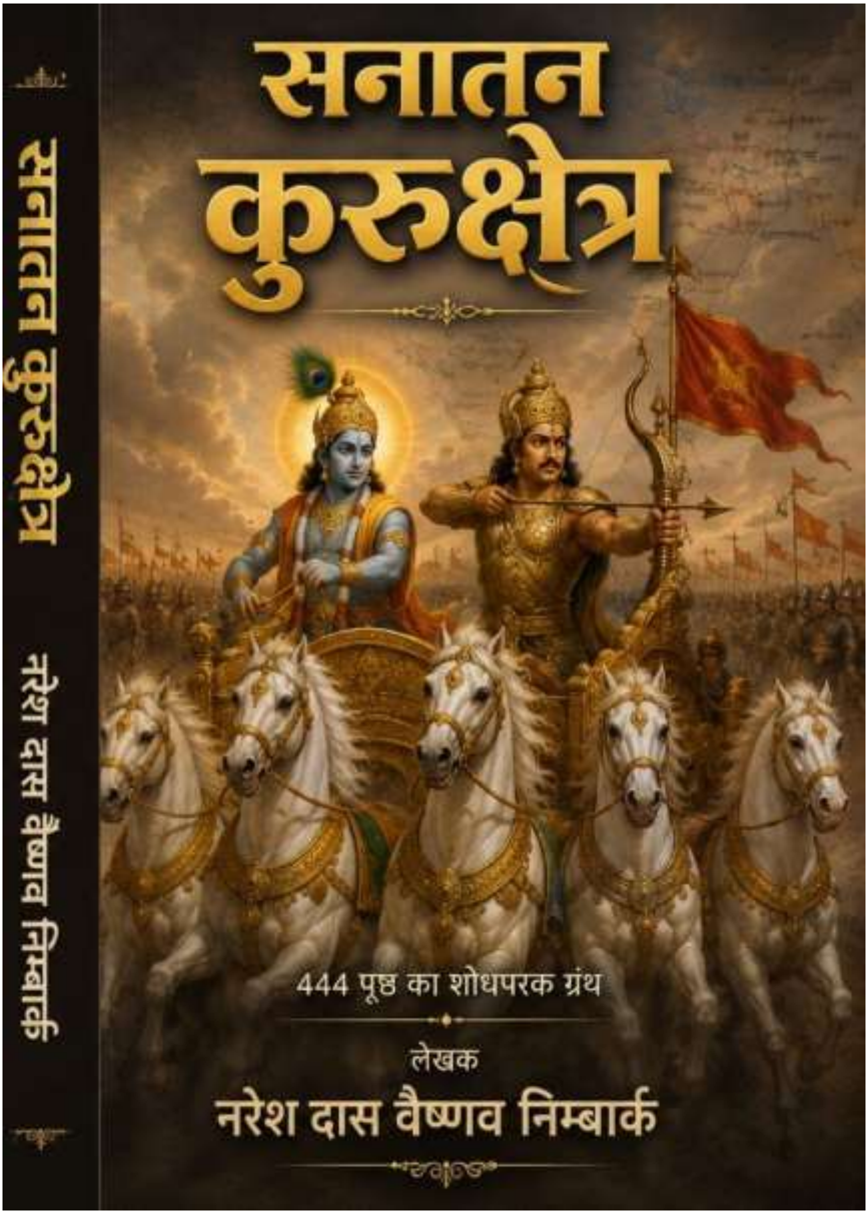
सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि



समर्पण

यह ग्रंथ समर्पित है–

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी को, जिनकी उत्तरवेदी के रूप में धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की महिमा सनातन ग्रंथों में अमर है।

माँ सरस्वती को, जिनकी दिव्य धारा ने इस पुण्यभूमि को वैदिक ज्ञान, यज्ञ, तप और संस्कृति का केन्द्र बनाया।

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण को, जिन्होंने इसी धर्मक्षेत्र में अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश देकर समस्त मानवता को कर्म, धर्म और मोक्ष का शाश्वत मार्ग प्रदान किया।

ऋषियों, मुनियों, आचार्यों, संतों, महात्माओं तथा उन असंख्य ज्ञात-अज्ञात तपस्वियों को, जिनकी साधना और त्याग ने कुरुक्षेत्र की पवित्र परंपरा को युगों-युगों तक जीवित रखा।

तथा

उन सभी शोधकर्ताओं, इतिहासकारों, पुरातत्वविदों, विद्वानों और तीर्थयात्रियों को, जो सत्य की खोज, सनातन संस्कृति के संरक्षण और भारतीय ज्ञान-परंपरा के पुनर्जागरण के लिए निरंतर समर्पित हैं।

सादर समर्पित।

–नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

सर्वाधिकार सूचना / Copyright Notice

यह ग्रंथ शास्त्रीय ग्रंथों, सरकारी अभिलेखों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों, प्रामाणिक शोध-सामग्री तथा लेखक के दीर्घकालीन क्षेत्रीय अध्ययन पर आधारित एक मौलिक शोध-कृति है। जहाँ किसी विषय पर विभिन्न मत उपलब्ध हैं, वहाँ उन्हें निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया है; तथा जहाँ कोई विवरण स्थानीय परंपरा अथवा जनश्रुति पर आधारित है, वहाँ उसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

अस्वीकरण (Disclaimer):

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

इस ग्रंथ में व्यक्त विचार, निष्कर्ष तथा व्याख्याएँ लेखक के स्वतंत्र शोध पर आधारित हैं। तथ्यात्मक भूलों की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता; ऐसी किसी त्रुटि का ध्यान आने पर आगामी संस्करण में यथोचित संशोधन किया जाएगा।

संपर्क / Contact: www.nareshswaminimbark.in

भूमिका

कुरुक्षेत्र केवल एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं, अपितु भारतीय सभ्यता, वैदिक संस्कृति और सनातन धर्म की उन महान स्मृतियों का जीवंत प्रतीक है, जिन्होंने सहस्राब्दियों से मानवता को धर्म, ज्ञान, तप, यज्ञ और कर्तव्य का मार्ग दिखाया है। यही वह पावन भूमि है जहाँ सृष्टि-चिंतन की प्राचीन परंपरा, वैदिक ऋषियों की तपस्या, सरस्वती नदी की सांस्कृतिक धारा तथा भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से प्रकट श्रीमद्भगवद्गीता का अमर संदेश—ये सब एक-दूसरे से जुड़कर विश्व इतिहास की अनुपम धरोहर का रूप ले लेते हैं।

कुरुक्षेत्र का नाम लेते ही सामान्यतः महाभारत-युद्ध और श्रीमद्भगवद्गीता का स्मरण होता है, किन्तु इसका इतिहास इससे कहीं अधिक व्यापक और प्राचीन है। वैदिक साहित्य, ब्राह्मण-ग्रंथ, उपनिषद, महाभारत, पुराण, बौद्ध एवं जैन साहित्य, विदेशी यात्रियों के वृत्तांत, पुरातात्त्विक उत्खनन तथा आधुनिक शोध—ये सभी इस तथ्य के प्रमाण हैं कि कुरुक्षेत्र भारतीय संस्कृति के विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ धर्म, दर्शन, शिक्षा, यज्ञ, तीर्थ और लोकजीवन की निरंतर विकसित होती परंपराएँ आज भी जीवंत हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ 'सनातन कुरुक्षेत्र: सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि' का उद्देश्य केवल तीर्थों का परिचय देना मात्र नहीं है। इसका उद्देश्य कुरुक्षेत्र को उसके समग्र स्वरूप में प्रस्तुत करना है—एक ऐसी भूमि के रूप में, जहाँ शास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, भूगोल, लोकपरंपरा और वर्तमान सांस्कृतिक जीवन एक-दूसरे के पूरक बनकर प्रकट होते हैं।

इस ग्रंथ के निर्माण में उपलब्ध प्राचीन संस्कृत ग्रंथों, पुराणों, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, पुरातात्त्विक सर्वेक्षणों, भारत सरकार एवं हरियाणा सरकार के अभिलेखों, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित प्रामाणिक सामग्री, विश्वविद्यालयीय शोध, शिलालेखों तथा लेखक के दीर्घकालीन क्षेत्रीय अध्ययन का समन्वित उपयोग किया गया है। जहाँ किसी विषय पर विभिन्न मत उपलब्ध हैं, वहाँ उन्हें निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया है; और जहाँ कोई विवरण स्थानीय परंपरा अथवा जनश्रुति पर आधारित है, वहाँ उसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। आस्था और इतिहास—दोनों का सम्मान इस ग्रंथ की मूल कार्यपद्धति है।

इस ग्रंथ में 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों, सरोवरों, मंदिरों, प्राचीन स्थलों, पुरातात्त्विक अवशेषों, मेलों तथा सांस्कृतिक परंपराओं का, उनसे संबंधित ऐतिहासिक और पौराणिक स्रोतों सहित, क्रमबद्ध एवं संदर्भयुक्त विवेचन किया गया है। प्रत्येक अध्याय का प्रयास केवल सूचना देना नहीं, अपितु पाठक को उस स्थल की ऐतिहासिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से साक्षात्कार कराना है।

लेखक का दृढ़ विश्वास है कि इतिहास केवल पुस्तकों में सुरक्षित नहीं रहता; वह भूमि, नदी, शिलालेख, पुरास्थल, लोकस्मृति और जीवित परंपराओं में भी संरक्षित रहता है। इसी विश्वास के साथ वर्षों तक अनेक तीर्थों का क्षेत्रीय अध्ययन, प्रत्यक्ष अवलोकन और स्रोतों का तुलनात्मक परीक्षण इस ग्रंथ की आधारशिला बना है।

यह पुस्तक किसी मत, पंथ या संप्रदाय के प्रचार हेतु नहीं लिखी गई है। इसका एकमात्र उद्देश्य भारत की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर—सनातन कुरुक्षेत्र—का प्रामाणिक, संतुलित और शोधपरक परिचय पाठकों तक

पहुँचाना है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इस पावन भूमि के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व को समझ सकें।

यदि यह ग्रंथ शोधार्थियों, इतिहासकारों, विद्यार्थियों, तीर्थयात्रियों तथा भारतीय संस्कृति के जिज्ञासु पाठकों के लिए एक विश्वसनीय संदर्भ-ग्रंथ सिद्ध होता है, तो लेखक अपना श्रम सफल मानेगा।

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

(सेवानिवृत्त मानद नायब सूबेदार, भारतीय सेना | इतिहासकार | शोधकर्ता | लेखक)

लेखक के दो शब्द

प्रिय पाठकों,

आपके हाथों में प्रस्तुत "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि मेरे जीवन के चार दशकों से अधिक समय की साधना, श्रद्धा, शोध और अनुभवों का विनम्र प्रतिफल है।

वर्ष 1981 में जब मैंने पहली बार कुरुक्षेत्र की पावन भूमि पर एक साधारण तीर्थयात्री के रूप में कदम रखा था, तब मुझे यह आभास भी नहीं था कि एक दिन यही भूमि मेरे जीवन के सबसे बड़े शोध-कार्य का विषय बनेगी। उस समय यात्रा श्रद्धा की थी, परन्तु वर्ष 2008 में भारतीय सेना से मानद नायब सूबेदार के पद से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् वही यात्राएँ एक व्यवस्थित शोध-अभियान में परिवर्तित हो गईं।

पिछले अठारह वर्षों में मैंने 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों, प्राचीन सरोवरों, मंदिरों, आश्रमों, पुरातात्त्विक स्थलों और ऐतिहासिक अवशेषों का अनेक बार प्रत्यक्ष भ्रमण किया। जहाँ-जहाँ संभव हुआ, वहाँ स्थानीय विद्वानों, संत-महात्माओं, पुरोहितों, ग्रामीणों तथा सरकारी अधिकारियों से संवाद किया। प्राचीन ग्रंथों, पुराणों, महाभारत, पुरातात्त्विक अभिलेखों, सरकारी प्रकाशनों तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री का गंभीर अध्ययन किया। इसी दीर्घ साधना का परिणाम यह ग्रंथ है।

इस पुस्तक में मेरा प्रयास किसी मत, सम्प्रदाय या विचारधारा का समर्थन या विरोध करना नहीं है। मेरा उद्देश्य केवल उपलब्ध प्रमाणों, ऐतिहासिक तथ्यों और प्रत्यक्ष अध्ययन के आधार पर कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक,

धार्मिक और ऐतिहासिक विरासत का यथासंभव प्रामाणिक एवं संतुलित परिचय प्रस्तुत करना है।

यदि इस ग्रंथ को पढ़कर कोई विद्यार्थी शोध के लिए प्रेरित होता है, कोई परिवार कुरुक्षेत्र के तीर्थों की यात्रा करने का संकल्प लेता है, अथवा कोई पाठक अपनी सांस्कृतिक विरासत को जानने की जिज्ञासा विकसित करता है, तो मैं अपने इस प्रयास को सफल मानूँगा।

मैं परमपिता परमात्मा, अपने गुरुजनों, अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, अपने परिवार, सहयोगियों, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, श्रीकृष्ण संग्रहालय तथा उन सभी ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके सहयोग से यह कार्य पूर्ण हो सका।

यह ग्रंथ मैं भगवान श्रीकृष्ण, पवित्र माता सरस्वती, धर्मभूमि कुरुक्षेत्र और भारत की सनातन सांस्कृतिक चेतना को सादर समर्पित करता हूँ।

आपका स्नेह और सुझाव मेरे आगामी शोध-कार्य के लिए सदैव प्रेरणा बने रहेंगे।

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

मानद नायब सूबेदार (सेवानिवृत्त), भारतीय सेना

इतिहासकार | स्वतंत्र शोधकर्ता | लेखक

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

विषय-सूची

अध्याय 1

ब्रह्मसरोवर — धर्मक्षेत्र का हृदय, सृष्टि का उद्गम और आत्मा का तीर्थ

भाग-1 : पहली बार जब पग धरा

कुछ स्थान केवल देखे नहीं जाते – वे अनुभव किए जाते हैं। कुछ तीर्थ केवल यात्रा नहीं होते – वे जीवन बन जाते हैं। ब्रह्मसरोवर मेरे लिए ऐसा ही तीर्थ है।

बचपन में जब पहली बार अपने गाँव रामनगर से लगभग 125 किलोमीटर की यात्रा करके इस पावन सरोवर के तट पर पहुँचा था, तब उस बालक को क्या पता था कि यह यात्रा जीवन-भर की यात्रा बन जाएगी। उस दिन से आज तक – 62 वर्षों में – अनगिनत बार इस सरोवर की परिक्रमा की है। सैन्य-सेवा के वर्षों में जब भी अवकाश मिला, यहाँ अवश्य चला आया। अब, आयु के साथ जब घुटने पहले जैसा साथ नहीं देते, तो बैटरी-रिक्शे से घूमकर दर्शन करता हूँ।

परन्तु अनुभूति आज भी वही है, जो बचपन में थी।

भाग-2 : राजा कुरु की तपस्या और 'कुरुक्षेत्र' नाम की उत्पत्ति

किसी भी भूमि की पहचान केवल उसके भौगोलिक विस्तार से नहीं होती, अपितु उन आदर्शों से होती है जिन्हें वह भूमि युगों-युगों तक धारण करती है। कुरुक्षेत्र की पवित्रता का आधार केवल महाभारत-युद्ध नहीं है; उसकी जड़ें उससे भी कहीं अधिक प्राचीन हैं। भारतीय

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

धार्मिक साहित्य के अनुसार इस क्षेत्र का नाम राजा कुरु की महान तपस्या और धर्मनिष्ठा के कारण 'कुरुक्षेत्र' पड़ा।

यह कथा भारतीय परम्परा में अत्यन्त प्रसिद्ध है, परन्तु एक शोधकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह यह स्पष्ट करे कि इसका आधार कहाँ है और इसे किस रूप में स्वीकार किया जाता है।

राजा कुरु कौन थे?

महाभारत तथा पुराणों के अनुसार राजा कुरु चन्द्रवंश के प्रतापी सम्राट थे। वे राजा संवरण और सूर्यपुत्री तपती के पुत्र थे। उन्हीं के नाम पर आगे चलकर सम्पूर्ण वंश कुरुवंश कहलाया, जिसमें शान्तनु, भीष्म, पाण्डु, धृतराष्ट्र, कौरव और पाण्डव उत्पन्न हुए।

इस प्रकार राजा कुरु केवल एक ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र नहीं हैं; वे उस वंश के आदिपुरुष हैं जिसके इर्द-गिर्द महाभारत का सम्पूर्ण इतिहास विकसित हुआ।

कुरुक्षेत्र नाम की उत्पत्ति

वामन पुराण में स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिः ततो रामह्रदः स्मृतः। कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्॥

भावार्थ : यह स्थान पहले ब्रह्मा की यज्ञ-वेदी था। बाद में रामह्रद कहलाया। और जब राजा कुरु ने इस भूमि को जोता, तब इसका नाम कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ।

यह श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह इस क्षेत्र के नाम-विकास की क्रमबद्ध परम्परा प्रस्तुत करता है – (1) ब्रह्मा की वेदी (ब्रह्मक्षेत्र), (2) रामह्रद, तथा (3) कुरु द्वारा जोती गई भूमि (कुरुक्षेत्र)। इसीलिए अधिकांश विद्वान मानते हैं कि 'कुरुक्षेत्र' नाम का सम्बन्ध राजा कुरु से है।

राजा कुरु की तपस्या

पुराणों में वर्णित कथा के अनुसार राजा कुरु ने यह निश्चय किया कि पृथ्वी पर ऐसा क्षेत्र स्थापित किया जाए जहाँ धर्म, सत्य और तपस्या सदैव जीवित रहें।

वे एक सुवर्ण-निर्मित हल लेकर इस भूमि पर आए। परम्परा के अनुसार उन्होंने भगवान शिव का वृषभ तथा यमराज का महिष जोतकर इस भूमि की जुताई प्रारम्भ की।

जब देवराज इन्द्र ने यह दृश्य देखा तो उन्होंने पूछा – 'राजन्! आप इस निर्जन भूमि को क्यों जोत रहे हैं?' राजा कुरु ने उत्तर दिया – 'मैं इस भूमि में धर्म के बीज बो रहा हूँ, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ धर्ममय जीवन जी सकें।'

यह संवाद भारतीय संस्कृति में प्रतीकात्मक माना जाता है। इसका उद्देश्य कृषि का वर्णन करना नहीं, अपितु यह बताना है कि समाज की वास्तविक उन्नति नैतिक मूल्यों से होती है।

आठ सद्गुणों का बीजारोपण

भारतीय परम्परा के अनुसार राजा कुरु ने इस भूमि में आठ महान सद्गुणों की स्थापना का संकल्प लिया – सत्य (सत्य का पालन),

तप (आत्मानुशासन और साधना), दया (समस्त प्राणियों के प्रति करुणा), दान (परोपकार की भावना), क्षमा (अपराधी के प्रति उदारता), शौच/पवित्रता (बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धि), योग (आत्मसंयम और ईश्वर से एकत्व), तथा ब्रह्मचर्य (इन्द्रियनिग्रह एवं अनुशासित जीवन)।

इन आठ गुणों का उल्लेख विभिन्न धार्मिक परम्पराओं में कुछ शब्दों के अन्तर के साथ मिलता है। अतः शोध-दृष्टि से इन्हें धर्म के आदर्श गुण के रूप में प्रस्तुत करना अधिक उचित होगा।

भगवान विष्णु की परीक्षा

कथा के अनुसार राजा कुरु की अटूट निष्ठा देखकर भगवान विष्णु प्रकट हुए और उनसे पूछा – 'राजन्! जिन गुणों को तुम बोना चाहते हो, उनके बीज कहाँ हैं?' राजा कुरु ने उत्तर दिया – 'मेरे शरीर का प्रत्येक अंग ही इन गुणों का बीज है।' इसके पश्चात उन्होंने अपना शरीर भगवान को समर्पित कर दिया। यह प्रसंग पूर्णतः धार्मिक एवं प्रतीकात्मक है। इसका अभिप्राय यह है कि धर्म की स्थापना केवल वचन से नहीं, अपितु पूर्ण आत्मसमर्पण से होती है।

इन्द्र का वरदान

राजा कुरु की तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र ने वरदान दिया – यह भूमि सदा कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध होगी, तथा यहाँ धर्मपूर्वक तप, यज्ञ अथवा युद्ध में प्राण त्यागने वाले को उच्च लोकों की प्राप्ति होगी। इसी मान्यता के कारण कुरुक्षेत्र को आगे चलकर धर्मक्षेत्र कहा जाने लगा।

महाभारत में कुरुक्षेत्र

महाभारत के वनपर्व तथा अन्य प्रसंगों में कुरुक्षेत्र को अत्यन्त पवित्र तीर्थ बताया गया है। अनेक स्थानों पर कहा गया है कि यहाँ स्नान, दान, यज्ञ और श्राद्ध का विशेष फल प्राप्त होता है। भगवद्गीता का प्रथम श्लोक भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है – 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।' यदि यह क्षेत्र केवल युद्धभूमि होता, तो इसे 'धर्मक्षेत्र' नहीं कहा जाता। यह उपाधि इस भूमि की पूर्व-प्रतिष्ठित धार्मिक महत्ता का प्रमाण है।

कुरुक्षेत्र के प्राचीन नाम

इस भूमि को प्राचीन काल में विभिन्न नामों से जाना गया – ब्रह्मक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, आर्यावर्त और समन्तपंचक। नारदीय पुराण में इसे 'ब्रह्मावर्त' कहा गया है, जो सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य स्थित क्षेत्र के रूप में वर्णित है। ये सभी नाम इस बात के सूचक हैं कि इस भूमि की पवित्रता की परम्परा राजा कुरु के युग से भी पूर्व की रही होगी।

हरियाणा नाम की व्युत्पत्ति – एक लोक-मान्यता

स्थानीय जनश्रुति के अनुसार 'हरियाणा' शब्द की व्युत्पत्ति 'हरि का आना' से मानी जाती है – अर्थात् वह भूमि जहाँ भगवान विष्णु-कृष्ण पधारे। यह एक भक्ति-प्रधान लोक-व्याख्या है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से 'हरियाणा' शब्द की व्युत्पत्ति पर विद्वानों में भिन्न मत हैं; कुछ इसे 'हरित-अरण्य' (हरा-भरा वन) से भी जोड़ते हैं। अतः इसे प्रामाणिक व्युत्पत्ति के स्थान पर श्रद्धा-प्रधान लोक-परम्परा के रूप में ही प्रस्तुत किया जाना उचित है।

शोध-दृष्टि से मूल्यांकन

एक इतिहासकार के लिए यह आवश्यक है कि वह पौराणिक आख्यान और ऐतिहासिक तथ्य के बीच स्पष्ट भेद बनाए रखे। राजा कुरु की तपस्या का वर्णन मुख्यतः पुराणों एवं धार्मिक परम्पराओं में प्राप्त होता है। वर्तमान में इसके प्रत्यक्ष पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इस ग्रन्थ में इसे भारतीय धार्मिक परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, न कि आधुनिक इतिहासलेखन के सिद्ध ऐतिहासिक तथ्य के रूप में।

फिर भी इसमें निहित संदेश – धर्म, सत्य, दया, तप और आत्मसमर्पण – भारतीय संस्कृति के मूल आदर्शों का प्रतिनिधित्व करता है। यही कारण है कि यह कथा सहस्राब्दियों से भारतीय जनमानस में जीवित है।

भाग-3 : ब्रह्मसरोवर की पौराणिक महिमा, सृष्टि-परम्परा और धार्मिक महत्व

यदि कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कहा जाता है, तो ब्रह्मसरोवर उसकी आत्मा है। भारतीय धार्मिक परम्परा में यह केवल एक जलाशय नहीं, अपितु सृष्टि, यज्ञ, तप, ज्ञान और मोक्ष का प्रतीक माना गया है। यही कारण है कि वैदिक साहित्य से लेकर महापुराणों तक इसकी महिमा का निरन्तर उल्लेख मिलता है।

एक शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह आस्था और इतिहास दोनों को उनके उचित स्थान पर रखे। अतः इस अध्याय में जहाँ पौराणिक परम्परा है, उसे उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है; जहाँ ऐतिहासिक अथवा पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध हैं, वहाँ उन्हें पृथक रूप से रखा गया है।

भौतिक स्वरूप : आकार और विस्तार

ब्रह्मसरोवर एशिया के सबसे बड़े मानव-निर्मित पवित्र जलाशयों में गिना जाता है। सामान्यतः उपलब्ध विवरणों के अनुसार इसका पूर्वी भाग लगभग 1800 फुट लम्बा तथा 1500 फुट चौड़ा है, जबकि पश्चिमी भाग लगभग 1500 फुट चौड़ा है; गहराई सामान्यतः 15 फुट के आसपास बताई जाती है (विभिन्न स्रोतों में इन आँकड़ों में स्वाभाविक भिन्नता मिलती है)। सरोवर के चारों ओर चौड़ा पक्का प्लेटफ़ार्म तथा विशाल परिक्रमा-मार्ग बनाया गया है। सरोवर के मध्य एक द्वीप है, जिसके विषय में परम्परा कहती है कि विजयी युधिष्ठिर ने यहाँ विजय-स्तम्भ स्थापित किया था। इस सरोवर की एक परिक्रमा को 48 कोस कुरुक्षेत्र-परिक्रमा के समस्त तीर्थों की यात्रा के समतुल्य पुण्यदायी माना जाता है।

ब्रह्मा की यज्ञ-वेदी और सृष्टि की परम्परा

भारतीय परम्परा के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने इसी क्षेत्र में यज्ञ सम्पन्न किया। इसी कारण इस स्थान को 'ब्रह्मा की वेदी' कहा गया। वामन पुराण में कहा गया है – 'आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिः ततो रामह्रदः स्मृतः। कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्॥' भावार्थ : प्रारम्भ में यह स्थान ब्रह्मा की यज्ञ-वेदी था। बाद में रामह्रद कहलाया और राजा कुरु द्वारा जोते जाने के कारण कुरुक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह श्लोक केवल नामकरण नहीं बताता, अपितु यह संकेत करता है कि इस क्षेत्र की धार्मिक प्रतिष्ठा महाभारत से भी पूर्व स्थापित हो चुकी थी।

क्या वास्तव में यहीं सृष्टि हुई?

एक इतिहासकार के रूप में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'यहीं सृष्टि हुई' – यह भारतीय धार्मिक परम्परा और पुराणों में वर्णित आस्था है। आधुनिक विज्ञान इस विषय को भिन्न दृष्टि से देखता है। अतः इस ग्रन्थ में यह कथन इस प्रकार स्वीकार किया गया है – भारतीय पौराणिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मा ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ सम्पन्न कर सृष्टि-व्यवस्था का शुभारम्भ किया। यह प्रस्तुति न तो आस्था का खण्डन करती है और न ही इतिहास की मर्यादा का उल्लंघन।

रामह्रद, समन्तपंचक और परशुराम-परम्परा

ब्रह्मसरोवर के प्राचीन नामों में 'रामह्रद' तथा 'समन्तपंचक' भी उल्लेखनीय हैं, जिनका सम्बन्ध भगवान विष्णु के अवतार परशुराम से जोड़ा जाता है। महाभारत में वर्णित कथा के अनुसार परशुराम ने यहाँ पाँच रक्त-कुंड (ह्रद) बनाए थे, जो कालान्तर में पितरों के आशीर्वाद से पवित्र जलाशयों में परिणत हो गए – यही समन्तपंचक क्षेत्र कहलाया।

इस कथा का ऐतिहासिक सत्यापन उपलब्ध नहीं है; यह विशुद्ध रूप से पौराणिक परम्परा है, जिसे महाभारत तथा वामन पुराण में सुरक्षित रखा गया है। तथापि यह परम्परा इस भूमि की पवित्रता की प्राचीनता को रेखांकित करती है – यह संकेत करती है कि कुरुक्षेत्र की तीर्थ-प्रतिष्ठा राजा कुरु के युग से भी पूर्व, विष्णु के परशुराम-अवतार के काल तक जोड़ी जाती रही है।

महाभारत में ब्रह्मसरोवर और कुरुक्षेत्र

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

महाभारत के वनपर्व में कुरुक्षेत्र को समस्त तीर्थों का श्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है। अनेक श्लोकों में कहा गया है कि यहाँ स्नान, दान, यज्ञ और श्राद्ध का फल अन्य तीर्थों की अपेक्षा अधिक माना गया है। महाभारत में वर्णित समन्तपञ्चक क्षेत्र को अधिकांश विद्वान वर्तमान कुरुक्षेत्र क्षेत्र से सम्बद्ध मानते हैं। यही कारण है कि ब्रह्मसरोवर की महिमा महाभारत-परम्परा का अभिन्न अंग बन जाती है।

महाभारत-कालीन स्मृतियाँ

ब्रह्मसरोवर परिसर में महाभारत से जुड़ी अनेक स्थानीय परम्पराएँ आज भी जीवित हैं। जनश्रुति के अनुसार युद्ध के अन्तिम दिन दुर्योधन ने इसी सरोवर के जल में छिपकर शरण ली थी, और विजयी युधिष्ठिर ने सरोवर के मध्य द्वीप पर विजय-स्तम्भ स्थापित किया। परिसर में स्थित 'द्रौपदी कूप' नामक अत्यन्त प्राचीन कूप भी इसी परम्परा का भाग माना जाता है, और सरोवर के अनेक घाट महाभारत के प्रमुख पात्रों के नाम पर जाने जाते हैं।

यह ध्यान रहे कि ये सभी विवरण स्थानीय जनश्रुति और परम्परा पर आधारित हैं, न कि प्रमाणित इतिहास पर। तथापि इनका सांस्कृतिक महत्व इस बात में है कि ये कथाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस भूमि को महाभारत की स्मृति से जोड़े रखती हैं।

पुराणों में ब्रह्मसरोवर

कुरुक्षेत्र का उल्लेख अनेक पुराणों में मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं – वामन पुराण, स्कन्द पुराण (कुरुक्षेत्र माहात्म्य), नारदीय पुराण, पद्म पुराण तथा मत्स्य पुराण। इन ग्रन्थों में ब्रह्मसरोवर को यज्ञभूमि,

पुण्यतीर्थ, देवताओं के निवास तथा पितृ-तर्पण के श्रेष्ठ स्थान के रूप में वर्णित किया गया है। विशेष रूप से स्कन्द पुराण के कुरुक्षेत्र माहात्म्य में कहा गया है कि कुरुक्षेत्र की यात्रा मनुष्य के पापों का क्षय करने वाली मानी गई है।

ग्रहण-स्नान की परम्परा

ब्रह्मसरोवर की सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध परम्पराओं में सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण स्नान का विशेष महत्व है। भारतीय धार्मिक मान्यता है कि ग्रहण के समय यहाँ स्नान, जप, दान और हवन करने से विशेष पुण्य प्राप्त होता है। ऐतिहासिक रूप से भी यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है – मध्यकालीन यात्रियों ने अपने यात्रा-वृत्तान्तों में लिखा है कि ग्रहण के अवसर पर लाखों श्रद्धालु कुरुक्षेत्र पहुँचते थे। आज भी सूर्यग्रहण के अवसर पर देश-विदेश से विशाल संख्या में श्रद्धालु ब्रह्मसरोवर में स्नान करने आते हैं, और प्रशासन द्वारा व्यापक सुरक्षा एवं प्रबन्ध किए जाते हैं।

पितृ-तर्पण और धार्मिक अनुष्ठान

ब्रह्मसरोवर केवल स्नान का स्थान नहीं है। यहाँ आज भी श्राद्ध, पितृ-तर्पण, यज्ञ, गीता-पाठ, रुद्राभिषेक, दीपदान, सन्ध्या-आरती तथा गंगा-जलीय कलश-पूजन जैसे अनेक धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न किए जाते हैं। इन धार्मिक परम्पराओं ने ब्रह्मसरोवर को केवल ऐतिहासिक स्मारक नहीं रहने दिया, अपितु इसे आज भी जीवित तीर्थ बनाए रखा है।

ब्रह्मसरोवर और भारतीय सांस्कृतिक एकता

ब्रह्मसरोवर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ केवल हरियाणा के लोग ही नहीं आते। उत्तराखण्ड, हिमाचल, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, ओडिशा, दक्षिण भारत तथा नेपाल सहित अनेक क्षेत्रों से श्रद्धालु यहाँ पहुँचते हैं। अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव के समय तो अनेक विदेशी विद्वान, शोधकर्ता और भारतीय संस्कृति के अध्येता भी यहाँ उपस्थित होते हैं। इस प्रकार ब्रह्मसरोवर केवल एक क्षेत्रीय तीर्थ नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक चेतना का केन्द्र बन चुका है।

शोधपरक निष्कर्ष

ब्रह्मसरोवर के अध्ययन से तीन स्तर स्पष्ट रूप से सामने आते हैं – धार्मिक परम्परा (ब्रह्मा की यज्ञ-वेदी, सृष्टि-परम्परा, ग्रहण-स्नान और तीर्थ-माहात्म्य), ऐतिहासिक निरन्तरता (महाभारत, पुराण, मध्यकालीन यात्रियों तथा आधुनिक काल तक इसकी सतत प्रतिष्ठा), और वर्तमान सांस्कृतिक महत्व (अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव, धार्मिक पर्यटन और सांस्कृतिक विरासत)। इन्हीं तीनों स्तरों का समन्वय ब्रह्मसरोवर को भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण तीर्थों में स्थान प्रदान करता है।

भाग-4 : ऐतिहासिक विकास, पुरातात्त्विक साक्ष्य और आधुनिक पुनर्जागरण

यदि ब्रह्मसरोवर की महिमा केवल पुराणों तक सीमित होती, तो इसे आस्था का विषय कहा जा सकता था; किन्तु इसकी विशेषता यह है कि इस तीर्थ का उल्लेख विभिन्न कालों के यात्रियों, इतिहासकारों, अभिलेखों और आधुनिक प्रशासनिक दस्तावेजों में निरन्तर मिलता

है। इससे स्पष्ट होता है कि यह तीर्थ सहस्राब्दियों से भारतीय सांस्कृतिक जीवन का जीवित केन्द्र बना हुआ है।

महाभारत के बाद ब्रह्मसरोवर की परम्परा

महाभारत-युद्ध के उपरान्त भी कुरुक्षेत्र का धार्मिक महत्व समाप्त नहीं हुआ। वैदिक यज्ञों, श्राद्ध, पितृ-तर्पण तथा ग्रहण-स्नान की परम्परा सतत चलती रही। गुप्तकाल (चतुर्थ-षष्ठ शताब्दी ईस्वी) तक आते-आते कुरुक्षेत्र पुनः उत्तर भारत का प्रमुख तीर्थ बन चुका था। इस काल में वैष्णव, शैव और शाक्त – तीनों परम्पराओं के तीर्थ एक ही क्षेत्र में विकसित हुए। ब्रह्मसरोवर इन सभी धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र रहा।

सम्राट हर्षवर्धन (7वीं शताब्दी) के समय थानेसर (स्थानेश्वर) उत्तर भारत की प्रमुख राजधानी था। चीनी यात्री ह्वेनसांग (Xuanzang) ने अपने यात्रा-वृत्तान्त में थानेसर को एक महान धार्मिक केन्द्र बताया है। यद्यपि उसने ब्रह्मसरोवर का नाम पृथक रूप से नहीं लिखा, किन्तु उसके विवरण से स्पष्ट है कि यह सम्पूर्ण क्षेत्र उस समय भी अत्यन्त पवित्र तीर्थ माना जाता था।

मध्यकालीन मुस्लिम विद्वानों के विवरण

भारत के प्रसिद्ध विद्वान अबू रैहान अल-बेरूनी (973–1048 ई.) ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'किताब-उल-हिन्द' में कुरुक्षेत्र का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा कि सूर्यग्रहण के अवसर पर असंख्य श्रद्धालु यहाँ स्नान करने आते हैं और भारतीय समाज इसे अत्यन्त पवित्र मानता है। अल-बेरूनी ने यह भी उल्लेख किया कि हिन्दुओं की मान्यता है – ग्रहण के समय अनेक पवित्र नदियों का आध्यात्मिक संगम

कुरुक्षेत्र में होता है। यह विवरण इस बात का प्रमाण है कि लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व भी ब्रह्मसरोवर की तीर्थ-परम्परा उतनी ही जीवित थी जितनी आज है।

अबुल फ़ज़ल का वर्णन

मुगल सम्राट अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने अपनी प्रसिद्ध कृति आइने-अकबरी में कुरुक्षेत्र का उल्लेख करते हुए लिखा कि सूर्यग्रहण के अवसर पर यहाँ विशाल जनसमूह एकत्रित होता है। उन्होंने ब्रह्मसरोवर की विशालता की तुलना छोटे समुद्र से की तथा लिखा कि यहाँ भारत के विभिन्न भागों से लाखों लोग स्नान करने आते हैं। यह विवरण विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि यह किसी धार्मिक ग्रन्थ का नहीं, अपितु मुग़लकालीन प्रशासनिक इतिहास का भाग है।

यूरोपीय यात्रियों की दृष्टि

सत्रहवीं शताब्दी में भारत आए फ़्रांसीसी चिकित्सक और यात्री फ़्राँस्वा बर्नियर (François Bernier) ने भी कुरुक्षेत्र का उल्लेख किया है। उन्होंने ग्रहण के समय उमड़ने वाली भीड़ तथा धार्मिक उत्साह का वर्णन किया। यूरोपीय यात्रियों के इन विवरणों से स्पष्ट है कि ब्रह्मसरोवर केवल स्थानीय तीर्थ नहीं था, अपितु सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप का प्रसिद्ध धार्मिक केन्द्र था।

पुरातात्त्विक दृष्टि

ब्रह्मसरोवर का वर्तमान स्वरूप आधुनिक काल में विकसित हुआ है, किन्तु इसके आसपास के क्षेत्र से प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेष इस स्थान की प्राचीनता की पुष्टि करते हैं। कुरुक्षेत्र क्षेत्र में विभिन्न

स्थलों से चित्रित धूसर मृद्भाण्ड (Painted Grey Ware), उत्तरी कृष्ण-चमकीले मृद्भाण्ड (Northern Black Polished Ware), कुषाणकालीन अवशेष, गुप्तकालीन मूर्तियाँ तथा मध्यकालीन स्थापत्य अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये सभी प्रमाण इस क्षेत्र में निरन्तर मानवीय बसावट और धार्मिक गतिविधियों का संकेत देते हैं।

यह ध्यान देना आवश्यक है कि वर्तमान ब्रह्मसरोवर के प्रत्येक पत्थर को महाभारतकालीन नहीं कहा जा सकता। वर्तमान घाटों का अधिकांश निर्माण आधुनिक काल में हुआ है। अतः इतिहास और आस्था का स्पष्ट पृथक्करण आवश्यक है।

आधुनिक पुनर्निर्माण

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक ब्रह्मसरोवर का स्वरूप अत्यन्त जर्जर हो चुका था। अनेक स्थानों पर जल कम था, घाट टूट चुके थे और उचित संरक्षण का अभाव था। 1960 के दशक में इस स्थिति ने राष्ट्रीय स्तर पर चिन्ता उत्पन्न की। इसी समय भारत के पूर्व कार्यवाहक प्रधानमंत्री श्री गुलज़ारीलाल नंदा ने कुरुक्षेत्र के संरक्षण का कार्य अपने हाथ में लिया। उनके प्रयासों से 1968 में कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की स्थापना हुई। यही संस्था आज भी 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों के संरक्षण, विकास और प्रबन्धन का दायित्व निभा रही है।

गुलज़ारीलाल नंदा का योगदान

गुलज़ारीलाल नंदा केवल राजनेता नहीं थे; वे भारतीय संस्कृति और गीता-परम्परा के समर्पित साधक थे। उनकी प्रेरणा से ब्रह्मसरोवर का वैज्ञानिक पुनरुद्धार हुआ, पक्के घाट बनाए गए, जल-संरक्षण की

आधुनिक व्यवस्था विकसित की गई, प्रकाश-व्यवस्था स्थापित हुई, तीर्थयात्रियों के लिए सुविधाएँ बढ़ाई गईं, तथा सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, पिहोवा और अन्य तीर्थों के संरक्षण की योजनाएँ प्रारम्भ हुईं। आज जो भव्य ब्रह्मसरोवर दिखाई देता है, उसमें गुलज़ारीलाल नंदा की दूरदर्शिता का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।

गुलज़ारीलाल नंदा : सादगी और समर्पण का जीवन

गुलज़ारीलाल नंदा (4 जुलाई 1898 – 15 जनवरी 1998) का जीवन भारतीय लोक-स्मृति में सादगी और निष्काम सेवा के प्रतीक के रूप में स्मरण किया जाता है। दो बार देश के कार्यवाहक प्रधानमंत्री रहने और वर्षों केंद्रीय मंत्री पद पर कार्य करने के बावजूद उन्होंने कभी व्यक्तिगत सम्पत्ति अर्जित नहीं की। सक्रिय राजनीति से अवकाश के पश्चात उनके जीवन के अन्तिम वर्ष अत्यन्त सादगीपूर्ण, अपितु कठिनाई-भरे रहे – प्रचलित विवरणों के अनुसार आर्थिक तंगी के कारण उन्हें एक बार किराए का मकान तक छोड़ना पड़ा था, जिसकी चर्चा उस समय के समाचार-पत्रों में भी हुई। वर्ष 1997 में उन्हें भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से अलंकृत किया गया। 15 जनवरी 1998 को लगभग 99 वर्ष की आयु में अहमदाबाद में उनका निधन हुआ।

उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उनकी अस्थियाँ कुरुक्षेत्र में ही सुरक्षित रखी गईं। कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के तत्वावधान में निर्मित 'गुलज़ारीलाल नंदा स्मारक' आज भी ब्रह्मसरोवर परिसर के निकट स्थित है, जहाँ प्रतिवर्ष उनकी जयंती पर स्मृति-कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। जिस व्यक्ति ने कुरुक्षेत्र के पुनरुद्धार के लिए बाईस

वर्ष समर्पित किए, उसका इस पावन भूमि से यह अन्तिम जुड़ाव – उनके जीवन की सबसे मार्मिक स्मृतियों में से एक है।

अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के संरक्षण में आयोजित अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव ने ब्रह्मसरोवर को वैश्विक पहचान दिलाई है। प्रतिवर्ष गीता जयंती के अवसर पर वैदिक यज्ञ, गीता-पाठ, सांस्कृतिक कार्यक्रम, अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियाँ, पुस्तक-मेले, शिल्प-मेले तथा दीपोत्सव आयोजित किए जाते हैं। विश्व के अनेक देशों से विद्वान, संत, कलाकार तथा शोधकर्ता इसमें भाग लेते हैं। इस प्रकार ब्रह्मसरोवर केवल प्राचीन धरोहर नहीं, अपितु जीवित सांस्कृतिक केन्द्र है।

शोधकर्ता का प्रत्यक्ष अवलोकन

इस ग्रन्थ के लेखक ने विगत कई दशकों में ब्रह्मसरोवर की अनेक यात्राएँ की हैं। विभिन्न ऋतुओं, ग्रहण-पर्वों तथा अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव के अवसर पर स्थल का प्रत्यक्ष अध्ययन किया गया। क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि धार्मिक परम्परा, स्थानीय स्मृति, प्रशासनिक संरक्षण और आधुनिक पर्यटन – चारों मिलकर ब्रह्मसरोवर की वर्तमान पहचान निर्मित करते हैं। इस पुस्तक में जहाँ भी लेखक के प्रत्यक्ष अनुभवों का उल्लेख है, उन्हें स्पष्ट रूप से 'क्षेत्रीय अध्ययन' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, ताकि वे ऐतिहासिक तथ्यों से पृथक बने रहें।

भाग-4 का निष्कर्ष

ब्रह्मसरोवर की महानता केवल धार्मिक आस्था में नहीं, अपितु उसकी ऐतिहासिक निरन्तरता में निहित है। महाभारत, पुराण, मध्यकालीन यात्रियों के विवरण, पुरातात्त्विक साक्ष्य, आधुनिक संरक्षण और वर्तमान सांस्कृतिक गतिविधियाँ – ये सभी मिलकर इसे विश्व की प्राचीनतम जीवित तीर्थ-परम्पराओं में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं। इतिहासकार के लिए यह शोध का विषय है, श्रद्धालु के लिए आस्था का केन्द्र, और भारत की सांस्कृतिक चेतना के लिए अमूल्य धरोहर।

भाग-5 : वर्तमान ब्रह्मसरोवर, सांस्कृतिक विरासत और भविष्य की दिशा

वर्तमान स्वरूप : प्राचीन आस्था और आधुनिक संरक्षण का संगम

इक्कीसवीं शताब्दी का ब्रह्मसरोवर भारतीय संस्कृति की उस जीवित परम्परा का उदाहरण है, जहाँ हज़ारों वर्ष पुरानी धार्मिक मान्यताएँ आधुनिक प्रबंधन और संरक्षण के साथ समान रूप से विद्यमान हैं। हरियाणा सरकार तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा समय-समय पर किए गए संरक्षण कार्यों ने इसे विश्वस्तरीय तीर्थ के रूप में विकसित किया है।

आज ब्रह्मसरोवर में चौड़े पक्के घाट, संगमरमर की सीढ़ियाँ, परिक्रमा-मार्ग, स्वच्छ जल-व्यवस्था, विद्युत-प्रकाश, सुरक्षा-प्रबन्ध, विश्राम-स्थल, पार्किंग, शौचालय, पेयजल, चिकित्सा-सुविधा तथा दिव्यांगजन के लिए भी आवश्यक व्यवस्थाएँ उपलब्ध हैं। यह विकास इस बात का उदाहरण है कि यदि सांस्कृतिक धरोहरों का

वैज्ञानिक ढंग से संरक्षण किया जाए तो वे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रह सकती हैं।

मध्य द्वीप और श्रीमद्भगवद्गीता का संदेश

ब्रह्मसरोवर के मध्य स्थित द्वीप इस सम्पूर्ण तीर्थ का आध्यात्मिक केन्द्र है। यहाँ स्थापित भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के रथ की विशाल प्रतिमा केवल एक कलाकृति नहीं, अपितु मानव सभ्यता को दिए गए श्रीमद्भगवद्गीता के अमर संदेश का प्रतीक है। यद्यपि शास्त्रीय परम्परा के अनुसार गीता का उपदेश ज्योतिसर में हुआ था, किन्तु ब्रह्मसरोवर स्थित यह प्रतिमा सम्पूर्ण कुरुक्षेत्र की आध्यात्मिक पहचान बन चुकी है। प्रतिदिन हज़ारों श्रद्धालु यहाँ पहुँचकर गीता के श्लोकों का स्मरण करते हैं और धर्म, कर्म तथा निष्काम सेवा के सिद्धान्तों को जीवन में अपनाने का संकल्प लेते हैं।

ब्रह्मसरोवर के प्रमुख दर्शनीय स्थल

ब्रह्मसरोवर परिसर केवल एक जलाशय नहीं है। इसके आसपास सर्वेश्वर महादेव मंदिर, द्रौपदी कूप, गीता उपदेश प्रतिमा, श्रीकृष्ण-अर्जुन रथ स्मारक, विभिन्न घाट, यज्ञशालाएँ, आरती-स्थल, गुलज़ारीलाल नंदा स्मारक, निकटस्थ श्रीकृष्ण संग्रहालय, बिड़ला गीता मंदिर, बाबा नाथ की हवेली तथा स्थानेश्वर क्षेत्र के अन्य प्राचीन मंदिर स्थित हैं। इन सभी स्थलों का संयुक्त अध्ययन यह सिद्ध करता है कि ब्रह्मसरोवर केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, अपितु सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिसर (Cultural Complex) है।

सूर्यग्रहण और विश्व का सबसे बड़ा आस्था-संगम

ब्रह्मसरोवर की सबसे विशिष्ट पहचान सूर्यग्रहण-स्नान है। प्राचीन काल से यह विश्वास रहा है कि सूर्यग्रहण के समय यहाँ स्नान, जप, दान और यज्ञ करने से विशेष पुण्य प्राप्त होता है। ऐतिहासिक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि विभिन्न कालों में लाखों श्रद्धालु ग्रहण-पर्व पर यहाँ एकत्रित होते रहे हैं। आधुनिक समय में भी प्रशासन विशेष व्यवस्था करता है और देश-विदेश से श्रद्धालु इस अवसर पर पहुँचते हैं। इस प्रकार ब्रह्मसरोवर धार्मिक पर्यटन और सांस्कृतिक एकता का भी महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है।

शोधकर्ता का क्षेत्रीय अध्ययन

इस ग्रन्थ के लेखक को बाल्यावस्था से लेकर वर्तमान तक अनेक अवसरों पर ब्रह्मसरोवर का प्रत्यक्ष अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सैनिक-सेवा के दौरान अवकाश मिलने पर तथा सेवानिवृत्ति के पश्चात् शोध-कार्य के उद्देश्य से यहाँ बार-बार भ्रमण किया गया। इन यात्राओं से यह स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मसरोवर का वास्तविक महत्व केवल उसके ऐतिहासिक अथवा धार्मिक विवरण में नहीं, अपितु उसकी जीवित परम्परा में है। यहाँ प्रतिदिन आने वाले श्रद्धालु, सन्ध्या-आरती, वैदिक मंत्रोच्चार, गीता-पाठ तथा निरन्तर चलने वाले धार्मिक अनुष्ठान इस तीर्थ को आज भी जीवंत बनाए हुए हैं। इस पुस्तक में लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों को केवल 'क्षेत्रीय अध्ययन (Field Observation)' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, न कि ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में।

भविष्य की आवश्यकता

ब्रह्मसरोवर तथा सम्पूर्ण 48 कोस कुरुक्षेत्र क्षेत्र पर अभी भी व्यापक वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता है — विशेष रूप से पुरातात्त्विक उत्खनन, प्राचीन जल-प्रबंधन प्रणाली, सरस्वती नदी से सम्बन्ध, प्राचीन तीर्थ-मार्ग, अभिलेखों के डिजिटलीकरण तथा स्थानीय मौखिक परम्पराओं के प्रलेखन के क्षेत्र में। यदि इन विषयों पर व्यवस्थित अनुसन्धान किया जाए तो कुरुक्षेत्र विश्व-इतिहास और भारतीय सभ्यता के अध्ययन में और भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकता है।

उपसंहार

ब्रह्मसरोवर केवल जल का विशाल सरोवर नहीं है; यह भारतीय आत्मा का प्रतिबिम्ब है। यहाँ ब्रह्मा की सृष्टि-परम्परा है, राजा कुरु का तप है, महाभारत की स्मृतियाँ हैं, श्रीकृष्ण के धर्म का संदेश है, ऋषियों की साधना है, संतों की वाणी है और करोड़ों श्रद्धालुओं की अटूट आस्था है।

इतिहासकार के लिए यह अध्ययन का विषय है, पुरातत्वविद् के लिए अनुसंधान का केन्द्र, धर्मदर्शन के विद्यार्थी के लिए प्रेरणा का स्रोत, और सामान्य श्रद्धालु के लिए आत्मिक शान्ति का पवित्र धाम।

ब्रह्मसरोवर हमें यह शिक्षा देता है कि सभ्यताएँ केवल पत्थरों से नहीं बनतीं; वे स्मृतियों, संस्कारों, ज्ञान और सतत् सांस्कृतिक परम्परा से निर्मित होती हैं। इसी कारण ब्रह्मसरोवर केवल कुरुक्षेत्र का नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष की सांस्कृतिक धरोहर है।

जो एक बार यहाँ आता है — वह यहीं का हो जाता है।

प्रामाणिक संदर्भ

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

1. महाभारत, वनपर्व (तीर्थयात्रा पर्व)।

2. भगवद्गीता, अध्याय 1, श्लोक 1।

3. वामन पुराण, अध्याय 22।

4. स्कन्द पुराण, कुरुक्षेत्र माहात्म्य।

5. नारदीय पुराण।

6. पद्म पुराण।

7. मत्स्य पुराण।

8. Al-Biruni, Kitab fi Tahqiq ma li'l-Hind (Kitab-ul-Hind)।

9. Abul Fazl, Ain-i-Akbari।

10. François Bernier, Travels in the Mughal Empire।

11. Xuanzang (Hiuen Tsang), Great Tang Records on the Western Regions।

12. Archaeological Survey of India (ASI) – कुरुक्षेत्र क्षेत्र संबंधी उत्खनन एवं प्रतिवेदन।

13. कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड - 48 कोस कुरुक्षेत्र (आधिकारिक प्रकाशन)।

14. हरियाणा पर्यटन विभाग - ब्रह्मसरोवर एवं कुरुक्षेत्र संबंधी आधिकारिक प्रकाशन।

15. गुलज़ारीलाल नंदा जीवन-वृत्त सम्बन्धी समकालीन समाचार-स्रोत एवं जीवनी-लेख।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

16. लेखक का क्षेत्रीय अध्ययन एवं प्रत्यक्ष अवलोकन (सैन्य-सेवाकाल से निरंतर)।

अध्याय 2

गीता की पावन भूमि — ज्योतिसर

जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया अमर ज्ञान

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र और ज्योतिसर का ऐतिहासिक परिचय

सनातन संस्कृति के इतिहास में यदि किसी एक स्थान को संपूर्ण मानवता का आध्यात्मिक विश्वविद्यालय कहा जाए, तो वह है धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र। यही वह पावन भूमि है जहाँ लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत-युद्ध के आरम्भ से ठीक पहले अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश दिया। यह उपदेश केवल अर्जुन के लिए नहीं था, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए जीवन-दर्शन का शाश्वत संदेश बन गया।

कुरुक्षेत्र का उल्लेख महाभारत, वामन पुराण, नारदीय पुराण, ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण तथा अनेक वैदिक ग्रंथों में मिलता है। महाभारत का प्रथम श्लोक ही इस भूमि की महिमा का उद्घोष करता है — 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।' अर्थात् यह केवल युद्धभूमि नहीं, अपितु धर्म, तप, यज्ञ और ज्ञान की भूमि है।

इसी धर्मक्षेत्र के मध्य स्थित है ज्योतिसर, जिसका अर्थ है — 'ज्योति का सरोवर' अथवा 'दिव्य ज्ञान का उद्गम स्थल'। भारतीय परम्परा के अनुसार यही वह स्थान है जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

मोह का नाश कर कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और मोक्ष का अमर संदेश दिया।

48 कोस कुरुक्षेत्र की अवधारणा

प्राचीन काल से कुरुक्षेत्र को 48 कोस का तीर्थक्षेत्र माना गया है। एक कोस की प्राचीन माप अलग-अलग स्रोतों में भिन्न-भिन्न मिलती है, तथापि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की वर्तमान गतिविधियों (जैसे 24 किलोमीटर की 'अष्टकोसी यात्रा') के आधार पर अनुमानतः इसकी कुल परिधि 140-150 किलोमीटर के आसपास मानी जा सकती है। यह कोई एक नगर नहीं, अपितु अनेक तीर्थों, सरोवरों, आश्रमों और ऐतिहासिक स्थलों से मिलकर बना विशाल धार्मिक क्षेत्र है।

वर्तमान समय में यह पवित्र क्षेत्र हरियाणा के कुरुक्षेत्र, करनाल, कैथल, जींद और पानीपत जिलों में फैला हुआ है। कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की हालिया घोषणाओं के अनुसार इस सम्पूर्ण क्षेत्र में 182 तीर्थ चिह्नित किए गए हैं (यद्यपि विभिन्न कालों में यह संख्या 51 से लेकर 367 तक भिन्न-भिन्न स्रोतों में वर्णित मिलती है, क्योंकि तीर्थ-गणना की सीमा-रेखा तथा मान्यता में समय के साथ परिवर्तन होता रहा है)। इस ग्रन्थ में आगे 'अध्याय 30' में इन्हीं 182 तीर्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

400 किलोमीटर की वास्तविक यात्रा

इस पुस्तक में वर्णित यात्रा पारम्परिक 48 कोस की परिधि का केवल सांकेतिक वर्णन नहीं है। हमने आधुनिक सड़क-मार्ग से इन तीर्थों का प्रत्यक्ष भ्रमण किया। घुमावदार ग्रामीण मार्गों, विभिन्न जिलों में स्थित तीर्थों, आने-जाने के मार्ग तथा प्रत्येक स्थल पर पहुँचने के

कारण हमारी पूरी तीर्थयात्रा लगभग 400 किलोमीटर की सड़क-यात्रा में सम्पन्न हुई। इसलिए इस पुस्तक में जहाँ '48 कोस यात्रा' का उल्लेख है, उसका आशय पूरे तीर्थ-क्षेत्र के वास्तविक स्थल-दर्शन से है।

मेरी 51वीं यात्रा

16 दिसम्बर 2025 की प्रातः बेला में मैं अपनी 51वीं ज्योतिसर-यात्रा के लिए निकला। पिछली रात्रि हमारा विश्राम कुरुक्षेत्र स्थित वैरागी धर्मशाला में हुआ था। यह धर्मशाला सनातन वैष्णव बैरागी समाज की सेवा-परम्परा का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ प्रत्येक वर्ष हज़ारों श्रद्धालुओं को निःस्वार्थ भाव से आवास उपलब्ध कराया जाता है।

प्रातःकाल मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी निर्मला वैष्णव, पोता भावेश तथा पोती दिव्यांशी भी इस पावन यात्रा में सम्मिलित हुए। यह यात्रा केवल दर्शन की नहीं थी; इसका उद्देश्य प्रत्येक तीर्थ के इतिहास, पुरातात्त्विक महत्व और धार्मिक परम्परा का अध्ययन करना भी था।

ज्योतिसर की ओर बढ़ते हुए मन में बार-बार यही विचार आ रहा था कि आज हम उस स्थान की ओर जा रहे हैं जहाँ मानव इतिहास का सबसे महान संवाद हुआ था। एक ओर अर्जुन का मोह था, दूसरी ओर भगवान श्रीकृष्ण का दिव्य उपदेश। वही संवाद आज भी करोड़ों लोगों के जीवन का मार्गदर्शक है।

एक सैनिक के रूप में मैंने अनेक स्थान देखे हैं, परन्तु ज्योतिसर की ओर बढ़ते समय मन में जो श्रद्धा, शांति और आत्मिक ऊर्जा का अनुभव होता है, वह किसी अन्य स्थान पर नहीं मिला। शायद यही इस भूमि की आध्यात्मिक शक्ति है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

अब कुछ ही क्षणों में हम उस पावन स्थल पर पहुँचने वाले थे जहाँ आज भी अक्षय वटवृक्ष गीता के अमर संदेश का मौन साक्षी बनकर खड़ा है।

भाग-2 : अक्षय वटवृक्ष – गीता का जीवंत साक्षी

कुछ ही समय बाद हमारी गाड़ी ज्योतिसर तीर्थ के मुख्य प्रवेश द्वार पर पहुँची। जैसे ही मैंने वाहन से उतरकर इस पावन भूमि पर पहला कदम रखा, मन श्रद्धा से भर उठा। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सम्पूर्ण वातावरण आज भी भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य उपदेश की अनुगूँज से आलोकित हो।

ज्योतिसर का वर्तमान परिसर हरियाणा सरकार एवं कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) द्वारा सुव्यवस्थित रूप से विकसित किया गया है। यहाँ विशाल प्रवेश-द्वार, पक्के मार्ग, उद्यान, प्रकाश-व्यवस्था, व्याख्यात्मक शिलालेख तथा श्रद्धालुओं की सुविधा हेतु आवश्यक व्यवस्थाएँ उपलब्ध हैं। प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु भारत तथा विदेशों से यहाँ दर्शन करने आते हैं।

अक्षय वटवृक्ष

ज्योतिसर का सबसे पवित्र एवं आकर्षण का केन्द्र है अक्षय वटवृक्ष। भारतीय परम्परा के अनुसार इसी वटवृक्ष के नीचे भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश दिया था। इसलिए इसे केवल एक वृक्ष नहीं, अपितु भारतीय आध्यात्मिक इतिहास का जीवंत प्रतीक माना जाता है।

वर्तमान में दिखाई देने वाला वटवृक्ष प्राचीन मूल पर निरन्तर विकसित होती जीवित परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी

शाखाएँ दूर-दूर तक फैली हुई हैं और श्रद्धालु इसकी परिक्रमा कर भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं। वृक्ष के चारों ओर निर्मित संगमरमर का चबूतरा श्रद्धा और संरक्षण का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक निरन्तरता – एक स्थानीय परम्परा

यह मान्यता है कि मध्यकाल में भी इस स्थान की धार्मिक महत्ता बनी रही और यहाँ पूजा-अर्चना की परम्परा निरन्तर चलती रही, जिससे यह क्षेत्र भारतीय आध्यात्मिक चेतना के प्रमुख केन्द्रों में गिना जाता रहा। कुछ स्थानीय विवरणों में आदि शंकराचार्य के इस क्षेत्र से जुड़ाव की भी चर्चा मिलती है; तथापि इसका स्वतंत्र एवं ठोस ऐतिहासिक सत्यापन उपलब्ध नहीं है, अतः इस ग्रन्थ में इसे प्रमाणित इतिहास के बजाय स्थानीय परम्परा के रूप में ही दर्ज किया जा रहा है।

संरक्षण का आधुनिक इतिहास

उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार वटवृक्ष के चारों ओर बना पक्का चबूतरा बिहार-स्थित महाराजा दरभंगा के सहयोग से निर्मित करवाया गया था – यह हिन्दू शासकों द्वारा दूर-दराज के तीर्थों के संरक्षण में योगदान देने की उस पुरानी परम्परा का उदाहरण है, जो भारत के विभिन्न भागों में देखी जाती रही है। स्वतंत्रता के पश्चात हरियाणा सरकार तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इस सम्पूर्ण परिसर का व्यापक विकास किया।

आज यह स्थल धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक – तीनों दृष्टियों से भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तीर्थस्थलों में गिना जाता है।

मेरा प्रथम दर्शन

मैं धीरे-धीरे उस वटवृक्ष के समीप पहुँचा। कुछ क्षण बिना कुछ बोले उसे निहारता रहा। सैनिक-जीवन में मैंने हिमालय की चोटियाँ देखीं, कारगिल की रणभूमि देखी, संयुक्त राष्ट्र मिशन के दौरान अफ्रीका की धरती देखी, किन्तु इस वटवृक्ष के सामने खड़े होकर जो आत्मिक शांति अनुभव हुई, वह शब्दों में व्यक्त करना कठिन है।

मैंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

मेरे साथ खड़े मेरे पोते भावेश ने पूछा –

"दादाजी, क्या भगवान श्रीकृष्ण सचमुच यहीं खड़े थे?"

मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया –

"बेटा, भारतीय परम्परा हज़ारों वर्षों से इस स्थान को वही स्थल मानती है जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। इसलिए यह केवल एक वृक्ष नहीं, अपितु गीता के अमर ज्ञान का प्रतीक है।"

मेरी पोती दिव्यांशी ने भी श्रद्धा से हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उस क्षण मुझे लगा कि सनातन संस्कृति की विरासत अगली पीढ़ी तक पहुँच रही है।

ज्ञान का अनन्त प्रकाश

ज्योतिसर केवल एक धार्मिक स्थल नहीं है। यह सम्पूर्ण मानवता के लिए ज्ञान, कर्तव्य और आत्मबोध का प्रतीक है। संसार के अनेक

देशों में श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन किया जाता है, परन्तु उस दिव्य संदेश का उद्गम यहीं इस पावन भूमि पर हुआ था।

आज भी जब कोई श्रद्धालु इस वटवृक्ष के नीचे कुछ क्षण मौन बैठता है, तो उसे ऐसा अनुभव होता है मानो भगवान श्रीकृष्ण का वही संदेश पुनः सुनाई दे रहा हो – "कर्म करो, धर्म का पालन करो और सत्य के मार्ग पर अडिग रहो।"

इसी भावना के साथ हम आगे बढ़े, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप की भव्य प्रतिमा हमारा इंतज़ार कर रही थी।

भाग-3 : पंचधातु की विराट प्रतिमा और गीता का सार्वभौमिक संदेश

अक्षय वटवृक्ष के दर्शन एवं परिक्रमा के पश्चात् हम ज्योतिसर परिसर के उस भाग की ओर बढ़े जहाँ भगवान श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप की भव्य प्रतिमा स्थापित है। दूर से ही यह प्रतिमा श्रद्धालुओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। जैसे-जैसे हम निकट पहुँचे, उसकी विशालता और कलात्मकता मन को विस्मित करने लगी।

यह प्रतिमा भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को प्रदर्शित विश्वरूप की स्मृति को साकार करती है। श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय (विश्वरूप दर्शन योग) में वर्णित उसी दिव्य दृश्य को मूर्त रूप देने का प्रयास यहाँ किया गया है।

पंचधातु की प्रतिमा

परिसर में स्थापित यह प्रतिमा पंचधातु से निर्मित है। भारतीय शिल्प-परम्परा में पंचधातु की मूर्तियों का विशेष धार्मिक एवं

सांस्कृतिक महत्व माना गया है। सामान्यतः पंचधातु में स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह तथा जस्ता अथवा टिन का सम्मिश्रण होता है। प्राचीन भारत में देवप्रतिमाओं के निर्माण में इस मिश्रधातु का व्यापक उपयोग किया जाता था, क्योंकि इसे दीर्घायु, पवित्र तथा कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रतिमा में भगवान श्रीकृष्ण सारथी-रूप में अर्जुन के रथ का संचालन करते हुए दिखाई देते हैं। यह दृश्य केवल महाभारत के युद्ध का चित्रण नहीं है, अपितु मानव-जीवन में ईश्वर के मार्गदर्शन का भी प्रतीक है। अर्जुन प्रत्येक मानव का प्रतिनिधित्व करता है और श्रीकृष्ण उस दिव्य चेतना के प्रतीक हैं, जो संकट की घड़ी में सही मार्ग दिखाती है।

गीता का विश्वरूप

श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय में अर्जुन भगवान से उनके दिव्य स्वरूप के दर्शन की प्रार्थना करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण उन्हें दिव्य चक्षु प्रदान करते हैं और अपना विराट रूप प्रकट करते हैं।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥

(गीता 11.12)

अर्थात् यदि आकाश में एक साथ हज़ार सूर्य उदित हो जाएँ, तो भी उनकी प्रभा उस परम विराट स्वरूप की तुलना नहीं कर सकती।

ज्योतिसर की यह प्रतिमा श्रद्धालुओं को उसी अध्याय की स्मृति कराती है और यह संदेश देती है कि ईश्वर किसी एक रूप या सीमा में बँधे नहीं हैं; उनका स्वरूप अनन्त है।

एक सैनिक की अनुभूति

मैं वर्षों तक भारतीय सेना में रहा। जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आए जब संकट और शांति के बीच केवल एक पल का अंतर रह गया। परन्तु इस प्रतिमा के सामने खड़े होकर मुझे यह अनुभव हुआ कि मनुष्य कितना छोटा है और परमात्मा की योजना कितनी विराट।

उस क्षण मुझे गीता का यह संदेश स्मरण हुआ –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता 4.7)

धर्म की रक्षा के लिए ईश्वर समय-समय पर विभिन्न रूपों में मानवता का मार्गदर्शन करते हैं। यही संदेश महाभारत के समय भी था और आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

नई पीढ़ी की जिज्ञासा

प्रतिमा को निहारते हुए मेरे पोते भावेश ने पूछा —

"दादाजी, भगवान इतने विशाल क्यों दिखाए गए हैं?"

मैंने उत्तर दिया –

"बेटा, यह भगवान का वास्तविक आकार नहीं, अपितु उनके अनन्त स्वरूप का प्रतीक है। इसका अर्थ है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी परम शक्ति में समाया हुआ है।"

दिव्यांशी कुछ देर तक प्रतिमा को निहारती रही और बोली –

"दादाजी, ऐसा लगता है जैसे भगवान अभी भी अर्जुन को समझा रहे हैं।"

उसकी बात सुनकर मेरे मन में प्रसन्नता हुई। यही तो इस तीर्थ की सबसे बड़ी विशेषता है – यह केवल इतिहास नहीं सुनाता, बल्कि प्रत्येक पीढ़ी को धर्म, कर्तव्य और सत्य का संदेश देता है।

ज्योतिसर का वैश्विक महत्व

आज श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हो चुका है। विश्वविद्यालयों, सैन्य अकादमियों, प्रबंधन-संस्थानों तथा दार्शनिक अध्ययन-केन्द्रों में गीता का अध्ययन किया जाता है। ऐसे में ज्योतिसर केवल भारत का नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता की साझा आध्यात्मिक धरोहर है।

यहाँ स्थापित पंचधातु की प्रतिमा प्रत्येक आगंतुक को यह स्मरण कराती है कि जीवन के प्रत्येक संघर्ष में यदि विवेक, कर्तव्य और धर्म साथ हों, तो विजय निश्चित है।

विराट प्रतिमा के दर्शन के पश्चात् हम गीता ज्ञान मंदिर की ओर बढ़े, जहाँ गीता के अमर श्लोक आज भी श्रद्धालुओं को जीवन का मार्ग दिखाते हैं।

भाग-4 : गीता के अमर श्लोक और एक सैनिक का जीवन-दर्शन

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

ज्योतिसर में कुछ समय मौन बैठने के बाद मेरे मन में एक विचार बार-बार उठ रहा था – आखिर ऐसा क्या है कि लगभग पाँच हज़ार वर्षों के बाद भी श्रीमद्भगवद्गीता विश्व का सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला आध्यात्मिक ग्रंथ बनी हुई है?

उत्तर स्पष्ट है – गीता किसी एक धर्म, जाति या युग की पुस्तक नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव-जीवन का शाश्वत मार्गदर्शन है। आज विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों, सैन्य अकादमियों, प्रबंधन-संस्थानों तथा दार्शनिक अध्ययन-केन्द्रों में गीता का अध्ययन किया जाता है। संकट, संघर्ष, नेतृत्व, कर्तव्य, आत्मविश्वास और नैतिक निर्णय जैसे विषयों पर गीता का दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना महाभारत-काल में था।

ज्योतिसर की पावन भूमि पर बैठकर मैंने गीता के कुछ ऐसे श्लोकों का स्मरण किया जिन्होंने मेरे सैनिक-जीवन और उसके बाद के शोध-जीवन को गहराई से प्रभावित किया।

1. कर्मयोग का संदेश

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.47)

भावार्थ : मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल पर नहीं। इसलिए बिना फल की चिंता किए अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भारतीय सेना में सेवा करते हुए मैंने इस सिद्धान्त को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया। सीमा पर तैनात सैनिक अपने कर्तव्य का पालन करता है; वह परिणाम की चिंता नहीं करता। यही गीता का कर्मयोग है।

2. आत्मा की अमरता

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

(गीता 2.23)

भावार्थ : आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भिगो सकता है और न वायु सुखा सकती है। आत्मा शाश्वत और अविनाशी है।

यह श्लोक केवल दर्शन नहीं, अपितु साहस का स्रोत बन जाता है। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि आत्मा अमर है, तब भय पर विजय प्राप्त करना सरल हो जाता है।

3. स्थितप्रज्ञ का आदर्श

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

(गीता 2.56)

भावार्थ : जो व्यक्ति दुःख में विचलित नहीं होता, सुख में आसक्त नहीं होता तथा राग, भय और क्रोध से मुक्त रहता है, वही स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

एक सैनिक के लिए यह केवल आध्यात्मिक शिक्षा नहीं, अपितु मानसिक अनुशासन का सर्वोच्च सिद्धान्त है। संकट की घड़ी में धैर्य ही सबसे बड़ा अस्त्र होता है।

4. निष्काम भक्ति

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता 18.65)

भावार्थ : अपना मन मुझमें लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो। ऐसा करने से तुम मुझे ही प्राप्त होगे।

सनातन वैष्णव बैरागी परम्परा का मूल आधार यही निष्काम भक्ति है। जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य ने भी राधा-कृष्ण की युगल उपासना के माध्यम से इसी प्रेममयी भक्ति का संदेश दिया।

5. पूर्ण समर्पण

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता 18.66)

भावार्थ : सभी प्रकार के अहंकार और आसक्ति का त्याग करके केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा; शोक मत करो।

गीता का यह अन्तिम उपदेश मनुष्य को ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास और समर्पण का संदेश देता है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

एक सैनिक का अनुभव

जब मैं ज्योतिसर की उस पावन भूमि पर बैठा था, तब मेरे सामने सैनिक-जीवन की अनेक स्मृतियाँ चलचित्र की भाँति उभरने लगीं। कारगिल की ऊँची चोटियाँ, संयुक्त राष्ट्र शांति-मिशन के कठिन दिन, संघर्ष, चुनौतियाँ और जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव — सब कुछ एक-एक कर स्मरण होने लगा।

मुझे अनुभव हुआ कि यदि गीता के सिद्धान्त जीवन में न होते, तो शायद कठिन परिस्थितियों का सामना करना इतना सरल नहीं होता। गीता ने मुझे सिखाया – कर्तव्य से बड़ा कोई धर्म नहीं, साहस से बड़ा कोई अस्त्र नहीं, और सत्य से बड़ा कोई विजय-मार्ग नहीं।

इसी प्रेरणा ने मुझे सैनिक-जीवन के बाद कलम उठाने की शक्ति दी। यदि बंदूक से राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा होती है, तो कलम से राष्ट्र की संस्कृति और इतिहास की रक्षा होती है। यही भावना मुझे वैष्णव बैरागी परम्परा के विस्मृत इतिहास के शोध की ओर ले आई।

ज्योतिसर की पावन भूमि से विदा लेते समय मेरे मन में एक ही संकल्प था – जब तक जीवन है, सनातन संस्कृति, गीता के संदेश और भारत के गौरवशाली इतिहास के प्रचार-प्रसार का यह कार्य निरन्तर चलता रहेगा।

प्रामाणिक संदर्भ

1. महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय 1, श्लोक 1।

2. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2, 4, 11, 18 (यथोद्धृत श्लोक)।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

3. वामन पुराण, नारदीय पुराण, ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण – कुरुक्षेत्र-माहात्म्य सम्बन्धी उल्लेख।

4. कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) — 48 कोस कुरुक्षेत्र एवं 182 तीर्थ सम्बन्धी आधिकारिक विवरण।

5. हरियाणा पर्यटन विभाग – ज्योतिसर सम्बन्धी आधिकारिक प्रकाशन।

6. स्थानीय एवं विश्वकोशीय स्रोत – अक्षय वटवृक्ष एवं चबूतरा-निर्माण सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण।

7. लेखक का क्षेत्रीय अध्ययन एवं प्रत्यक्ष अवलोकन (51वीं यात्रा सहित, दिसम्बर 2025)।

अध्याय–3

सनातन कुरुक्षेत्र सृष्टि, सरस्वती, श्रीकृष्ण की अमर भूमि

विज्ञान और वेद का महासंगम

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : वह भूमि जहाँ सृष्टि का आरम्भ हुआ

भारतवर्ष की पवित्र भूमि पर अनेक तीर्थ हैं, परन्तु यदि किसी एक स्थान को "धर्मक्षेत्र", "यज्ञभूमि", "वेदभूमि" और "गीता-भूमि"—इन चारों उपाधियों का एक साथ गौरव प्राप्त है, तो वह है कुरुक्षेत्र।

कुरुक्षेत्र केवल एक जनपद या भौगोलिक क्षेत्र नहीं है। यह भारतीय सभ्यता की आत्मा है। यही वह भूमि है जहाँ वैदिक ऋषियों ने यज्ञ किए, जहाँ सरस्वती और दृषद्वती के मध्य वैदिक संस्कृति का विकास हुआ, जहाँ महाभारत का महान युद्ध लड़ा गया और जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का अमर उपदेश दिया।

हजारों वर्षों से हमारे वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, महाभारत, पुराण और स्थानीय परम्पराएँ इस भूमि की महिमा का वर्णन करते आए हैं। आधुनिक युग में उपग्रह चित्रण, भूवैज्ञानिक अध्ययन, पुरातात्त्विक उत्खनन और भू-रासायनिक अनुसंधान ने इस क्षेत्र के अनेक ऐतिहासिक पक्षों को नई दृष्टि से समझने का अवसर दिया है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र उन दुर्लभ स्थलों में है जहाँ आस्था और अनुसंधान एक-दूसरे के पूरक बनकर सामने आते हैं।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

धर्मक्षेत्र की वैदिक पहचान

महाभारत का प्रथम श्लोक सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।

यहाँ "धर्मक्षेत्र" शब्द केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं है। वैदिक साहित्य में भी इस क्षेत्र को यज्ञ, तप और ऋषियों की साधना की भूमि के रूप में वर्णित किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य का प्रदेश "देवयजन" अर्थात् देवताओं की यज्ञभूमि माना गया। विद्वानों के अनुसार यही क्षेत्र आगे चलकर कुरुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तैत्तिरीय संहिता, वामन पुराण, स्कन्द पुराण, नारदीय पुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी इस भूमि के धार्मिक महत्व का विस्तृत वर्णन करते हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र

प्राचीन परम्परा के अनुसार कुरुक्षेत्र का विस्तार 48 कोस माना गया है। आधुनिक माप से यह लगभग 150 किलोमीटर की सांस्कृतिक-धार्मिक परिधि है।

वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था में यह क्षेत्र मुख्यतः हरियाणा के पाँच जिलों—कुरुक्षेत्र, करनाल, कैथल, जींद तथा पानीपत—में विस्तृत है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) द्वारा प्रकाशित आधिकारिक "48 कोस कुरुक्षेत्र – तीर्थ विवरणिका" के अनुसार इस क्षेत्र में कुल 182 तीर्थों

का प्रलेखन किया गया है, जिनकी सूची "182. रामशरण तीर्थ – हथलाना (महाभारत सम्बद्ध)" पर समाप्त होती है। प्रत्येक तीर्थ का अपना ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है। इस पुस्तक में इन प्रमुख तीर्थों का क्रमवार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सृष्टि और ब्रह्मा का यज्ञ

पुराणों के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने इसी क्षेत्र में महायज्ञ सम्पन्न किया था। इसी कारण इसे ब्रह्मक्षेत्र तथा धर्मक्षेत्र भी कहा गया।

यद्यपि इस प्रसंग को धार्मिक परम्परा के रूप में देखा जाता है, परन्तु यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि वैदिक साहित्य में कुरुक्षेत्र को अत्यन्त प्राचीन यज्ञभूमि के रूप में निरन्तर स्मरण किया गया है। यही कारण है कि हजारों वर्षों से यह क्षेत्र भारतीय तीर्थ परम्परा का केन्द्र बना हुआ है।

वेद और विज्ञान का मिलन

कई वर्षों तक यह माना जाता रहा कि सरस्वती नदी का उल्लेख केवल धार्मिक ग्रन्थों तक सीमित है। किन्तु पिछले कुछ दशकों में भारतीय और अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा किए गए अनुसंधानों ने उत्तर-पश्चिम भारत में अनेक प्राचीन नदी-पथ (Palaeochannels) की पहचान की है।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO), भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (GSI), भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों के अध्ययनों ने यह संकेत दिया है कि हरियाणा, राजस्थान और गुजरात से होकर एक विशाल प्राचीन नदी तंत्र

अस्तित्व में था। इन अध्ययनों ने सरस्वती नदी के विषय में नए वैज्ञानिक प्रश्न और महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत किए हैं।

इसी कारण आज कुरुक्षेत्र केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि भूगोल, पुरातत्त्व, भूविज्ञान, जलविज्ञान और इतिहास के शोध का भी प्रमुख केन्द्र बन चुका है।

भाग-2 : तीन महानदियों का रहस्य – यमुना, सतलुज और सरस्वती

कुरुक्षेत्र की महानता केवल महाभारत या श्रीमद्भगवद्गीता तक सीमित नहीं है। इस भूमि की वास्तविक पहचान उन तीन महानदियों से जुड़ी हुई है, जिन्होंने हजारों वर्षों तक उत्तर भारत की सभ्यता, संस्कृति और कृषि को जीवन दिया। ये तीन नदियाँ थीं– सरस्वती, यमुना और सतलुज।

वेदों और पुराणों में इन नदियों का उल्लेख केवल धार्मिक प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि वास्तविक भूगोल के रूप में मिलता है। आधुनिक विज्ञान ने भी उपग्रह चित्रों, भूगर्भीय अध्ययन, तलछट (Sediment) विश्लेषण तथा पुरातात्विक अनुसंधानों के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि उत्तर-पश्चिम भारत का नदी तंत्र प्राचीन काल में वर्तमान से भिन्न था।

सरस्वती – वैदिक सभ्यता की जीवनधारा

ऋग्वेद में सरस्वती का सबसे अधिक उल्लेख मिलता है। उसे केवल नदी नहीं, बल्कि "नदीतमा" अर्थात् नदियों में श्रेष्ठ कहा गया है।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। (ऋग्वेद 2.41.16)

इस मंत्र में सरस्वती को माता, श्रेष्ठ नदी और देवी–तीनों रूपों में सम्मान दिया गया है।

ऋग्वैदिक वर्णनों के अनुसार सरस्वती हिमालय से निकलकर पश्चिम की ओर बहती हुई समुद्र तक पहुँचती थी। उसके तट पर अनेक ऋषियों के आश्रम, यज्ञस्थल और वैदिक शिक्षाकेन्द्र विकसित

हुए। इसलिए अनेक इतिहासकार सरस्वती को वैदिक सभ्यता की जीवनरेखा मानते हैं।

प्राचीन यमुना का पश्चिमी प्रवाह

वर्तमान समय में यमुना नदी दिल्ली, मथुरा, आगरा होते हुए प्रयागराज में गंगा से मिलती है। किन्तु भूवैज्ञानिक अनुसंधानों से संकेत मिलता है कि अत्यंत प्राचीन काल में यमुना की कुछ धाराएँ पश्चिम की ओर भी प्रवाहित होती थीं और उनका सम्बन्ध सरस्वती नदी तंत्र से रहा होगा।

हरियाणा के कैथल और करनाल क्षेत्र में किए गए तलछटी (Sediment) अध्ययनों तथा OSL (Optically Stimulated Luminescence) परीक्षणों से प्राचीन नदी-पथों की आयु का अनुमान लगाया गया है। इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला कि हिमालय से आने वाली कुछ प्राचीन जलधाराएँ समय के साथ अपना मार्ग बदलती रहीं।

इसी कारण अनेक भूवैज्ञानिक यह मानते हैं कि उत्तर-पश्चिम भारत का नदी तंत्र विभिन्न कालों में परिवर्तित होता रहा, जिसका प्रभाव सरस्वती नदी पर भी पड़ा।

सतलुज और सरस्वती का सम्बन्ध

आज सतलुज नदी पंजाब से होकर पाकिस्तान में सिंधु नदी से मिलती है, परन्तु अनेक भूवैज्ञानिक अध्ययनों में यह संभावना व्यक्त की गई है कि प्राचीन काल में सतलुज की कुछ धाराएँ घग्घर-हकरा (जिसे अनेक शोधकर्ता सरस्वती नदी तंत्र से जोड़ते हैं) की ओर प्रवाहित होती थीं।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

अंतरराष्ट्रीय शोधकर्ताओं द्वारा किए गए Zircon Dating, तलछट विश्लेषण तथा हिमालयी खनिजों के अध्ययन से यह संकेत मिला है कि प्राचीन काल में नदी मार्गों में बड़े परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के कारण सरस्वती का जलस्रोत धीरे-धीरे कम होता गया और अंततः उसका सतही प्रवाह समाप्त हो गया।

विज्ञान क्या कहता है?

पिछले तीन दशकों में अनेक वैज्ञानिक संस्थानों ने उत्तर-पश्चिम भारत के प्राचीन नदी मार्गों का अध्ययन किया है। इनमें प्रमुख हैं– भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO), भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (GSI), भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI), आईआईटी कानपुर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तथा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के भूवैज्ञानिक शोध।

इन अध्ययनों में Remote Sensing, Satellite Imagery, Ground Penetrating Survey, Sediment Analysis, OSL Dating तथा Isotope Studies जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया गया। इन अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ कि हरियाणा, राजस्थान और गुजरात के अनेक भागों में विशाल प्राचीन नदी-पथ आज भी भूगर्भ में सुरक्षित हैं।

वेद और विज्ञान का अद्भुत संगम

सबसे रोचक तथ्य यह है कि जिन क्षेत्रों का उल्लेख ऋग्वेद, महाभारत और पुराणों में सरस्वती के तट के रूप में मिलता है, उन्हीं क्षेत्रों में आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययन भी प्राचीन नदी-पथों की पहचान करते हैं।

यद्यपि वैज्ञानिक समुदाय में सरस्वती नदी की उत्पत्ति, प्रवाह और कालक्रम के विषय में विभिन्न मत हैं, फिर भी इस बात पर व्यापक सहमति है कि उत्तर-पश्चिम भारत में अतीत में एक विशाल नदी तंत्र विद्यमान था, जिसने इस क्षेत्र की सभ्यता और संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया।

भाग-3 : सरस्वती नदी – विज्ञान की कसौटी पर वेदों का सत्य

हजारों वर्षों तक अनेक विद्वानों ने सरस्वती नदी को केवल वैदिक साहित्य की एक प्रतीकात्मक या पौराणिक नदी माना। किंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से प्रारम्भ हुए वैज्ञानिक अनुसंधानों ने इस धारणा को चुनौती दी। आज उपग्रह चित्रों, भूगर्भीय सर्वेक्षणों, पुरातात्त्विक उत्खननों तथा जलवैज्ञानिक अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि उत्तर-पश्चिम भारत में एक विशाल प्राचीन नदी तंत्र विद्यमान था, जिसका संबंध वैदिक सरस्वती से जोड़ा जाता है।

यद्यपि सरस्वती नदी के सम्पूर्ण प्रवाह, कालक्रम और स्वरूप को लेकर वैज्ञानिक समुदाय में अभी भी शोध जारी है, फिर भी उपलब्ध साक्ष्यों ने इस विषय को आधुनिक विज्ञान के प्रमुख अनुसंधान क्षेत्रों में स्थापित कर दिया है।

ISRO का दूरसंवेदी अध्ययन

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) तथा उसके राष्ट्रीय रिमोट सेंसिंग केंद्र (NRSC) ने उपग्रह चित्रों (Satellite Imagery) और दूरसंवेदी तकनीक (Remote Sensing) के माध्यम से हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और गुजरात में अनेक प्राचीन नदी-पथों (Palaeochannels) का मानचित्रण किया।

इन अध्ययनों में घग्घर-हकरा नदी तंत्र के साथ अनेक ऐसे भू-आकृतिक चिह्न मिले, जो किसी विशाल प्राचीन नदी के अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं। विशेषज्ञों का मत है कि इन प्राचीन नदी-पथों ने हजारों वर्षों तक इस क्षेत्र की कृषि, मानव बसावट और सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भूगर्भ में आज भी जल

हरियाणा के अनेक स्थानों पर किए गए भूजल सर्वेक्षणों में प्राचीन नदी-पथों के नीचे पर्याप्त मात्रा में मीठा जल प्राप्त हुआ है। इन अध्ययनों से यह संकेत मिला कि जहाँ आज सतह पर नदी दिखाई नहीं देती, वहाँ भूगर्भ में प्राचीन जलधाराओं के अवशेष अब भी विद्यमान हैं। इसी कारण सरस्वती नदी के पुनर्जीवन (Saraswati Revival) पर भी समय-समय पर विभिन्न सरकारी एवं वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा अध्ययन किए जाते रहे हैं।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का योगदान

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के Centre for Earth Science and Remote Sensing Research (CERSR) ने भी सरस्वती नदी तथा 48 कोस कुरुक्षेत्र क्षेत्र पर महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं। भूगर्भीय नमूनों, तलछट परतों तथा प्राचीन नदी-पथों के अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया कि कुरुक्षेत्र क्षेत्र हजारों वर्षों से निरन्तर मानव गतिविधियों और नदी तंत्र से जुड़ा रहा है।

पुरातत्त्व क्या बताता है?

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) द्वारा हरियाणा, राजस्थान तथा गुजरात के अनेक स्थलों पर उत्खनन किए गए हैं। विशेष रूप से राखीगढ़ी (हरियाणा), भिर्राना (हरियाणा) तथा कालीबंगा (राजस्थान) जैसे स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक अवशेष बताते हैं कि इन क्षेत्रों में अत्यंत प्राचीन विकसित मानव सभ्यताएँ विद्यमान थीं।

इन स्थलों का स्थान उन प्राचीन नदी-पथों के समीप है जिन्हें अनेक शोधकर्ता सरस्वती नदी तंत्र से जोड़ते हैं। इसी कारण आज

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

अनेक विद्वान "सिंधु सभ्यता" के साथ-साथ "सिंधु-सरस्वती सभ्यता" शब्द का भी प्रयोग करते हैं।

वेद और आधुनिक अनुसंधान

ऋग्वेद में सरस्वती को हिमालय से समुद्र तक प्रवाहित होने वाली महानदी कहा गया है। दूसरी ओर आधुनिक भूवैज्ञानिक अनुसंधान बताते हैं कि प्राचीन काल में उत्तर-पश्चिम भारत का नदी तंत्र आज की तुलना में कहीं अधिक विस्तृत और जटिल था।

यद्यपि प्रत्येक वैदिक वर्णन को वैज्ञानिक रूप से उसी रूप में सिद्ध करना अभी सम्भव नहीं है, फिर भी यह उल्लेखनीय है कि अनेक आधुनिक अनुसंधान वैदिक भूगोल के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों के साथ रोचक समानताएँ प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि आज सरस्वती नदी केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर का शोध-विषय बन चुकी है।

एक शोधकर्ता की अनुभूति

जब मैंने पहली बार ISRO के उपग्रह मानचित्र, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के शोधपत्र और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की उत्खनन रिपोर्टों का अध्ययन किया, तो मेरे मन में एक गहरा विचार उत्पन्न हुआ।

वर्षों तक हमने अपने वेदों और पुराणों में सरस्वती का वर्णन पढ़ा। आज विज्ञान उन्हीं तथ्यों को आधुनिक उपकरणों की सहायता से नए दृष्टिकोण से समझने का प्रयास कर रहा है।

एक सैनिक के रूप में मैंने सीखा था कि किसी भी निष्कर्ष तक पहुँचने से पहले प्रमाण आवश्यक होते हैं। एक इतिहासकार के रूप

में भी मेरा यही सिद्धांत है—आस्था और प्रमाण दोनों का सम्मान होना चाहिए। इसी कारण इस पुस्तक में जहाँ धार्मिक परम्परा का उल्लेख है, वहाँ उसे उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है; और जहाँ वैज्ञानिक शोध उपलब्ध हैं, वहाँ उन्हें उनके मूल निष्कर्षों के साथ रखा गया है। यही शोध की निष्पक्ष पद्धति है।

भाग-4 : सरस्वती सभ्यता, 48 कोस कुरुक्षेत्र और ऐतिहासिक संदर्भ

सरस्वती नदी के तट पर विकसित सभ्यता को आज विश्व के अनेक इतिहासकार "सिंधु-सरस्वती सभ्यता (Indus–Saraswati Civilization)" के नाम से भी संबोधित करते हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय उपमहाद्वीप के अनेक प्रमुख हड़प्पाकालीन नगर घग्घर-हकरा (संभावित सरस्वती) नदी तंत्र के किनारे स्थित मिले हैं।

राखीगढ़ी – भारतीय सभ्यता का महत्वपूर्ण केंद्र

हरियाणा के हिसार जिले में स्थित राखीगढ़ी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) द्वारा उत्खनित सबसे बड़े हड़प्पाकालीन नगरों में से एक है। यहाँ से प्राप्त नगर नियोजन, जल निकासी व्यवस्था, धातु उद्योग, मनके निर्माण, कृषि तथा मानव कंकालों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लगभग तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व यहाँ एक विकसित नगरीय संस्कृति विद्यमान थी।

राखीगढ़ी से प्राप्त एक मानव कंकाल (लगभग 2500 ईसा पूर्व) पर हुए डीएनए अध्ययन (Shinde et al., Cell, 2019) ने विशेष ध्यान आकर्षित किया। इस अध्ययन में उस व्यक्ति के जीनोम में मध्य-एशियाई "स्टेप्पी" वंशागति नहीं पाई गई। इस निष्कर्ष की व्याख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद है—कुछ पुरातत्वविद इसे आर्य-प्रवासन सिद्धांत की समीक्षा हेतु महत्वपूर्ण साक्ष्य मानते हैं, जबकि अनेक आनुवंशिकीविद इसे केवल एक व्यक्ति के जीनोम पर आधारित सीमित प्रमाण बताकर सतर्क व्याख्या का सुझाव देते हैं। एक संतुलित शोध-दृष्टि के अनुरूप, यह विषय अभी भी अकादमिक विमर्श का हिस्सा है, न कि किसी अंतिम निष्कर्ष का।

भिर्राना – प्राचीनतम बसावट के प्रमाण

फतेहाबाद जिले का भिर्राना सरस्वती तंत्र के अध्ययन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल माना जाता है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की खुदाई में यहाँ पूर्व-हड़प्पा तथा प्रारम्भिक हड़प्पा काल के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। मिट्टी के पात्र, अग्निकुण्ड, आवासीय संरचनाएँ तथा कृषि के अवशेष इस क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीन मानव बसावट का संकेत देते हैं।

कालीबंगा – वैदिक संस्कृति के संकेत

राजस्थान के कालीबंगा से प्राप्त अग्निवेदियाँ, नियोजित नगर व्यवस्था, खेतों के हल चलने के चिन्ह तथा धार्मिक संरचनाएँ भारतीय सभ्यता के उच्च विकास का परिचय देती हैं। यद्यपि अग्निवेदियों को सीधे वैदिक यज्ञ से जोड़ने पर विद्वानों में मतभेद हैं, फिर भी यह स्थल उत्तर-पश्चिम भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा को समझने में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

48 कोस कुरुक्षेत्र – जीवित विरासत

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) द्वारा प्रकाशित आधिकारिक "48 कोस कुरुक्षेत्र – तीर्थ विवरणिका" के अनुसार इस भूमि में कुल 182 तीर्थ सूचीबद्ध हैं, जो कुरुक्षेत्र, कैथल, जींद, पानीपत तथा करनाल—इन पाँचों जिलों में विस्तृत हैं। सूची का समापन "182. रामशरण तीर्थ – हथलाना (महाभारत सम्बद्ध)" पर होता है। ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, पिहोवा (पृथूदक), भीष्मकुण्ड, बाणगंगा, कपिल मुनि तीर्थ तथा अनेक अन्य तीर्थ आज भी वैदिक परम्परा की निरन्तरता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सात प्रमुख वन

वामन पुराण के अनुसार 48 कोस कुरुक्षेत्र भूमि में सात प्रमुख वन थे, जिनमें प्राचीन ऋषि-मुनियों के अनेक आश्रम स्थित थे–

- काम्यक वन – कमौदा
- अदिति वन – अभिमन्युपुर
- व्यास वन – बस्तली
- फलकी वन – फरल
- सूर्य वन – सजूमा
- शीत वन – सीवन
- मधुवन – मोहना

इन वनों में स्थित आश्रम इस भूमि की सुदीर्घ तपस्या-परम्परा के प्रत्यक्ष साक्षी माने जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि इन तीर्थों तथा वनों का वर्णन महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण, नारदीय पुराण तथा ब्रह्म पुराण में विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है।

वेद और विज्ञान का संवाद

आज ISRO, GSI, ASI, IIT कानपुर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थानों के अनुसंधान यह दर्शाते हैं कि उत्तर-पश्चिम भारत में प्राचीन नदी तंत्र का अस्तित्व था। दूसरी ओर ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण और महाभारत इसी क्षेत्र को सरस्वती, यज्ञभूमि और धर्मक्षेत्र के रूप में वर्णित करते हैं।

यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान और प्राचीन ग्रंथ अनेक बिंदुओं पर रोचक समानताएँ प्रस्तुत करते हैं, यद्यपि सभी विषयों पर पूर्ण वैज्ञानिक सहमति अभी भी विकसित हो रही है। यही संतुलित दृष्टिकोण एक शोध-ग्रंथ की पहचान है।

प्रमुख संदर्भ

वैदिक एवं प्राचीन ग्रंथ

- ऋग्वेद (विशेषतः नदी सूक्त एवं सरस्वती सूक्त)
- शतपथ ब्राह्मण
- तैत्तिरीय संहिता
- महाभारत - वनपर्व, उद्योगपर्व, शल्यपर्व, अनुशासनपर्व
- वामन पुराण
- स्कन्द पुराण
- नारदीय पुराण
- ब्रह्म पुराण
- पद्म पुराण
- वाल्मीकि रामायण

आधुनिक शोध एवं संस्थाएँ

- Archaeological Survey of India (ASI) – Rakhigarhi, Bhirrana एवं Kalibangan Excavation Reports.
- Geological Survey of India (GSI) – Palaeochannel Studies.

- ISRO–NRSC – River Saraswati: An Integrated Study.
- Kurukshetra Development Board (KDB) – 48 कोस कुरुक्षेत्र - तीर्थ विवरणिका (Official Documentation, 182 Tirthas).
- Kurukshetra University – Centre for Earth Science and Remote Sensing Research (CERSR).
- IIT Kanpur – Paleo-Yamuna एवं OSL Dating Research Papers.
- Shinde, V. et al. – "An Ancient Harappan Genome Lacks Ancestry from Steppe Pastoralists or Iranian Farmers," Cell, 2019.
- Peter D. Clift et al. – Geology तथा अन्य शोध पत्र (Sutlej–Ghaggar System).
- ScienceDirect पर प्रकाशित सरस्वती एवं उत्तर-पश्चिम भारत के नदी तंत्र संबंधी शोध-पत्र।

अध्याय–4

श्रीऔदुम्बराचार्य एवं अस्थल तिरखू तीर्थ

कुरुक्षेत्र की पावन भूमि पर निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग–1 : श्रीऔदुम्बराचार्य — निम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा

भूमिका

कुरुक्षेत्र की 48 कोस की पावन भूमि केवल महाभारत के युद्ध की रणभूमि नहीं, बल्कि भारत की प्राचीन आध्यात्मिक परम्पराओं का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र भी रही है। वेद, महाभारत, पुराण तथा मध्यकालीन संत-परम्पराओं में इस क्षेत्र का अनेक बार उल्लेख मिलता है। इसी भूमि से वैष्णव सम्प्रदायों का भी गहरा सम्बन्ध रहा है।

निम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा में वर्णित श्रीऔदुम्बराचार्य का सम्बन्ध कुरुक्षेत्र के समीप वर्तमान करनाल जनपद के पपनावा ग्राम

से बताया जाता है। यह तथ्य सम्प्रदाय के परम्परागत ग्रन्थ "श्रीआचार्य परम्परा परिचय" में उल्लिखित है, जो सम्प्रदाय की अपनी आचार्य-सूची पर आधारित प्राथमिक स्रोत है।

इस अध्याय का उद्देश्य किसी नई कथा का निर्माण करना नहीं, बल्कि उपलब्ध ग्रंथों, सम्प्रदाय की परम्परा तथा प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर इस ऐतिहासिक सम्बन्ध को यथावत प्रस्तुत करना है — जहाँ प्रमाण सम्प्रदाय-आन्तरिक है, वहाँ इसे स्पष्ट रूप से उसी रूप में चिन्हित किया गया है।

निम्बार्क सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय

निम्बार्क सम्प्रदाय वैष्णव चतुःसम्प्रदायों में से एक प्राचीन सम्प्रदाय है। इसे हंस सम्प्रदाय, सनकादि सम्प्रदाय अथवा कुमार सम्प्रदाय भी कहा जाता है। सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार ज्ञान की धारा श्रीहंस भगवान से सनकादि ऋषियों, उनसे देवर्षि नारद और फिर जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य तक पहुँची।

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत (भेदाभेद) दर्शन का प्रतिपादन किया तथा राधा-कृष्ण की युगल उपासना को विशेष महत्व

प्रदान किया। आज भारत के अनेक राज्यों सहित नेपाल तथा अन्य देशों में भी इस सम्प्रदाय के अनुयायी विद्यमान हैं।

श्रीऔदुम्बराचार्य

निम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा में श्रीऔदुम्बराचार्य का अत्यन्त सम्माननीय स्थान है। सम्प्रदाय के ग्रंथों के अनुसार वे जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। यह उल्लेखनीय है कि सम्प्रदाय के अपने प्रकाशनों में औदुम्बराचार्य की रचनाओं का उद्धरण भी मिलता है, जिससे उनका ऐतिहासिक-सम्प्रदायिक अस्तित्व पुष्ट होता है।

"श्रीआचार्य परम्परा परिचय" में उनके विषय में उल्लेख मिलता है कि—

> *"श्रीऔदुम्बराचार्य कृत ग्रंथ — औदुम्बर संहिता, व्रतपंचक तथा श्रीनिम्बार्क स्तोत्र। वास स्थान — कुरुक्षेत्र के समीप पपनावा ग्राम, जिला करनाल।"*

यह उल्लेख इस बात का महत्वपूर्ण प्रमाण है कि निम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा का सम्बन्ध कुरुक्षेत्र क्षेत्र से रहा है। यह प्रमाण

सम्प्रदाय-आन्तरिक स्रोत पर आधारित है; इस विषय पर स्वतंत्र, सम्प्रदाय-निरपेक्ष ऐतिहासिक शोध अभी सीमित है, और यही बात इसे भावी शोधकर्ताओं के लिए एक खुला विषय बनाती है।

शोध की दृष्टि से इसका महत्व

कुरुक्षेत्र का सम्बन्ध सामान्यतः महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता से जोड़ा जाता है, किन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय के परम्परागत स्रोत यह संकेत देते हैं कि यह क्षेत्र मध्यकालीन वैष्णव साधना का भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा।

यद्यपि श्रीऔदुम्बराचार्य के जीवन पर स्वतंत्र ऐतिहासिक सामग्री सीमित उपलब्ध है, फिर भी सम्प्रदाय की अधिकृत आचार्य-परम्परा में उनका उल्लेख इस विषय को शोध की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनाता है।

प्रमुख संदर्भ

- श्रीआचार्य परम्परा परिचय, पं. श्रीकिशोरदासजी, निम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद (राजस्थान) — सम्प्रदाय-आन्तरिक प्राथमिक स्रोत।

- श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ, निम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद द्वारा प्रकाशित आचार्य-परम्परा।
- महाभारत, वनपर्व।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड — 48 कोस तीर्थ-विवरणिका।

भाग–3 : अस्थल तिरखू तीर्थ — निम्बार्क सम्प्रदाय की स्थानीय परम्परा

कुरुक्षेत्र की 48 कोस की पावन परिक्रमा में अनेक ऐसे तीर्थ हैं जिनका उल्लेख महाभारत, पुराणों और स्थानीय परंपराओं में मिलता है। इन्हीं में से एक तीर्थ है अस्थल तिरखू तीर्थ (पानीपत जिले के सींक/सिंक-पाथरी ग्राम के समीप), जिसे निम्बार्क सम्प्रदाय की स्थानीय परम्परा एक प्राचीन साधना-केन्द्र मानती है।

सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार यह स्थल स्वामी स्वभूरामदेवाचार्य से सम्बद्ध माना जाता है, जो जगद्गुरु श्रीहरिव्यासदेवाचार्य के ज्येष्ठ शिष्यों में गिने जाते हैं। परम्परा के अनुसार उनका जन्म बुढ़िया बनी (वर्तमान यमुनानगर जनपद, जगाधरी के समीप) में हुआ तथा उनके शिष्यों ने हरियाणा एवं कुरुक्षेत्र क्षेत्र में सम्प्रदाय का प्रभाव स्थापित किया।

संपादकीय स्पष्टीकरण: स्वभूरामदेवाचार्य तथा बुढ़िया बनी सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण का सबसे विस्तृत उपलब्ध विवरण लेखक द्वारा स्वयं पूर्व में प्रकाशित एक लेख में मिलता है। अतः इसे स्वतंत्र तृतीय-पक्ष ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में नहीं, बल्कि सम्प्रदाय की मौखिक/स्थानीय परम्परा तथा लेखक के अपने क्षेत्र-शोध के रूप में

प्रस्तुत किया जा रहा है। शोध-ग्रंथ की निष्पक्षता हेतु यह भेद स्पष्ट रखना आवश्यक है।

अस्थल तिरखू तीर्थ में आज भी श्रीराधा-कृष्ण मंदिर, संतों की गद्दी तथा प्राचीन धार्मिक परंपराओं के चिह्न विद्यमान हैं। स्थानीय संतों और महंतों द्वारा यहाँ नियमित पूजा-अर्चना तथा धार्मिक आयोजन किए जाते हैं, जिससे यह परंपरा आज भी जीवित बनी हुई है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की आधिकारिक तीर्थ-विवरणिका में इस क्षेत्र से मिलता-जुलता "मचकुक यक्ष" तीर्थ भी सींक ग्राम, जिला पानीपत में सूचीबद्ध है (क्रमांक 142)। यह उल्लेखनीय है कि KDB की सूची में स्थान का नाम "सींक" अंकित है, जबकि स्थानीय परम्परा में "सिंक-पाथरी" नाम भी प्रचलित है — दोनों एक ही स्थान के भिन्न उच्चारण-रूप प्रतीत होते हैं, किन्तु इसकी अन्तिम पुष्टि हेतु स्थानीय राजस्व अभिलेखों की आवश्यकता है।

मैंने स्वयं इस तीर्थ के अनेक बार दर्शन किए हैं। वहाँ पहुँचकर यह अनुभव होता है कि इतिहास केवल पुस्तकों में नहीं रहता, बल्कि मंदिरों, प्राचीन वृक्षों, सरोवरों और संतों की परंपरा में भी जीवित रहता

है। ऐसे स्थानों का संरक्षण केवल धार्मिक कर्तव्य नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा भी है।

अस्थल तिरखू तीर्थ निम्बार्क सम्प्रदाय और कुरुक्षेत्र के मध्य उस सम्बन्ध का संकेत है, जिस पर अभी और स्वतंत्र ऐतिहासिक शोध अपेक्षित है। इस प्रकार के स्थल आने वाली पीढ़ियों को यह बताते हैं कि वैष्णव परंपरा का इतिहास केवल वृन्दावन या राजस्थान तक सीमित नहीं रहा, बल्कि हरियाणा की इस धर्मभूमि में भी उसकी जड़ें रही हैं।

संदर्भ

- श्रीआचार्य परम्परा परिचय, पं. श्रीकिशोरदासजी, श्रीनिम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद (राजस्थान)।
- 48 कोस कुरुक्षेत्र तीर्थ-विवरणिका, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB), क्रमांक 142।
- हरियाणा पर्यटन विभाग — कुरुक्षेत्र तीर्थ सम्बन्धी प्रकाशित सामग्री।
- लेखक का प्रत्यक्ष क्षेत्रीय भ्रमण एवं स्थल-अवलोकन तथा सम्प्रदाय की स्थानीय परम्परा (मौखिक स्रोत के रूप में चिन्हित)।

भाग–4 : मचक्रुक यक्ष और यक्ष-प्रश्न — धर्म की सर्वोच्च परीक्षा

कुरुक्षेत्र की 48 कोस परिक्रमा में वर्णित चार यक्षों में मचकुक (मचक्रुक) यक्ष का विशेष स्थान है। कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित 48 कोस कुरुक्षेत्र तीर्थ-विवरणिका में इसका स्थान सींक ग्राम, जिला पानीपत के समीप बताया गया है (क्रमांक 142)। यह स्थान आज यक्ष तीर्थ के रूप में जाना जाता है।

महाभारत के वनपर्व में वर्णित प्रसिद्ध यक्ष-प्रश्न की घटना भारतीय संस्कृति में धर्म, सत्य, विवेक और न्याय की सर्वोच्च परीक्षा मानी जाती है। यद्यपि महाभारत में इस यक्ष का नाम स्पष्ट रूप से मचक्रुक नहीं दिया गया है, किन्तु कुरुक्षेत्र की स्थानीय परम्परा तथा 48 कोस तीर्थ-परंपरा इस तीर्थ को मचक्रुक यक्ष से सम्बद्ध मानती है। इसलिए इस प्रसंग को स्थानीय परम्परा के संदर्भ में समझना चाहिए, न कि महाभारत के मूल पाठ के प्रत्यक्ष कथन के रूप में।

यक्ष-प्रश्न की कथा

वनवास के अंतिम वर्षों में एक दिन पाण्डव द्वैतवन में विचरण कर रहे थे। अत्यधिक परिश्रम और गर्मी के कारण सभी को तीव्र प्यास लगी।

जल की खोज में वे आगे बढ़े। तभी एक सुंदर, निर्मल और शांत सरोवर दिखाई दिया।

सबसे पहले सहदेव जल लेने पहुँचे। जैसे ही वे जल पीने लगे, एक अदृश्य वाणी सुनाई दी—

"हे राजकुमार! यह जल पीने से पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। अन्यथा यह जल तुम्हारे लिए घातक सिद्ध होगा।"

सहदेव ने उस वाणी की उपेक्षा की और जल पी लिया। तत्काल वे भूमि पर अचेत होकर गिर पड़े। जब सहदेव लौटकर नहीं आए तो नकुल पहुँचे, फिर अर्जुन, फिर भीमसेन — प्रत्येक ने चेतावनी की उपेक्षा की और उसी प्रकार अचेत हो गए।

अन्त में धर्मराज युधिष्ठिर वहाँ पहुँचे। उन्होंने अपने चारों भाइयों को भूमि पर अचेत पड़ा देखा। उसी समय वही दिव्य वाणी पुनः सुनाई दी—

"हे युधिष्ठिर! यह सरोवर मेरा है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, तभी जल ग्रहण करना।"

युधिष्ठिर ने अत्यन्त विनम्रता से उत्तर दिया—

"हे देव! प्रश्न पूछिए। धर्म के अनुसार जो उत्तर मुझे ज्ञात होंगे, मैं अवश्य दूँगा।"

इसके बाद यक्ष और युधिष्ठिर के बीच धर्म, सत्य, ज्ञान, जीवन, मृत्यु, कर्तव्य, मित्रता, दान, मोक्ष और मानव जीवन के उद्देश्य पर गहन संवाद हुआ। महाभारत की परम्परा में इस संवाद में कुल 124 प्रश्न और उनके उत्तर वर्णित माने जाते हैं।

कुछ प्रासंगिक प्रश्नोत्तर

यक्ष ने पूछा — "पृथ्वी से भी भारी क्या है?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया — "माता पृथ्वी से भी भारी है।"

यक्ष ने पूछा — "आकाश से भी ऊँचा कौन है?" युधिष्ठिर ने कहा — "पिता आकाश से भी ऊँचे हैं।"

यक्ष ने पूछा — "मनुष्य का सबसे बड़ा धन क्या है?" उत्तर मिला — "संतोष ही सबसे बड़ा धन है।"

फिर यक्ष ने वह प्रश्न पूछा जो भारतीय दर्शन का अमर वाक्य बन गया — "किमाश्चर्यम्?" अर्थात् संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?

"प्रतिदिन असंख्य प्राणियों को मृत्यु के मुख में जाते हुए देखकर भी मनुष्य स्वयं को अमर समझता है—इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है।"

यह उत्तर सुनकर यक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया — वे धर्मदेव थे, जो युधिष्ठिर के पिता भी थे। उन्होंने युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा, धैर्य और सत्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर चारों पाण्डवों को पुनर्जीवित कर दिया और उन्हें आगे के वनवास के लिए आशीर्वाद दिया।

यह प्रसंग केवल एक पौराणिक कथा नहीं है, बल्कि भारतीय दर्शन का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह सिखाता है कि बल से अधिक महत्त्व बुद्धि का, क्रोध से अधिक महत्त्व धैर्य का और अधिकार से अधिक महत्त्व धर्म का है।

संदर्भ

- महाभारत, वनपर्व, यक्ष-प्रश्न उपपर्व (गीता प्रेस संस्करण)।
- 48 कोस कुरुक्षेत्र तीर्थ-विवरणिका, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB), क्रमांक 142।
- वामन पुराण, कुरुक्षेत्र माहात्म्य।

- स्कन्द पुराण, कुरुक्षेत्र माहात्म्य।
- लेखक का प्रत्यक्ष क्षेत्रीय भ्रमण एवं स्थानीय परंपराओं का अध्ययन (मौखिक/स्थानीय स्रोत के रूप में चिन्हित)।

भाग–5 : एक सैनिक-इतिहासकार का अनुभव, संरक्षण की आवश्यकता एवं निष्कर्ष

अस्थल तिरखू तीर्थ की यात्रा मेरे लिए केवल एक धार्मिक यात्रा नहीं रही, बल्कि अपने सम्प्रदाय के इतिहास से प्रत्यक्ष साक्षात्कार का अवसर रही है। एक सैनिक के रूप में मैंने भारत की सीमाओं की रक्षा की, परंतु एक इतिहासकार के रूप में मुझे अनुभव हुआ कि हमारी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरोहरों की रक्षा भी उतनी ही आवश्यक है।

मैंने इस तीर्थ पर अनेक बार जाकर वहाँ के मंदिर, सरोवर, प्राचीन परंपराओं और स्थानीय संतों से संवाद किया। प्रत्येक यात्रा ने यह अनुभव कराया कि इतिहास केवल ग्रंथों में नहीं, बल्कि तीर्थों की मिट्टी, मंदिरों, सरोवरों और संत-परंपरा में भी जीवित रहता है।

अस्थल तिरखू तीर्थ आज भी निम्बार्क सम्प्रदाय की परंपरा का एक जीवंत केंद्र है। यहाँ स्थित श्रीराधा-कृष्ण मंदिर, संतों की गद्दी तथा धार्मिक वातावरण इस बात के संकेत हैं कि यह स्थान वैष्णव साधना

का केंद्र रहा है। किंतु समय के साथ अनेक प्राचीन तीर्थों की भाँति इस स्थान को भी संरक्षण और संवर्धन की आवश्यकता है।

विशेष रूप से इस क्षेत्र के प्राचीन सरोवरों, जल-संरचनाओं और ऐतिहासिक अवशेषों का वैज्ञानिक संरक्षण आवश्यक है। यदि समय रहते इन धरोहरों का उचित रखरखाव नहीं किया गया, तो आने वाली पीढ़ियाँ केवल पुस्तकों में उनका उल्लेख पढ़ेंगी, प्रत्यक्ष स्वरूप नहीं देख पाएँगी। इसलिए शासन, पुरातत्व विभाग, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, धार्मिक संस्थाओं तथा समाज—सभी की संयुक्त जिम्मेदारी है कि इन धरोहरों का संरक्षण किया जाए।

निम्बार्क सम्प्रदाय का इतिहास केवल राजस्थान, वृन्दावन अथवा ब्रज तक सीमित नहीं है। परम्परा के अनुसार हरियाणा की इस भूमि पर भी इसके आचार्यों ने साधना की और धर्म का प्रचार किया। श्रीऔदुम्बराचार्य तथा स्वभूरामदेवाचार्य जैसे नाम इस सम्भावित ऐतिहासिक सम्बन्ध के सूचक हैं, जिन पर आगे स्वतंत्र शोध की आवश्यकता है।

इस अध्याय का उद्देश्य किसी नई मान्यता का निर्माण करना नहीं, बल्कि उपलब्ध ग्रंथों, सम्प्रदाय की परंपराओं और प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन के आधार पर उन ऐतिहासिक संकेतों को सामने लाना है, जिन पर अभी तक अपेक्षित स्वतंत्र शोध नहीं हुआ है। यदि यह प्रयास भविष्य के शोधकर्ताओं को इस दिशा में और अधिक अनुसंधान के लिए प्रेरित करे, तो मैं अपने श्रम को सफल मानूँगा।

एक सैनिक के रूप में मैंने सीखा कि राष्ट्र की रक्षा केवल सीमाओं पर नहीं होती; उसकी संस्कृति, इतिहास और आस्था की रक्षा भी उतनी ही आवश्यक है। इसी भावना से मैंने कलम उठाई है।

अस्थल तिरखू तीर्थ, श्रीऔदुम्बराचार्य की परम्परा और निम्बार्क सम्प्रदाय की गौरवशाली विरासत आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी रहे — यही इस अध्याय का संदेश और मेरी हार्दिक कामना है।

संदर्भ

- श्रीआचार्य परम्परा परिचय, पं. श्रीकिशोरदासजी, श्रीनिम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद (राजस्थान)।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

- 48 कोस कुरुक्षेत्र तीर्थ-विवरणिका, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB)।
- महाभारत, वनपर्व (यक्ष-प्रश्न उपपर्व), गीता प्रेस, गोरखपुर।
- वामन पुराण, कुरुक्षेत्र माहात्म्य।
- हरियाणा पर्यटन विभाग एवं कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित तीर्थ सम्बन्धी सामग्री।
- लेखक का प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन एवं तीर्थ-भ्रमण (मौखिक/स्थानीय स्रोत के रूप में स्पष्ट रूप से चिन्हित)।

अध्याय—5

सन्निहित सरोवर —— मोक्ष-तीर्थ की गाथा

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : सन्निहित सरोवर – जहाँ समस्त तीर्थों का संगम माना गया

कुरुक्षेत्र की 48 कोस पवित्र परिक्रमा में यदि ब्रह्मसरोवर को आस्था का विराट प्रतीक माना जाता है, तो सन्निहित सरोवर को मोक्ष, श्राद्ध और पितृ-तर्पण का सर्वोच्च तीर्थ माना गया है। हजारों वर्षों से यह मान्यता चली आ रही है कि प्रत्येक अमावस्या के दिन पृथ्वी के समस्त तीर्थ अदृश्य रूप से यहाँ आकर एकत्रित होते हैं। इसी कारण यह स्थान सनातन परम्परा में अत्यन्त पवित्र माना गया है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

"सन्निहित" शब्द संस्कृत धातु से बना है, जिसका अर्थ है—निकट आना, एकत्र होना अथवा साथ उपस्थित होना। यही कारण है कि इस तीर्थ का नाम सन्निहित सरोवर पड़ा। प्राचीन ग्रंथों में इसे सन्निहित तीर्थ, सन्निहती सरोवर तथा कुछ स्थानीय परम्पराओं में सन्नेहित सरोवर के नाम से भी संबोधित किया गया है।

कुरुक्षेत्र का धार्मिक महत्व केवल महाभारत युद्ध अथवा श्रीमद्भगवद्गीता तक सीमित नहीं है। यह भूमि वैदिक काल से ही यज्ञ, तप, श्राद्ध और तीर्थ-संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रही है। सन्निहित सरोवर उसी प्राचीन परम्परा का जीवंत प्रतीक है, जहाँ आज भी देश-विदेश से श्रद्धालु अपने पितरों के निमित्त तर्पण, पिंडदान और श्राद्ध करने आते हैं।

सन्निहित सरोवर का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक उल्लेख वामन पुराण के कुरुक्षेत्र माहात्म्य में मिलता है। वहाँ इस तीर्थ की सीमा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

"रन्तुकादौजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम्। सरः सन्निहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु॥" (वामन पुराण 1/5)

अर्थात्—रन्तुक से ओजस तक तथा पावन से चतुर्मुख तक विस्तृत इस पवित्र सरोवर को स्वयं ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में सन्निहित सरोवर कहा था।

यह उल्लेख केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि कुरुक्षेत्र की प्राचीन भौगोलिक संरचना का भी संकेत देता है। आज भी कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) अपने आधिकारिक प्रकाशनों में इस श्लोक का

उल्लेख करते हुए सन्निहित सरोवर को 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों में स्थान देता है।

धार्मिक मान्यता के अनुसार अमावस्या के दिन समस्त तीर्थों का यहाँ आगमन होता है। इसलिए इस दिन किया गया स्नान, दान, श्राद्ध और पितृ-तर्पण विशेष पुण्यदायक माना गया है। यही कारण है कि वर्ष भर विशेषकर सोमवती अमावस्या, सूर्यग्रहण तथा पितृपक्ष में यहाँ लाखों श्रद्धालु एकत्रित होते हैं।

आज का सन्निहित सरोवर हरियाणा के कुरुक्षेत्र नगर में पेहोवा रोड पर स्थित है। यह कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तथा ब्रह्मसरोवर के निकट होने के कारण तीर्थयात्रियों के लिए सहज सुलभ है। आधुनिक सुविधाओं के विकास के बावजूद इसकी धार्मिक गरिमा आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

इस प्रकार सन्निहित सरोवर केवल जलाशय नहीं, बल्कि भारतीय तीर्थ-परम्परा, पितृ-संस्कार और वैदिक संस्कृति का जीवंत प्रतीक है। हजारों वर्षों से चली आ रही इसकी महिमा आज भी उतनी ही श्रद्धा के साथ जीवित है, जितनी पुराणों के समय थी।

संदर्भ

- वामन पुराण, कुरुक्षेत्र माहात्म्य, 1/5।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB), 48 कोस कुरुक्षेत्र एवं Sannihit Sarovar सम्बन्धी आधिकारिक प्रकाशन।
- हरियाणा सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित तीर्थ-विवरण।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भाग-2 : पुराण-परम्परा में सन्निहित सरोवर का माहात्म्य एवं पितृ-श्राद्ध की परम्परा

सन्निहित सरोवर का महत्त्व केवल स्थानीय लोक-परम्पराओं तक सीमित नहीं है, बल्कि पुराण-साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। पुराण-परम्परा में इस तीर्थ को पितृ-श्राद्ध, तर्पण और मोक्ष प्रदान करने वाले श्रेष्ठ तीर्थों में स्थान दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में भी सन्निहित सरोवर को अत्यन्त पवित्र माना जाता था।

पद्म पुराण की परम्परा में यह भावार्थ वर्णित मिलता है कि अमावस्या अथवा सूर्यग्रहण के समय जो श्रद्धालु सन्निहित सरोवर में स्नान कर अपने पितरों का श्राद्ध करता है, उसे सहस्र अश्वमेध यज्ञों के समान पुण्यफल प्राप्त होता है।

संपादकीय स्पष्टीकरण: उपर्युक्त श्लोक का सटीक अध्याय-क्रमांक स्वतंत्र रूप से सत्यापित नहीं हो सका। अतः इसे विशिष्ट अध्याय-श्लोक संख्या सहित उद्धृत करने के स्थान पर "पद्म पुराण की परम्परा के अनुसार" कहकर प्रस्तुत किया गया है। अंतिम प्रकाशन-पूर्व मूल पद्म पुराण (आदि खण्ड) की प्रति से इस श्लोक तथा उसकी सटीक संख्या का मिलान अवश्य कर लिया जाए।

यह मान्यता सन्निहित सरोवर की उस प्राचीन परम्परा का आधार है, जिसके अनुसार यहाँ किया गया पितृ-तर्पण, पिंडदान और श्राद्ध विशेष फलदायी माना जाता है। यही कारण है कि देश के विभिन्न राज्यों से श्रद्धालु अपने पूर्वजों की स्मृति में यहाँ पहुँचते हैं।

सन्निहित सरोवर की एक अन्य विशिष्ट परम्परा यहाँ के तीर्थ-पुरोहितों (पांडा समाज) से जुड़ी हुई है। अनेक परिवार पीढ़ियों से अपने कुल-वंश, गोत्र और श्राद्ध-संबंधी विवरण इन पुरोहितों की वंशावली बहियों में दर्ज कराते आए हैं। इन बहियों में अनेक परिवारों का कई पीढ़ियों पुराना विवरण सुरक्षित है। सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन में इन वंशावलियों का विशेष महत्त्व माना जाता है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड भी अपने आधिकारिक प्रकाशनों में उल्लेख करता है कि सन्निहित सरोवर पितृ-श्राद्ध की प्रमुख स्थली है और यहाँ आज भी पारंपरिक वंशावली लेखन की परम्परा जीवित है।

धार्मिक दृष्टि से अमावस्या, सोमवती अमावस्या, सूर्यग्रहण, पितृपक्ष तथा महालय अमावस्या के अवसर पर यहाँ विशेष भीड़ होती है। इन अवसरों पर श्रद्धालु स्नान, तर्पण, दान और श्राद्ध कर अपने पितरों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

सनातन धर्म में पितरों के प्रति श्रद्धा को केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं माना गया, बल्कि परिवार, वंश और संस्कृति के प्रति उत्तरदायित्व का प्रतीक माना गया है। सन्निहित सरोवर इसी शाश्वत परम्परा का एक जीवंत केन्द्र है, जहाँ आस्था और परम्परा आज भी निरन्तर प्रवाहित हो रही है।

संदर्भ

- पद्म पुराण की परम्परा (अध्याय-श्लोक संख्या का अंतिम सत्यापन शेष)।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB), Sannihit Sarovar एवं 48 कोस कुरुक्षेत्र सम्बन्धी आधिकारिक प्रकाशन।
- तीर्थ-पुरोहितों की वंशावली परम्परा सम्बन्धी कुरुक्षेत्र की पारम्परिक अभिलेखीय व्यवस्था।
- हरियाणा सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित तीर्थ साहित्य।

भाग-3 : आधुनिक सन्निहित सरोवर, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड और मेरी पाँच तीर्थयात्राएँ

सन्निहित सरोवर की महिमा केवल प्राचीन ग्रंथों तक सीमित नहीं है। वर्तमान समय में भी इसका धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व समान रूप से बना हुआ है। हरियाणा सरकार द्वारा स्थापित कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (Kurukshetra Development Board – KDB) ने इस तीर्थ के संरक्षण, विकास और ऐतिहासिक दस्तावेजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की स्थापना 1 अगस्त 1968 को हरियाणा सरकार द्वारा की गई। इसके प्रथम अध्यक्ष भारत रत्न स्वर्गीय गुलज़ारी लाल नंदा थे। बोर्ड ने 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों के सर्वेक्षण, वर्गीकरण और संरक्षण का कार्य प्रारम्भ किया — KDB की आधिकारिक "48 कोस कुरुक्षेत्र – तीर्थ विवरणिका" के अनुसार यह संख्या वर्तमान में कुल 182 तीर्थ है, जिनमें सन्निहित सरोवर प्रमुख तीर्थों में सम्मिलित है।

बोर्ड के अनुसार सन्निहित सरोवर पेहोवा रोड, थानेसर (कुरुक्षेत्र) में स्थित है। यह कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय और ब्रह्मसरोवर के निकट है तथा कुरुक्षेत्र जंक्शन रेलवे स्टेशन से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित होने के कारण देश-विदेश से आने वाले श्रद्धालुओं के लिए सहज सुलभ है।

वर्तमान में सरोवर के चारों ओर पक्के घाट, परिक्रमा-पथ, प्रकाश व्यवस्था, श्रद्धालुओं के स्नान की सुविधाएँ तथा धार्मिक अनुष्ठानों के लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ विकसित की गई हैं। अमावस्या,

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

सोमवती अमावस्या, पितृपक्ष तथा सूर्यग्रहण के अवसर पर यहाँ लाखों श्रद्धालु स्नान, तर्पण और श्राद्ध के लिए एकत्रित होते हैं।

मेरी पाँच यात्राएँ – एक तीर्थयात्री का अनुभव

सन्निहित सरोवर से मेरा संबंध केवल अध्ययन का नहीं, बल्कि श्रद्धा और प्रत्यक्ष अनुभव का भी है। मुझे इस पवित्र तीर्थ पर पाँच बार दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

प्रथम यात्रा – 12 दिसंबर 2023। इस यात्रा में मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव तथा मेरे पौत्र भावेश स्वामी थे। हमारा रात्रि विश्राम वैरागी धर्मशाला, बिरला मंदिर चौक, थानेसर में हुआ, जहाँ से सन्निहित सरोवर निकट स्थित है। प्रातःकाल सरोवर के शांत वातावरण में स्नान और दर्शन का अनुभव अत्यंत आध्यात्मिक था।

द्वितीय यात्रा – 13 मई 2024। इस बार मेरे साथ मास्टर जगबीर वैष्णव थे। हमने सरोवर के दर्शन किए तथा वहाँ उपस्थित तीर्थ-पुरोहितों से इस तीर्थ की प्राचीन परम्पराओं के विषय में जानकारी प्राप्त की।

तृतीय यात्रा – 18 दिसंबर 2024। इस यात्रा में मेरी धर्मपत्नी निर्मला वैष्णव तथा मेरी पौत्री दिव्यांशी स्वामी साथ थीं। परिवार के साथ इस पवित्र तीर्थ पर उपस्थित होना मेरे लिए अत्यन्त भावनात्मक अनुभव रहा। मैंने अपनी आने वाली पीढ़ी को इस तीर्थ के इतिहास और महत्व से परिचित कराया।

चतुर्थ यात्रा – 13 मई 2025। इस बार मैं अकेला ही इस तीर्थ पर पहुँचा। भीड़ से दूर सरोवर के शांत वातावरण में बैठकर मैंने अनुभव

किया कि तीर्थ केवल बाहरी यात्रा नहीं, बल्कि आत्मा की भी यात्रा है।

पंचम यात्रा – 13 मई 2026। यह मेरी पाँचवीं यात्रा थी। इस अवसर पर भी मैंने श्रद्धापूर्वक पितरों का स्मरण किया और इस पावन भूमि के संरक्षण की कामना की। वैरागी धर्मशाला के अभिलेखों के अनुसार इस तिथि का विशेष महत्व वहाँ के संस्थापक महंत की पुण्यतिथि से जुड़ा है, जिस अवसर पर समाज के लोग एकत्र होकर धार्मिक कार्यक्रम एवं भंडारे का आयोजन करते हैं।

संपादकीय टिप्पणी: द्वितीय, चतुर्थ तथा पंचम यात्रा तीनों ही "13 मई" (क्रमशः 2024, 2025, 2026) की तिथि पर अंकित हैं। चूँकि यह तिथि वैरागी धर्मशाला के संस्थापक महंत की पुण्यतिथि से जुड़ी बताई गई है, यह पुनरावृत्ति स्वाभाविक हो सकती है – फिर भी लेखक से एक बार पुनः तिथियों की पुष्टि का अनुरोध है, ताकि पुस्तक में कोई अनजाने की टंकण-त्रुटि न रह जाए।

इन पाँच यात्राओं ने मुझे यह अनुभव कराया कि सन्निहित सरोवर केवल एक ऐतिहासिक जलाशय नहीं, बल्कि श्रद्धा, स्मृति और भारतीय संस्कृति का जीवंत केन्द्र है। प्रत्येक यात्रा ने मेरे मन में अपने पूर्वजों के प्रति सम्मान, सनातन परम्परा के प्रति विश्वास और इस अमूल्य धरोहर के संरक्षण के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को और अधिक दृढ़ किया।

संदर्भ

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) — 48 कोस कुरुक्षेत्र – तीर्थ विवरणिका (182 तीर्थ) एवं Sannihit Sarovar सम्बन्धी आधिकारिक प्रकाशन।
- हरियाणा सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड अधिनियम एवं बोर्ड के ऐतिहासिक अभिलेख।
- वैरागी धर्मशाला, थानेसर (कुरुक्षेत्र) के आंतरिक अभिलेख (13 मई सम्बन्धी परंपरा)।
- लेखक के प्रत्यक्ष तीर्थ-भ्रमण एवं क्षेत्रीय अवलोकन (2023–2026)।

अध्याय–6 नाभिकमल तीर्थ, थानेसर — ब्रह्मा की प्राकट्य स्थली

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : नाभिकमल तीर्थ – सृष्टि के आरम्भ की पावन स्मृति

कुरुक्षेत्र की 48 कोस पवित्र परिक्रमा में अनेक ऐसे तीर्थ हैं जिनका उल्लेख वेद, पुराण और स्थानीय परंपराओं में मिलता है। इनमें नाभिकमल तीर्थ का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। यह तीर्थ केवल धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं, बल्कि सनातन सृष्टि-दर्शन से जुड़ी उस प्राचीन पौराणिक परंपरा का प्रतीक है, जिसमें भगवान विष्णु की नाभि से प्रकट कमल पर ब्रह्मा के प्राकट्य और सृष्टि-रचना का वर्णन मिलता है।

यह पवित्र तीर्थ हरियाणा के थानेसर (प्राचीन स्थानेश्वर) नगर में स्थित है। कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) तथा International Gita Mahotsav के आधिकारिक विवरण के अनुसार यह स्थान थानेसर-बगथला मार्ग पर, राजा हर्ष के किले के दक्षिण तथा थानेसर नगर के पश्चिमी भाग में स्थित है। दोनों आधिकारिक स्रोत इस भौगोलिक स्थिति का शब्दशः समान विवरण प्रस्तुत करते हैं, जिससे इसकी प्रामाणिकता पूर्णतः पुष्ट होती है।

इतिहास के अध्ययन में एक तथ्य विशेष ध्यान देने योग्य है कि वर्तमान "थानेसर" का प्राचीन नाम "स्थानेश्वर" (स्थाण्वीश्वर) था। समय के साथ भाषा के स्वाभाविक परिवर्तन से स्थानेश्वर का अपभ्रंश होकर थानेसर नाम प्रचलित हुआ। इसलिए स्थानेश्वर और

थानेसर दो अलग-अलग स्थान नहीं, बल्कि एक ही नगर के दो ऐतिहासिक नाम हैं। यह तथ्य अनेक ऐतिहासिक स्रोतों तथा हिंदी विश्वकोशीय साहित्य में भी स्वीकार किया गया है।

सनातन परंपरा के अनुसार नाभिकमल तीर्थ का संबंध भगवान विष्णु की उस दिव्य लीला से है, जब वे क्षीरसागर में योगनिद्रा में स्थित थे। उनकी नाभि से एक दिव्य कमल प्रकट हुआ और उसी कमल पर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा प्रकट हुए। भगवान विष्णु की आज्ञा से ब्रह्माजी ने यहीं से सृष्टि-रचना का कार्य आरम्भ किया। यह वर्णन धार्मिक मान्यता के रूप में विभिन्न पुराणों तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के आधिकारिक साहित्य में प्रस्तुत किया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि इस कथा को ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि सनातन धर्म की पौराणिक परंपरा के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसी कारण शोध-लेखन में इसे "मान्यता है", "पुराणों के अनुसार" अथवा "सनातन परंपरा के अनुसार" जैसे शब्दों के साथ प्रस्तुत करना अधिक उपयुक्त और अकादमिक दृष्टि से भी सही माना जाता है।

भारतकोश तथा पद्म पुराण की व्याख्याओं में भी वर्णित है कि भगवान विष्णु की नाभि से प्रकट कमल के कारण ही इस पुराण का नाम "पद्म पुराण" पड़ा। संस्कृत में "पद्म" का अर्थ कमल होता है। इस प्रकार नाभिकमल की कथा केवल ब्रह्मा की उत्पत्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि सनातन साहित्य की नाम-परंपरा से भी जुड़ी हुई है।

नाभिकमल तीर्थ इस प्रकार सृष्टि, ब्रह्मा, विष्णु और कुरुक्षेत्र—इन चारों के मध्य एक अद्भुत आध्यात्मिक सेतु का कार्य करता है। यही

कारण है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थ-परंपरा में इसे अत्यंत सम्मान और श्रद्धा का स्थान प्राप्त है।

संदर्भ

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — Nabhi Kamal Tirth, Thanesar (आधिकारिक प्रकाशन)।
- International Gita Mahotsav — Nabhi Kamal Tirth (आधिकारिक विवरण)।
- भारतकोश – ब्रह्मा (नाभिकमल-उत्पत्ति सम्बन्धी पौराणिक विवरण)।
- पद्म पुराण (हिंदी व्याख्या) – पद्म नामकरण एवं नाभिकमल परंपरा।
- स्थानेश्वर (थानेसर) सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण – हिंदी विश्वकोशीय एवं इतिहास संदर्भ।

भाग-2 : अष्टकोसी परिक्रमा, इतिहास और लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव

नाभिकमल तीर्थ का महत्व केवल इस कारण नहीं है कि इसे ब्रह्माजी की प्राकट्य-स्थली माना जाता है, बल्कि इसलिए भी कि यह कुरुक्षेत्र की प्राचीन अष्टकोसी परिक्रमा का प्रारम्भ और समापन बिंदु है। हरियाणा सरकार के कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) के अनुसार चैत्र मास की कृष्ण चतुर्दशी को निकलने वाली यह परिक्रमा नाभिकमल तीर्थ से आरम्भ होकर अनेक प्रमुख तीर्थों का भ्रमण करती हुई पुनः इसी स्थान पर समाप्त होती है। इस परम्परा से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही नाभिकमल तीर्थ को कुरुक्षेत्र के धार्मिक जीवन का केन्द्र माना गया है।

परिक्रमा मार्ग में परम्परागत रूप से स्थानेश्वर महादेव मंदिर, कार्तिकेय मंदिर, कुबेर घाट, सरस्वती घाट, रन्तुक (तरन्तुक) यक्ष, बाणगंगा, भीष्मकुण्ड तथा अन्य महत्वपूर्ण तीर्थ सम्मिलित हैं। इन सभी तीर्थों का परस्पर सम्बन्ध कुरुक्षेत्र की धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत को एक सूत्र में बाँधता है। नाभिकमल तीर्थ इस सम्पूर्ण परिक्रमा का आध्यात्मिक केन्द्र है।

नाभिकमल तीर्थ के निकट स्थित राजा हर्ष का किला (टीला) भी इस क्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व को बढ़ाता है। पुरातत्त्व सर्वेक्षणों के अनुसार यहाँ बहु-सांस्कृतिक स्तर पाए जाते हैं, जिनमें कुषाण, गुप्त तथा वर्धन काल के अवशेष सम्मिलित बताए जाते हैं।

संपादकीय स्पष्टीकरण: किले में मिले कालखंडों (कुषाण/गुप्त/वर्धन/उत्तर-मुगल) की सटीक सूची हेतु मूल ASI

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

उत्खनन-रिपोर्ट का स्वतंत्र सत्यापन नहीं हो सका। अंतिम प्रकाशन-पूर्व यदि रिपोर्ट उपलब्ध हो तो सटीक वर्ष व सन्दर्भ जोड़ लें।

इससे स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि प्राचीन नगर-सभ्यता का भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है।

इतिहासकारों के अनुसार स्थानेश्वर (वर्तमान थानेसर) पुष्यभूति वंश की मूल राजधानी थी। सम्राट हर्षवर्धन ने अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में यहीं से राज्य संचालन किया और बाद में राजधानी कन्नौज स्थानांतरित कर दी। इसलिए थानेसर का महत्व केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास के राजनीतिक विकास में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मंदिर की वर्तमान संरचना उत्तर भारतीय नागर शैली में निर्मित है। इसका शिखर ऊपर की ओर उठता हुआ शंक्वाकार दिखाई देता है, जो उत्तर भारत की पारम्परिक मंदिर वास्तुकला का सुंदर उदाहरण है। समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार किया गया है, किन्तु इसकी धार्मिक पहचान आज भी उसी श्रद्धा के साथ सुरक्षित है।

लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव

नाभिकमल तीर्थ के दर्शन का सौभाग्य मुझे अनेक बार प्राप्त हुआ है। विशेष रूप से 12 मार्च 2017 तथा 18 दिसंबर 2025 की यात्राएँ मेरे लिए अत्यंत स्मरणीय रहीं। दूसरी यात्रा में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव भी साथ थीं। प्रातःकाल जब मंदिर परिसर पहुँचा, तब वातावरण अत्यन्त शांत और आध्यात्मिक था। श्रद्धालु पूजा-अर्चना में लीन थे और मंदिर परिसर में वैदिक मंत्रों की ध्वनि गूँज रही थी।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

मुझे स्मरण नहीं कि जीवन में मैं कुरुक्षेत्र कितनी बार आया हूँ। यह संख्या गिनने योग्य नहीं रही। जब भी इस पावन भूमि पर आता हूँ, ऐसा अनुभव होता है मानो इतिहास, पुराण और वर्तमान एक साथ मेरे सामने उपस्थित हो गए हों। नाभिकमल तीर्थ भी ऐसा ही स्थान है, जहाँ सृष्टि की आदिकथा श्रद्धा के रूप में आज भी जीवित है।

मेरे गाँव रामनगर (गन्नौर, जिला सोनीपत) से नाभिकमल तीर्थ की सड़क मार्ग से दूरी लगभग 128 किलोमीटर है, जिसे मैंने स्वयं गूगल मैप्स के माध्यम से मापा। प्रत्येक यात्रा मेरे लिए केवल दर्शन नहीं, बल्कि अपनी सनातन परम्परा और सांस्कृतिक विरासत से पुनः जुड़ने का अवसर रही है।

संदर्भ

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार), Nabhi Kamal Tirth।
- International Gita Mahotsav, आधिकारिक विवरण – Nabhi Kamal Tirth।
- भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (ASI) – थानेसर एवं राजा हर्ष के टीले सम्बन्धी उत्खनन विवरण (सटीक रिपोर्ट-सन्दर्भ अंतिम प्रकाशन-पूर्व जोड़ा जाए)।
- विकिपीडिया (केवल ऐतिहासिक नाम एवं पुष्यभूति वंश के सामान्य संदर्भ हेतु; मुख्य आधार सरकारी एवं पुरातात्त्विक स्रोत)।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

- लेखक के प्रत्यक्ष यात्रा-अनुभव (12 मार्च 2017 एवं 18 दिसंबर 2025)।

भाग-3 : निष्कर्ष – सृष्टि की स्मृति और सनातन का शाश्वत संदेश

नाभिकमल तीर्थ केवल एक प्राचीन मंदिर या तीर्थस्थल नहीं है। यह सनातन परम्परा में सृष्टि के आरम्भ की उस पवित्र स्मृति का प्रतीक है, जहाँ भगवान विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्माजी के प्राकट्य की मान्यता जुड़ी हुई है। इसी कारण यह स्थान कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों में विशिष्ट स्थान रखता है।

धार्मिक दृष्टि से यह तीर्थ सृष्टि-रचना की पौराणिक परम्परा से जुड़ा है, जबकि सांस्कृतिक दृष्टि से यह कुरुक्षेत्र की अष्टकोसी परिक्रमा का प्रारम्भ और समापन स्थल है। इसके निकट स्थित राजा हर्ष का किला इस क्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व को भी प्रमाणित करता है। इस प्रकार नाभिकमल तीर्थ में पुराण, इतिहास, पुरातत्त्व और आस्था का अद्भुत संगम दिखाई देता है।

मेरे लिए इस तीर्थ का महत्व केवल एक शोधकर्ता के रूप में नहीं, बल्कि एक श्रद्धालु के रूप में भी है। जब भी यहाँ आता हूँ, मन में यही भाव उत्पन्न होता है कि भारतीय संस्कृति ने सृष्टि की उत्पत्ति को केवल दार्शनिक विचार के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे तीर्थ, परम्परा और जीवन-मूल्यों से जोड़कर जीवित रखा। यही कारण है कि हजारों वर्षों बाद भी यह स्थान श्रद्धालुओं को उसी श्रद्धा से आकर्षित करता है।

एक सैनिक के रूप में मैंने युद्धभूमि देखी है, और एक इतिहासकार के रूप में अनेक प्राचीन स्थलों का अध्ययन किया है। परन्तु नाभिकमल तीर्थ पर खड़े होकर यह अनुभव होता है कि मनुष्य का वास्तविक बल केवल शस्त्र में नहीं, बल्कि अपनी संस्कृति, आस्था

और ज्ञान-परम्परा में निहित है। यही परम्परा भारत को युगों-युगों तक जीवित रखे हुए है।

इस अध्याय का उद्देश्य किसी धार्मिक मान्यता को ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध करना नहीं, बल्कि उन प्राचीन मान्यताओं, उपलब्ध स्रोतों और वर्तमान सरकारी अभिलेखों को एक स्थान पर प्रस्तुत करना है, जिनके आधार पर नाभिकमल तीर्थ आज भी करोड़ों श्रद्धालुओं की आस्था का केन्द्र बना हुआ है।

यदि कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कहा जाता है, तो नाभिकमल तीर्थ उस धर्मक्षेत्र में सृष्टि के प्रथम अध्याय का प्रतीक है। यहाँ आकर यह अनुभव होता है कि सनातन परम्परा केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य को भी दिशा देने वाली एक जीवंत सांस्कृतिक धारा है।

संदर्भ

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार), Nabhi Kamal Tirth।
- International Gita Mahotsav (Official Portal), Nabhi Kamal Tirth, Thanesar।
- भारतकोश - ब्रह्मा एवं नाभिकमल पर पौराणिक विवरण।
- पद्म पुराण (हिंदी व्याख्या) - ब्रह्मा की उत्पत्ति एवं पद्म नामकरण।
- भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (ASI) – थानेसर एवं राजा हर्ष का टीला।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

- लेखक के प्रत्यक्ष यात्रा-अनुभव (12 मार्च 2017 एवं 18 दिसंबर 2025)।

अध्याय–7 ब्रह्मयोनि तीर्थ, पिहोवा —— वर्णाश्रम धर्म की स्थापना स्थली

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : ब्रह्मयोनि तीर्थ का पौराणिक एवं भौगोलिक परिचय

कुरुक्षेत्र की 48 कोस की पावन भूमि में अनेक ऐसे तीर्थ हैं, जिनका उल्लेख वेद, महाभारत और पुराणों में प्राप्त होता है। इन तीर्थों में पिहोवा स्थित ब्रह्मयोनि तीर्थ का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। यह केवल एक स्नान-तीर्थ नहीं, बल्कि सनातन परम्परा में वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना से संबंधित प्रमुख तीर्थ माना जाता है। इसी कारण इसका धार्मिक और दार्शनिक महत्व अन्य अनेक तीर्थों से अलग दिखाई देता है।

ब्रह्मयोनि तीर्थ हरियाणा के पिहोवा (जिला कुरुक्षेत्र) में, प्राचीन सरस्वती नदी के तट पर स्थित है। कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (KDB) के आधिकारिक अभिलेखों के अनुसार यह स्थान कुरुक्षेत्र नगर से लगभग 28 किलोमीटर दूर है। पिहोवा स्वयं प्राचीन पृथूदक के नाम से प्रसिद्ध रहा है और पितृ-श्राद्ध तथा सरस्वती तीर्थों के कारण हजारों वर्षों से श्रद्धालुओं का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है।

कुरुक्षेत्र क्षेत्र में ब्रह्मा से संबंधित अनेक तीर्थों का उल्लेख मिलता है, जिनमें ब्रह्मसर, ब्रह्मस्थान, ब्रह्मोदुम्बर, ब्रह्मतीर्थ और ब्रह्मयोनि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी तीर्थों का संबंध सृष्टि-रचना और ब्रह्मा की उपासना से जुड़ी परम्पराओं से माना जाता है। ब्रह्मयोनि तीर्थ इस श्रृंखला में इसलिए विशेष है क्योंकि इसकी

पहचान केवल सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से ही नहीं, बल्कि समाज की वैदिक व्यवस्था से भी जोड़ी गई है।

इस तीर्थ का उल्लेख महाभारत के वनपर्व में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। वहाँ कहा गया है–

"ब्रह्मयोनिं समासाद्य शुचिः प्रयतमानसः। तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ब्रह्मलोकं प्रपद्यते॥ पुनात्यसप्तमं चैव कुलं नास्त्यत्र संशयः॥" (महाभारत, वनपर्व 83/140–141)

अर्थात् जो मनुष्य पवित्र मन से ब्रह्मयोनि तीर्थ में स्नान करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है तथा अपने कुल की अनेक पीढ़ियों का कल्याण करता है। यह वर्णन इस तीर्थ के आध्यात्मिक महत्व को व्यक्त करता है। इसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में नहीं, बल्कि महाभारत में वर्णित धार्मिक महात्म्य के रूप में समझना चाहिए।

वामन पुराण की परम्परा में भी ब्रह्मयोनि तीर्थ का उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार इस तीर्थ की स्थापना स्वयं ब्रह्मा ने सरस्वती नदी के तट पर, पृथूदक के समीप की थी।

संपादकीय स्पष्टीकरण: वामन पुराण के उद्धरण की सटीक अध्याय-39/श्लोक-21 संख्या स्वतंत्र रूप से सत्यापित नहीं हो सकी, यद्यपि विषयवस्तु (पृथूदक क्षेत्र में ब्रह्मा द्वारा तीर्थ-स्थापना) वामन पुराण की सामान्य शैली से पूर्णतः सुसंगत है। अंतिम प्रकाशन-पूर्व मूल ग्रन्थ-प्रति से संख्या का मिलान कर लिया जाए।

आगे इसी परम्परा में यह भी वर्णित है कि ब्रह्मा के चिंतन से समाज के चार वर्ण और चार आश्रमों की व्यवस्था प्रतिष्ठित हुई। इसी कारण यह स्थान "वर्णाश्रम धर्म की स्थापना-स्थली" के रूप में

प्रसिद्ध हुआ – यह वाक्यांश कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के अपने आधिकारिक प्रकाशन में भी प्रयुक्त है। यह एक पौराणिक एवं धार्मिक मान्यता है, जिसे उसी रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए।

आज भी ब्रह्मयोनि तीर्थ, पिहोवा के प्रमुख धार्मिक स्थलों में सम्मिलित है और कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा इसके संरक्षण एवं प्रलेखन का कार्य किया जा रहा है। यह तथ्य दर्शाता है कि हजारों वर्षों पुरानी यह तीर्थ-परम्परा आज भी श्रद्धालुओं के जीवन में जीवित है।

संदर्भ

- महाभारत, वनपर्व, अध्याय 83, श्लोक 140–141।
- वामन पुराण की परम्परा (अध्याय-श्लोक संख्या का अंतिम सत्यापन शेष)।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — Brahmayoni Tirth, Pehowa (आधिकारिक विवरण)।

भाग-2 : पिहोवा के तीर्थ-समूह और लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव

ब्रह्मयोनि तीर्थ का महत्व केवल उसके पौराणिक उल्लेख तक सीमित नहीं है। यह तीर्थ पिहोवा (प्राचीन पृथूदक) के उस विशाल तीर्थ-समूह का अभिन्न अंग है, जिसका उल्लेख महाभारत, वामन पुराण तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। सरस्वती नदी के तट पर विकसित इस क्षेत्र में अनेक तीर्थ एक-दूसरे के निकट स्थित हैं और मिलकर पिहोवा को उत्तर भारत के प्रमुख तीर्थ-क्षेत्रों में स्थान प्रदान करते हैं।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के अनुसार ब्रह्मयोनि तीर्थ के उत्तर में सरस्वती तीर्थ तथा दक्षिण में पृथूदक तीर्थ स्थित है। महाभारत के वनपर्व में इसका उल्लेख विश्वामित्र तीर्थ के पश्चात तथा वामन पुराण में पृथूदक तीर्थ के बाद प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में इन तीर्थों की एक सुव्यवस्थित तीर्थ-परंपरा विद्यमान थी।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के अभिलेखों में यह भी उल्लेख है कि शनिवार के दिन ब्रह्मयोनि तीर्थ में स्नान विशेष पुण्यदायी माना जाता है। यह मान्यता स्थानीय धार्मिक परंपरा का भाग है और आज भी अनेक श्रद्धालु इसी विश्वास के साथ यहाँ स्नान एवं पूजा-अर्चना के लिए आते हैं।

पिहोवा क्षेत्र का महत्व केवल एक तीर्थ तक सीमित नहीं है। यह स्थान प्राचीन काल से पितृ-श्राद्ध, तर्पण तथा सरस्वती उपासना का प्रमुख केन्द्र रहा है। आज भी देश के विभिन्न राज्यों से श्रद्धालु अपने पूर्वजों के निमित्त यहाँ धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न कराने आते

हैं। इस प्रकार पिहोवा, कुरुक्षेत्र की तीर्थ-परम्परा में एक विशिष्ट धार्मिक केन्द्र के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए है।

लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव

ब्रह्मयोनि तीर्थ के दर्शन का सौभाग्य मुझे अनेक अवसरों पर प्राप्त हुआ है। अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव के साथ मैं लगभग दस बार इस पवित्र तीर्थ पर आया हूँ। यह संख्या स्मृति पर आधारित अनुमान है, क्योंकि वर्षों से निरंतर होने वाली यात्राओं का अलग-अलग लेखा रखना संभव नहीं रहा।

प्रत्येक यात्रा में मैंने सरस्वती तट के इस शांत वातावरण का अनुभव किया। तीर्थ परिसर में प्रवेश करते ही मन में एक अलग प्रकार की श्रद्धा जागृत होती है। यहाँ का वातावरण अन्य तीर्थों की अपेक्षा अधिक गंभीर और चिंतनशील प्रतीत होता है। श्रद्धालु स्नान, पूजा और ध्यान में लीन दिखाई देते हैं।

जब भी मैं ब्रह्मयोनि तीर्थ पर खड़ा होता हूँ, तो यह अनुभव होता है कि यह केवल एक प्राचीन धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की उस दार्शनिक परंपरा का प्रतीक है, जिसने समाज को कर्तव्य, अनुशासन और जीवन-मूल्यों के आधार पर संगठित करने का प्रयास किया। चाहे कोई इन पौराणिक कथाओं को आस्था के रूप में देखे या सांस्कृतिक विरासत के रूप में, इतना निश्चित है कि इस तीर्थ ने सहस्राब्दियों से भारतीय समाज की स्मृति में अपना स्थान बनाए रखा है।

मेरे लिए यह यात्रा केवल दर्शन नहीं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक जड़ों से पुनः जुड़ने का अवसर रही है। हर बार यहाँ आकर ऐसा अनुभव

हुआ कि कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि आज भी अपने प्राचीन इतिहास और आध्यात्मिक परंपरा को मौन रूप से संजोए हुए है।

संदर्भ

- महाभारत, वनपर्व, अध्याय 83।
- वामन पुराण की परम्परा (अध्याय-श्लोक संख्या का अंतिम सत्यापन शेष)।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — Brahmayoni Tirth, Pehowa।
- लेखक के प्रत्यक्ष यात्रा-अनुभव (लगभग दस यात्राएँ, श्रीमती निर्मला वैष्णव सहित)।

भाग-3 : निष्कर्ष – आस्था, दर्शन और सांस्कृतिक विरासत

ब्रह्मयोनि तीर्थ, पिहोवा केवल एक प्राचीन तीर्थ नहीं है, बल्कि सनातन परंपरा में वर्णित उस दार्शनिक विचार का प्रतीक है, जिसके अनुसार समाज का संगठन धर्म, कर्तव्य और आश्रम व्यवस्था के आधार पर किया गया। महाभारत में प्राप्त इसका उल्लेख (तथा वामन पुराण की परम्परा) इस तीर्थ की प्राचीनता और धार्मिक महत्ता को स्थापित करते हैं, जबकि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के अभिलेख यह प्रमाणित करते हैं कि आज भी यह तीर्थ कुरुक्षेत्र की आधिकारिक तीर्थ-परम्परा का महत्वपूर्ण अंग है।

पिहोवा क्षेत्र स्वयं सरस्वती तट पर विकसित एक प्राचीन तीर्थ-समूह है। ब्रह्मयोनि, पृथूदक, सरस्वती तीर्थ और अन्य पवित्र स्थलों की उपस्थिति यह दर्शाती है कि यह क्षेत्र केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरोहर का जीवंत केंद्र रहा है।

एक शोधकर्ता के रूप में मेरा प्रयास रहा है कि जहाँ तक संभव हो, प्रत्येक तथ्य को सरकारी अभिलेखों, प्राचीन ग्रंथों और प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर प्रस्तुत किया जाए। जिन विषयों का आधार पौराणिक परंपरा है, उन्हें उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है; और जहाँ ऐतिहासिक या भौगोलिक प्रमाण उपलब्ध हैं, वहाँ उन्हें स्पष्ट रूप से अलग रखा गया है। यही पद्धति किसी भी शोध-ग्रंथ की विश्वसनीयता को मजबूत बनाती है।

मैंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव के साथ इस तीर्थ की अनेक यात्राएँ की हैं। प्रत्येक यात्रा ने यह अनुभव कराया कि कुरुक्षेत्र

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

केवल महाभारत की युद्धभूमि नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के विविध आयामों का एक जीवंत संग्रहालय है। यहाँ प्रत्येक तीर्थ एक अलग कथा कहता है, और ब्रह्मयोनि तीर्थ उस कथा का वह अध्याय है जो समाज, धर्म और संस्कृति के संबंधों को समझने का अवसर देता है।

आज आवश्यकता केवल इन तीर्थों के दर्शन की नहीं, बल्कि इनके संरक्षण, प्रलेखन और प्रामाणिक अध्ययन की भी है। यदि आने वाली पीढ़ियाँ इन स्थलों के वास्तविक इतिहास और परंपरा से परिचित होंगी, तभी यह अमूल्य धरोहर सुरक्षित रह सकेगी।

इसी भावना के साथ ब्रह्मयोनि तीर्थ का यह अध्याय पूर्ण होता है। यह केवल एक तीर्थ का परिचय नहीं, बल्कि उस सांस्कृतिक विरासत का स्मरण है जिसने सहस्राब्दियों से भारतीय समाज को दिशा दी है।

संदर्भ

- महाभारत, वनपर्व, अध्याय 83, श्लोक 140–141।
- वामन पुराण की परम्परा (अध्याय-श्लोक संख्या का अंतिम सत्यापन शेष)।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — Brahmayoni Tirth, Pehowa।
- भारतकोश – पिहोवा (पृथूदक) एवं सरस्वती पर उपलब्ध सामान्य ऐतिहासिक जानकारी।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

- लेखक के प्रत्यक्ष यात्रा-अनुभव (धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव सहित अनेक यात्राएँ)।

अध्याय–8

स्थानेश्वर महादेव मंदिर एवं ब्रह्मसरोवर —– आदि शिवलिंग और सभ्यता का पालना

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : स्थानेश्वर महादेव – प्राचीन नाम, महत्ता और आदि शिवलिंग की परंपरा

कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि पर स्थित स्थानेश्वर महादेव मंदिर सनातन परंपरा के उन प्राचीन तीर्थों में से एक है, जिनका उल्लेख अनेक धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्रोतों में मिलता है। यह मंदिर वर्तमान थानेसर (कुरुक्षेत्र, हरियाणा) में स्थित है और इसके ठीक सामने विश्वविख्यात ब्रह्मसरोवर अवस्थित है। इन दोनों तीर्थों का संयुक्त महत्व कुरुक्षेत्र की आध्यात्मिक पहचान का आधार माना जाता है।

स्थानेश्वर नाम की व्युत्पत्ति

"स्थानेश्वर" शब्द संस्कृत के "स्थाणु" तथा "ईश्वर" से मिलकर बना है। स्थाणु भगवान शिव का एक प्राचीन नाम है, जिसका अर्थ है – अचल, सनातन एवं अविनाशी। प्राचीन ग्रंथों में इस क्षेत्र का नाम स्थाण्वीश्वर मिलता है, जो कालान्तर में अपभ्रंश होकर थानेसर बन गया। इस प्रकार वर्तमान थानेसर और प्राचीन स्थानेश्वर एक ही ऐतिहासिक नगर के दो नाम हैं।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

यह विवरण कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार), अतुल्य भारत (भारत सरकार) तथा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों में समान रूप से उपलब्ध है।

आदि शिवलिंग की धार्मिक मान्यता

सनातन परंपरा के अनुसार इसी स्थान पर प्रजापति ब्रह्मा ने भगवान शिव के स्थाणु लिंग की स्थापना की थी। धार्मिक मान्यता है कि शिवलिंग की पूजा का प्रारम्भ यहीं से हुआ, इसलिए इसे आदि शिवलिंग की परंपरा से जोड़ा जाता है।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह धार्मिक मान्यता है, ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित घटना नहीं। किन्तु यह परंपरा अनेक प्राचीन ग्रंथों, स्थानीय मान्यताओं तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के आधिकारिक विवरणों में निरन्तर मिलती है।

इसी कारण आज भी यह विश्वास प्रचलित है कि स्थानेश्वर महादेव के दर्शन के बिना कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा पूर्ण नहीं मानी जाती।

प्राचीन साहित्य में उल्लेख

स्थानेश्वर क्षेत्र का उल्लेख केवल पुराणों में ही नहीं, बल्कि बौद्ध साहित्य में भी मिलता है। बौद्ध ग्रंथ महावग्ग में मध्यदेश की पश्चिमी सीमा पर स्थित "थूणा" नामक ब्राह्मण-क्षेत्र का उल्लेख है, तथा दिव्यावदान में "स्थूण" (उपस्थूण) नामक स्थान का वर्णन मिलता है। विद्वानों (विशेषतः कनिंघम के "Ancient Geography of India" के अनुसार) ने इन दोनों नामों की पहचान सीधे स्थाण्वीश्वर (वर्तमान थानेसर) से की है, जिससे यह पुष्ट होता है कि यह क्षेत्र

बौद्ध-काल में भी मध्यदेश की पश्चिमी सीमा के रूप में सुपरिचित था।

इसी प्रकार वामन पुराण की परम्परा में भी स्थाणुतीर्थ का विशेष माहात्म्य वर्णित मिलता है, जिसके अनुसार इस तीर्थ के चारों ओर असंख्य शिवलिंग विद्यमान हैं तथा इनके दर्शन से पापों का क्षय होता है।

संपादकीय स्पष्टीकरण: वामन पुराण के इस माहात्म्य-वर्णन की सटीक अध्याय-श्लोक संख्या स्वतंत्र रूप से सत्यापित नहीं हो सकी। अंतिम प्रकाशन-पूर्व मूल ग्रन्थ-प्रति से मिलान कर लिया जाए।

महाभारत परंपरा से संबंध

लोकपरंपरा के अनुसार महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों को इसी स्थान पर भगवान शिव की आराधना के लिए लाए थे। यहाँ पाण्डवों ने विजय का आशीर्वाद प्राप्त किया और उसके पश्चात धर्मयुद्ध के लिए प्रस्थान किया।

यह प्रसंग स्थानीय परंपराओं, सरकारी पर्यटन विवरणों तथा अनेक धार्मिक स्रोतों में मिलता है। इसे ऐतिहासिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि प्राचीन धार्मिक परंपरा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

संदर्भ

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — Sthaneshwar Mahadev Temple।
- अतुल्य भारत (भारत सरकार) – Incredible India।

- Cunningham, Ancient Geography of India — Thūna/Sthūna की स्थाण्वीश्वर से पहचान।
- वामन पुराण की परम्परा (अध्याय-श्लोक संख्या का अंतिम सत्यापन शेष)।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भाग-2 : मंदिर की वास्तुकला, ब्रह्मसरोवर और ऐतिहासिक महत्व

स्थानेश्वर महादेव मंदिर का वर्तमान स्वरूप

स्थानेश्वर महादेव मंदिर आज भी अपनी प्राचीन धार्मिक परंपरा को जीवित रखे हुए है। यद्यपि समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार और संरक्षण हुआ है, फिर भी इसकी मूल धार्मिक पहचान अक्षुण्ण बनी हुई है।

मंदिर की वास्तुकला उत्तर भारतीय नागर शैली से प्रभावित है। इसका शिखर पारंपरिक शैली में निर्मित है तथा गर्भगृह में प्रतिष्ठित शिवलिंग श्रद्धालुओं की मुख्य आराधना का केंद्र है। मंदिर परिसर में भगवान शिव के अतिरिक्त भगवान विष्णु, माता दुर्गा, श्रीहनुमान तथा अन्य देवी-देवताओं के भी मंदिर स्थापित हैं। इससे यह स्थान केवल एक शिवालय न होकर बहुदेव उपासना की सनातन परंपरा का भी प्रतीक बन जाता है।

मंदिर के सामने स्थित प्राचीन जलकुण्ड के विषय में स्थानीय धार्मिक मान्यता है कि इसका जल अत्यंत पवित्र माना जाता है। वर्तमान में कुण्ड के मध्य भगवान नीलकण्ठ महादेव की प्रतिमा स्थापित है तथा समीप स्थित प्राचीन वटवृक्ष श्रद्धालुओं की विशेष आस्था का केंद्र है।

ब्रह्मसरोवर – सृष्टि और सभ्यता का प्रतीक

स्थानेश्वर महादेव मंदिर के ठीक सामने स्थित ब्रह्मसरोवर कुरुक्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध तीर्थ है। इसे व्यापक रूप से एशिया के सबसे बड़े मानव-निर्मित पवित्र सरोवरों में गिना जाता है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

धार्मिक परंपरा के अनुसार सृष्टि-रचना का कार्य आरम्भ करने से पूर्व भगवान ब्रह्मा ने इसी क्षेत्र में यज्ञ किया था, जिसके कारण यह सरोवर ब्रह्मसरोवर कहलाया। अनेक पुराणों तथा महाभारत में इसका माहात्म्य वर्णित है। श्रद्धालुओं की मान्यता है कि यहाँ स्नान एवं पूजा करने से पापों का क्षय होता है तथा आध्यात्मिक पुण्य की प्राप्ति होती है।

लोकपरंपरा में यह भी माना जाता है कि राजा कुरु ने इस क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिनके नाम पर आगे चलकर इस क्षेत्र का नाम कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। यह उल्लेख धार्मिक एवं पारंपरिक स्रोतों में मिलता है।

ऐतिहासिक महत्व

ब्रह्मसरोवर केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

11वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान अलबरूनी ने अपने ग्रंथ किताब-उल-हिंद में थानेसर तथा वहाँ के प्रसिद्ध "चक्रस्वामिन" विग्रह की महिमा का उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में भी यह तीर्थ सम्पूर्ण भारत के प्रमुख धार्मिक केन्द्रों में सम्मिलित था।

मुगलकाल में सूर्यग्रहण के अवसर पर हिन्दू तीर्थों पर विशाल मेले आयोजित होने की परम्परा सर्वविदित है, और स्थानीय परम्परा में कुरुक्षेत्र में भी ऐसे मेलों का उल्लेख मिलता है।

संपादकीय स्पष्टीकरण: सम्राट अकबर के शासनकाल में विशेष रूप से कुरुक्षेत्र-यात्रा के किसी ठोस समकालीन ऐतिहासिक अभिलेख (जैसे

आइन-ए-अकबरी) की स्वतंत्र पुष्टि नहीं हो सकी। अतः इसे सामान्य मुगलकालीन मेला-परम्परा के संदर्भ में रखा गया है, विशिष्ट सम्राट-नाम के दावे के रूप में नहीं, जब तक ठोस स्रोत न मिल जाए।

स्वतंत्रता के पश्चात हरियाणा सरकार तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इस सरोवर के संरक्षण, सौंदर्यीकरण तथा तीर्थ-व्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।

आज ब्रह्मसरोवर अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव, सूर्यग्रहण स्नान तथा विभिन्न धार्मिक आयोजनों का प्रमुख केन्द्र है, जहाँ प्रतिवर्ष देश-विदेश से लाखों श्रद्धालु पहुँचते हैं।

संदर्भ

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — Sthaneshwar Mahadev Temple एवं Brahma Sarovar।
- हरियाणा सरकार – Kurukshetra District Official Website।
- भारत सरकार – अतुल्य भारत (Incredible India)।
- वामन पुराण की परम्परा (स्थाणुतीर्थ एवं ब्रह्मसरोवर माहात्म्य; अध्याय-श्लोक संख्या का अंतिम सत्यापन शेष)।
- महाभारत (कुरुक्षेत्र तीर्थ-माहात्म्य)।
- अलबरूनी – किताब-उल-हिंद (11वीं शताब्दी)।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भाग-3 : लेखक के प्रत्यक्ष अनुभव, गीता महोत्सव और निष्कर्ष

लेखक के प्रत्यक्ष अवलोकन

स्थानेश्वर महादेव मंदिर और ब्रह्मसरोवर के दर्शन का सौभाग्य मुझे अनेक अवसरों पर प्राप्त हुआ है। वर्षों से कुरुक्षेत्र मेरे शोध, अध्ययन और तीर्थ-यात्राओं का प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ की प्रत्येक यात्रा ने मुझे इस भूमि के आध्यात्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्वरूप को और अधिक निकट से समझने का अवसर दिया।

16 दिसम्बर 2025 को अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव के अवसर पर मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव तथा अपने पोते के साथ पुनः इस पावन तीर्थ पर पहुँचा। उस समय ब्रह्मसरोवर दीपों की अलौकिक आभा से प्रकाशित था और हजारों श्रद्धालु श्रद्धा एवं भक्ति के साथ गीता जयंती समारोह में सम्मिलित थे।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर में दर्शन के पश्चात जब मैंने मंदिर के सामने स्थित प्राचीन कुण्ड, नीलकण्ठ महादेव की प्रतिमा तथा विशाल वटवृक्ष को देखा, तो सहज ही यह अनुभव हुआ कि यह केवल एक मंदिर नहीं, बल्कि हजारों वर्षों से चली आ रही सनातन परंपरा का जीवित साक्षी है।

कृष्ण-अर्जुन रथ स्मारक

ब्रह्मसरोवर परिसर में स्थापित भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के विशाल रथ की प्रतिमा आधुनिक काल की सबसे आकर्षक धार्मिक स्मारकों में से एक है। यह स्मारक उस ऐतिहासिक क्षण की स्मृति को जीवंत करता है, जब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश दिया।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

गीता महोत्सव के दौरान यह पूरा परिसर आध्यात्मिक वातावरण से ओतप्रोत हो उठता है। देश-विदेश से आने वाले श्रद्धालु, संत, विद्वान और शोधकर्ता इस अवसर पर एकत्र होकर गीता के सार्वभौमिक संदेश का स्मरण करते हैं। हरियाणा सरकार द्वारा आयोजित यह महोत्सव आज विश्व स्तर पर कुरुक्षेत्र की पहचान बन चुका है।

एक शोधकर्ता की अनुभूति

एक इतिहास शोधकर्ता के रूप में जब मैं स्थानेश्वर महादेव और ब्रह्मसरोवर का अध्ययन करता हूँ, तो मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि यहाँ धार्मिक परंपरा, ऐतिहासिक स्मृतियाँ और आधुनिक संरक्षण—तीनों एक साथ विद्यमान हैं।

पुराणों की कथाएँ, महाभारत का तीर्थ-माहात्म्य, मध्यकालीन यात्रियों के विवरण और वर्तमान सरकारी संरक्षण—इन सभी को साथ रखकर देखने पर यह स्पष्ट होता है कि यह तीर्थ केवल आस्था का विषय नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की निरंतरता का भी महत्वपूर्ण प्रमाण है।

निष्कर्ष

स्थानेश्वर महादेव मंदिर और ब्रह्मसरोवर कुरुक्षेत्र की आध्यात्मिक पहचान के दो ऐसे आधार-स्तंभ हैं, जिनका महत्व प्राचीन काल से आज तक अक्षुण्ण बना हुआ है।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर भगवान शिव की प्राचीन उपासना-परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि ब्रह्मसरोवर सृष्टि, यज्ञ और धर्म की सनातन परंपरा का प्रतीक है। दोनों तीर्थ आज भी हरियाणा

सरकार एवं कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा संरक्षित हैं और प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालुओं को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

मेरे लिए यह तीर्थ केवल शोध का विषय नहीं, बल्कि श्रद्धा, इतिहास और संस्कृति का ऐसा संगम है जहाँ प्रत्येक यात्रा नए ज्ञान और नई प्रेरणा का स्रोत बनती है। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र की यात्रा का प्रत्येक चरण मुझे पुनः इस पावन भूमि की ओर आकर्षित करता है।

संदर्भ

- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — Sthaneshwar Mahadev Temple एवं Brahma Sarovar।
- हरियाणा सरकार – कुरुक्षेत्र जिला आधिकारिक वेबसाइट।
- भारत सरकार – Incredible India (अतुल्य भारत)।
- महाभारत (तीर्थ-माहात्म्य प्रसंग)।
- वामन पुराण की परम्परा – स्थाणुतीर्थ एवं ब्रह्मसरोवर माहात्म्य।
- अलबरूनी – किताब-उल-हिंद।
- लेखक के प्रत्यक्ष यात्रा-अनुभव (अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव सहित अनेक यात्राएँ)।

अध्याय–9

वर्धन वंश एवं थानेसर की पुरातात्विक विरासत — प्रभाकरवर्धन से हर्षवर्धन तक

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : भूमिका, पुष्यभूति (वर्धन) वंश और प्रभाकरवर्धन का ऐतिहासिक महत्व

भूमिका

कुरुक्षेत्र केवल महाभारत और गीता की भूमि ही नहीं, बल्कि उत्तर भारत के प्रारम्भिक मध्यकालीन इतिहास का भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। सातवीं शताब्दी ईस्वी में यही क्षेत्र पुष्यभूति (वर्धन) वंश की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसी राजवंश ने उत्तर भारत को राजनीतिक स्थिरता प्रदान की और सम्राट हर्षवर्धन के शासनकाल में भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक पहचान केवल धार्मिक परंपराओं तक सीमित नहीं है। यहाँ स्थित हर्ष का टीला, पुरातात्विक उत्खनन, भगवानपुरा तथा अन्य प्राचीन स्थल यह प्रमाणित करते हैं कि यह क्षेत्र हजारों वर्षों से मानव सभ्यता का केन्द्र रहा है। इस अध्याय में इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों, पुरातात्विक प्रमाणों और लेखक के प्रत्यक्ष अवलोकनों का समन्वित अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पुष्यभूति (वर्धन) वंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इतिहास में जिस राजवंश को सामान्यतः वर्धन वंश कहा जाता है, उसे अधिकांश इतिहासकार पुष्यभूति वंश के नाम से भी जानते हैं। इसकी राजधानी प्रारम्भ में स्थानेश्वर (वर्तमान थानेसर) थी।

बाणभट्ट के हर्षचरित तथा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार इस वंश के प्रमुख शासकों का क्रम इस प्रकार माना जाता है – नरवर्धन, राज्यवर्धन प्रथम, आदित्यवर्धन, प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन द्वितीय, हर्षवर्धन।

इन शासकों में प्रभाकरवर्धन का स्थान विशेष महत्व रखता है, क्योंकि उन्होंने इस वंश को एक शक्तिशाली स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित किया।

प्रभाकरवर्धन – स्वतंत्र शक्ति के निर्माता

प्रभाकरवर्धन को पुष्यभूति वंश का प्रथम प्रभावशाली एवं स्वतंत्र शासक माना जाता है। उन्होंने "महाराजाधिराज" तथा "परमभट्टारक" जैसी राजकीय उपाधियाँ धारण कीं, जो उनकी स्वतंत्र सत्ता का संकेत देती हैं – जबकि प्रारम्भिक तीन शासक केवल "महाराज" की उपाधि तक सीमित थे।

उनकी राजधानी स्थानेश्वर (थानेसर) थी। यही नगर उस समय उत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण राजनीतिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र बन गया।

प्रभाकरवर्धन की पत्नी यशोमती थीं। उनके तीन प्रमुख संतानों का उल्लेख बाणभट्ट ने किया है – राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री। यही परिवार आगे चलकर भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

थानेसर – पैतृक राजधानी

लोकप्रिय इतिहास में प्रायः यह कहा जाता है कि थानेसर हर्षवर्धन की राजधानी थी, किन्तु यह कथन पूर्ण रूप से सही नहीं माना जा सकता।

ऐतिहासिक स्रोतों से स्पष्ट होता है कि थानेसर मूलतः प्रभाकरवर्धन की राजधानी थी; 606 ईस्वी में हर्षवर्धन ने यहीं से शासन संभाला; बाद में कन्नौज पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने अपनी मुख्य राजधानी कन्नौज स्थानांतरित कर दी।

अतः यह कहना अधिक उचित होगा कि थानेसर पुष्यभूति वंश की मूल एवं पैतृक राजधानी थी, जबकि हर्षवर्धन के विस्तृत साम्राज्य की प्रमुख राजधानी आगे चलकर कन्नौज बनी। यह ऐतिहासिक अंतर समझना आवश्यक है, क्योंकि इससे प्रभाकरवर्धन के योगदान का वास्तविक महत्व स्पष्ट होता है।

इतिहास में प्रभाकरवर्धन का स्थान

सम्राट हर्षवर्धन की प्रसिद्धि के कारण उनके पिता प्रभाकरवर्धन का नाम अपेक्षाकृत कम चर्चित रहा, जबकि वस्तुतः उन्होंने ही उस राजनीतिक आधार का निर्माण किया, जिस पर आगे चलकर हर्षवर्धन ने विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

इसी कारण आधुनिक इतिहास-अध्ययन में प्रभाकरवर्धन के योगदान का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक माना जाता है। थानेसर की ऐतिहासिक पहचान को समझने के लिए उनके शासनकाल का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

संदर्भ

- बाणभट्ट – हर्षचरित।
- ह्वेनसांग – सी-यू-की (यात्रावृत्तांत)।
- भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI)।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार)।
- पुष्यभूति (वर्धन) वंश सम्बन्धी मान्य इतिहास-ग्रंथ।

भाग-2 : हर्षवर्धन, हर्ष का टीला और भगवानपुरा की प्राचीन सभ्यता

3. हर्षवर्धन – 16 वर्ष की आयु में सम्राट

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के समय पुष्यभूति वंश अत्यंत कठिन परिस्थितियों से गुजर रहा था। बड़े पुत्र राज्यवर्धन शत्रुओं से युद्ध में व्यस्त थे, जबकि राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही थीं। इसी बीच महारानी यशोमती के देहावसान के बाद राज्य पर संकट और गहरा गया। ऐसे समय में केवल लगभग सोलह वर्ष की आयु में हर्षवर्धन ने 606 ईस्वी में सिंहासन ग्रहण किया।

बाणभट्ट द्वारा रचित 'हर्षचरित' तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग (Xuanzang) के यात्रा-वृत्तांत से ज्ञात होता है कि हर्षवर्धन ने अल्पायु में ही असाधारण नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। उन्होंने उत्तरी भारत के अनेक राज्यों को संगठित किया और एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की। प्रारम्भिक वर्षों में उनका शासन थानेसर से संचालित हुआ, किन्तु कन्नौज के साथ राजनीतिक एकीकरण के बाद उन्होंने राजधानी कन्नौज स्थानांतरित कर दी।

हर्षवर्धन केवल विजेता राजा ही नहीं थे, बल्कि विद्वान, साहित्यकार और धर्म-संरक्षक भी थे। परम्परागत रूप से उनके नाम से 'रत्नावली', 'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' जैसे संस्कृत नाटकों का उल्लेख मिलता है, यद्यपि इनके लेखकत्व पर कुछ विद्वानों में मतभेद भी है। उनके दरबार में बाणभट्ट, मयूर तथा अन्य अनेक विद्वानों का सम्मान था। हर्ष के शासनकाल में शिक्षा, धर्म, साहित्य और सांस्कृतिक गतिविधियों को विशेष संरक्षण प्राप्त हुआ।

इस प्रकार थानेसर की ऐतिहासिक महत्ता केवल इसलिए नहीं है कि यह हर्ष से जुड़ा है, बल्कि इसलिए भी कि यहीं से पुष्यभूति वंश की राजनीतिक शक्ति विकसित हुई और आगे चलकर उत्तर भारत के इतिहास को नई दिशा मिली।

4. हर्ष का टीला – इतिहास की परतों में छिपा नगर

थानेसर नगर में स्थित हर्ष का टीला उत्तर भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों में गिना जाता है। यह लगभग एक किलोमीटर लंबा तथा लगभग 750 मीटर चौड़ा प्राचीन टीला है, जिसकी ऊँचाई लगभग 15 से 18 मीटर तक बताई जाती है।

संपादकीय स्पष्टीकरण: टीले के इन सटीक मापों की स्वतंत्र पुष्टि नहीं हो सकी। अंतिम प्रकाशन-पूर्व मूल ASI उत्खनन-रिपोर्ट से माप की पुष्टि कर ली जाए।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) द्वारा यहाँ विभिन्न चरणों में उत्खनन किया गया। उत्खनन से प्राप्त अवशेषों ने सिद्ध किया कि यह स्थल केवल हर्षकाल तक सीमित नहीं था, बल्कि यहाँ कुषाण काल, गुप्त काल, प्रारम्भिक मध्यकाल तथा उत्तर मध्यकाल तक सतत मानव निवास के प्रमाण मिलते हैं।

प्राप्त पुरावशेषों में पकी हुई ईंटों के भवन, प्राचीन दीवारें, मिट्टी के पात्र, सिक्के, मनके, टेराकोटा प्रतिमाएँ तथा लौह एवं ताम्र उपकरण विशेष उल्लेखनीय हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि थानेसर प्राचीन काल में एक समृद्ध नगरी तथा प्रशासनिक केन्द्र था।

हरियाणा सरकार के कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने भी हर्ष के टीले को अपने ऐतिहासिक स्थलों के दस्तावेज़ों में सम्मिलित किया है।

वर्तमान में यह क्षेत्र भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित स्मारक है और यहाँ किसी प्रकार के अनधिकृत निर्माण पर प्रतिबंध है।

5. भगवानपुरा – महाभारत-पूर्व संस्कृति का जीवित प्रमाण

कुरुक्षेत्र क्षेत्र का एक अन्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल भगवानपुरा है। यह गाँव सरस्वती नदी के प्राचीन तट के समीप स्थित है और भारतीय पुरातत्व के इतिहास में विशेष स्थान रखता है।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा डॉ. जगतपति जोशी के निर्देशन में यहाँ वैज्ञानिक उत्खनन कराया गया।

संपादकीय स्पष्टीकरण: स्थल की खोज-तिथि (1974) एवं खोजकर्ता (रवीन्द्र सिंह बिष्ट) तथा उत्खनन-वर्ष (1975-76) की सटीक स्वतंत्र पुष्टि नहीं हो सकी; जगतपति जोशी के निर्देशन में हुए उत्खनन तथा उससे प्राप्त निष्कर्ष पुरातत्व-साहित्य से पुष्ट हैं। अंतिम प्रकाशन-पूर्व मूल ASI रिपोर्ट से तिथि व खोजकर्ता का नाम मिला लिया जाए।

उत्खनन से ज्ञात हुआ कि यहाँ लगभग 1700 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व तक निरंतर मानव निवास रहा। सबसे महत्त्वपूर्ण खोज यह थी कि यहाँ परवर्ती हड़प्पा संस्कृति तथा चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति (Painted Grey Ware Culture) के अवशेष एक साथ प्राप्त हुए – अर्थात् दोनों संस्कृतियों के बीच सांस्कृतिक अतिव्याप्ति (overlap) का प्रमाण मिला। इससे यह सिद्ध हुआ कि सिंधु-सरस्वती सभ्यता

और महाभारतकालीन संस्कृति के बीच सांस्कृतिक निरंतरता विद्यमान थी।

भगवानपुरा की यह खोज भारतीय इतिहास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि कुरुक्षेत्र क्षेत्र केवल पौराणिक परंपराओं का केंद्र नहीं था, बल्कि प्राचीन सभ्यताओं का वास्तविक निवास क्षेत्र भी था।

भाग-3 : पुरातत्व संग्रहालय, दारा शिकोह पुस्तकालय, सरस्वती सभ्यता एवं लेखक के प्रत्यक्ष अवलोकन

6. पुरातत्व संग्रहालय, थानेसर – अतीत का सजीव दर्पण

थानेसर स्थित पुरातत्व संग्रहालय कुरुक्षेत्र क्षेत्र में हुए विभिन्न पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त पुरावशेषों का प्रमुख संरक्षण एवं प्रदर्शन केंद्र है। यहाँ हर्ष का टीला, भगवानपुरा तथा आसपास के अन्य ऐतिहासिक स्थलों से प्राप्त सामग्री सुरक्षित रखी गई है। इन पुरावशेषों के माध्यम से आगंतुक प्रागैतिहासिक काल से लेकर मध्यकाल तक की सांस्कृतिक यात्रा का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं।

संग्रहालय में प्रदर्शित मिट्टी के पात्र, मूर्तियाँ, सिक्के, आभूषण, ईंटें, धातु उपकरण तथा स्थापत्य अवशेष यह प्रमाणित करते हैं कि कुरुक्षेत्र केवल धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं, बल्कि हजारों वर्षों से विकसित होती भारतीय सभ्यता का भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है।

पुरातत्व संग्रहालय का भ्रमण यह अनुभव कराता है कि इतिहास केवल पुस्तकों में नहीं, बल्कि उन वस्तुओं में भी जीवित रहता है जिन्हें हमारे पूर्वजों ने अपने जीवन में उपयोग किया था।

7. दारा शिकोह पुस्तकालय – ज्ञान और संवाद की परंपरा

थानेसर के प्रसिद्ध शेख चिल्ली परिसर के निकट स्थित दारा शिकोह पुस्तकालय भारतीय सांस्कृतिक समन्वय का एक महत्वपूर्ण प्रतीक है।

मुगल सम्राट शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह भारतीय दर्शन और विशेष रूप से उपनिषदों के गंभीर अध्येता थे। उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद कराया तथा विभिन्न धर्मों के विद्वानों के साथ संवाद स्थापित किया। उनका उद्देश्य विभिन्न आध्यात्मिक परम्पराओं के बीच समान तत्वों को समझना था।

यद्यपि वर्तमान पुस्तकालय का निर्माण बाद के काल में हुआ, किन्तु इसका नाम उस विद्वान राजकुमार की स्मृति में रखा गया है जिसने भारतीय ज्ञान-परंपरा को विश्व तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया।

कुरुक्षेत्र जैसी धर्मभूमि में दारा शिकोह का नाम ज्ञान, सहिष्णुता और वैचारिक संवाद की परंपरा का स्मरण कराता है।

8. सरस्वती नदी और कुरुक्षेत्र की सभ्यता

कुरुक्षेत्र का प्राचीन इतिहास सरस्वती नदी के बिना अधूरा है। वैदिक साहित्य में सरस्वती को ज्ञान, संस्कृति और सभ्यता की जीवनदायिनी नदी कहा गया है। ऋग्वेद में इसका अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

आधुनिक भू-वैज्ञानिक एवं पुरातात्त्विक अनुसंधानों से यह संकेत प्राप्त हुए हैं कि प्राचीन काल में उत्तर-पश्चिम भारत में एक विशाल नदी-प्रणाली विद्यमान थी, जिसके तट पर अनेक प्राचीन नगर एवं बस्तियाँ विकसित हुईं। भगवानपुरा जैसे पुरातात्त्विक स्थलों ने इस ऐतिहासिक संभावना को और अधिक बल प्रदान किया है।

कुरुक्षेत्र के अनेक प्रमुख तीर्थ – सन्निहित सरोवर, पृथूदक (पिहोवा), ब्रह्मयोनि, ज्योतिसर तथा अन्य तीर्थ – सरस्वती परंपरा से जुड़े हुए

हैं। यही कारण है कि इस क्षेत्र को केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के उद्गम-क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

9. लेखक के प्रत्यक्ष अवलोकन (18–30 दिसम्बर 2025)

18 दिसम्बर से 30 दिसम्बर 2025 तक मुझे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, पोते भावेश वैष्णव तथा पोती दिव्यांशी स्वामी के साथ कुरुक्षेत्र क्षेत्र के अनेक ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों का पुनः दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस यात्रा के दौरान हर्ष का टीला पर खड़े होकर मैंने उस भूमि को देखा जहाँ कभी पुष्यभूति वंश का इतिहास विकसित हुआ। भगवानपुरा में सूचना-पट्टों तथा स्थल के अवलोकन से यह अनुभव हुआ कि यह क्षेत्र महाभारत काल से भी पूर्व की सभ्यताओं का साक्षी है। पुरातत्व संग्रहालय में संरक्षित पुरावशेषों ने कुरुक्षेत्र के इतिहास को प्रत्यक्ष रूप से समझने का अवसर दिया। दारा शिकोह पुस्तकालय एवं शेख चिल्ली परिसर में भारतीय ज्ञान-परंपरा के विविध आयामों का अनुभव हुआ।

इन स्थलों पर जाकर यह अनुभूति हुई कि इतिहास केवल ग्रंथों में नहीं बसता; वह मिट्टी, ईंटों, शिलाओं, पुरावशेषों और स्थानीय स्मृतियों में भी जीवित रहता है। एक इतिहास शोधकर्ता के लिए ऐसे स्थल प्रत्यक्ष प्रमाण (Primary Evidence) का कार्य करते हैं।

10. निष्कर्ष

वर्धन वंश, हर्ष का टीला, भगवानपुरा, सरस्वती सभ्यता तथा थानेसर के पुरातात्विक स्थल मिलकर यह सिद्ध करते हैं कि कुरुक्षेत्र केवल

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

महाभारत की युद्धभूमि नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, संस्कृति और सभ्यता का बहुआयामी केंद्र रहा है।

प्रभाकरवर्धन द्वारा स्थापित राजनीतिक परंपरा, हर्षवर्धन का स्वर्णिम शासन, भगवानपुरा की प्राचीन सभ्यता, सरस्वती की सांस्कृतिक धारा तथा आज भी सुरक्षित पुरातात्त्विक धरोहर — ये सभी मिलकर कुरुक्षेत्र को भारत की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक भूमियों में स्थान प्रदान करते हैं।

संदर्भ

- बाणभट्ट – हर्षचरित।
- ह्वेनसांग – सी-यू-की (यात्रावृत्तांत)।
- भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) — हर्ष का टीला एवं भगवानपुरा उत्खनन रिपोर्ट (सटीक तिथि/माप का अंतिम सत्यापन शेष)।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार)।
- पुष्यभूति (वर्धन) वंश सम्बन्धी मान्य इतिहास-ग्रंथ।
- लेखक के प्रत्यक्ष यात्रा-अवलोकन (18–30 दिसम्बर 2025)।

अध्याय–10

माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ (सावित्री पीठ), कुरुक्षेत्र —— तीर्थयात्रा-वृत्तांत

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

भाग-1 : भूमिका, पौराणिक पृष्ठभूमि और शास्त्रीय स्वरूप

कुरुक्षेत्र की पावन भूमि केवल महाभारत के धर्मयुद्ध और श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश तक ही सीमित नहीं है। यह भूमि शक्ति, शिव और विष्णु—तीनों उपासना-परंपराओं के अद्वितीय संगम की साक्षी भी है। इसी पुण्यभूमि पर स्थित है माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ (सावित्री पीठ), जिसे सनातन परंपरा में बावन शक्तिपीठों में अत्यंत श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। यह तीर्थ शाक्त उपासना का प्रमुख केंद्र होने के साथ-साथ कुरुक्षेत्र की धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत का भी अभिन्न अंग है।

मेरे लिए यह यात्रा केवल एक तीर्थ-दर्शन नहीं थी, बल्कि अपने शोध-कार्य का एक महत्त्वपूर्ण चरण थी। वर्षों से सनातन वैष्णव बैरागी परंपरा के इतिहास पर कार्य करते हुए मेरा यह दृढ़ विश्वास रहा है कि किसी भी विषय का अध्ययन केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं होना चाहिए। शास्त्र, स्थल और स्वानुभव—इन तीनों के समन्वय से ही इतिहास अधिक प्रामाणिक और जीवंत बनता है। इसी उद्देश्य से 27 दिसम्बर 2025 को मुझे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला

वैष्णव, पौत्र भावेश स्वामी तथा पौत्री दिव्यांशी स्वामी के साथ इस दिव्य शक्तिपीठ के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

एक सैनिक के रूप में मैंने अनुशासन सीखा, और एक इतिहासकार के रूप में सत्य की खोज करना अपना दायित्व माना। इसलिए इस यात्रा से पूर्व मैंने कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों, पुराणों तथा उपलब्ध शोध-सामग्री का गहन अध्ययन किया, ताकि यह अध्याय केवल भावनात्मक संस्मरण न रहकर एक शोधपरक और विश्वसनीय दस्तावेज़ बन सके। प्रस्तुत विवरण उसी अध्ययन, प्रत्यक्ष अवलोकन तथा पारिवारिक तीर्थ-अनुभव का समन्वित रूप है।

पौराणिक पृष्ठभूमि

माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ की महिमा का आधार शक्ति-परंपरा की वह प्रसिद्ध कथा है, जिसका वर्णन शिव पुराण तथा तांत्रिक साहित्य में मिलता है। प्रजापति दक्ष ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें भगवान शिव को आमंत्रित नहीं किया गया। माता सती बिना निमंत्रण के अपने पिता के यज्ञ में पहुँचीं, पर वहाँ भगवान शिव का घोर अपमान होते देखकर वे अत्यंत व्यथित हुईं। पति के अपमान को सहन न कर पाने के कारण उन्होंने यज्ञ-अग्नि में आत्माहुति दे दी।

जब यह समाचार भगवान शिव को प्राप्त हुआ, तब वे शोक और क्रोध से व्याकुल होकर माता सती के पार्थिव शरीर को अपने कंधे पर उठाकर तांडव करने लगे। उनके इस विकराल रूप से सम्पूर्ण सृष्टि के संतुलन पर संकट उत्पन्न हो गया। देवताओं के अनुरोध पर भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से माता सती के शरीर के

अनेक खंड किए। जहाँ-जहाँ उनके अंग अथवा आभूषण गिरे, वे स्थान कालांतर में शक्तिपीठ कहलाए और सनातन धर्म के प्रमुख तीर्थ बन गए।

तंत्र चूड़ामणि सहित अनेक शाक्त ग्रंथों में शक्तिपीठों की सूची मिलती है। विभिन्न परंपराओं में इनकी संख्या 51, 52 अथवा 108 तक भी बताई गई है, किंतु उत्तर भारत की परंपरा में कुरुक्षेत्र का यह देवीकूप शक्तिपीठ अत्यंत प्रतिष्ठित माना जाता है।

कुरुक्षेत्र के संदर्भ में वामन पुराण तथा ब्रह्मपुराण विशेष महत्त्व रखते हैं। इन ग्रंथों में कुरुक्षेत्र क्षेत्र के चार पवित्र कूपों–चंद्रकूप, विष्णुकूप, रुद्रकूप और देवीकूप–का उल्लेख मिलता है। इन्हीं में स्थित देवीकूप को वह स्थान माना जाता है जहाँ माता सती का दायाँ गुल्फ (टखना) गिरा था। यही मान्यता इस स्थान को शक्तिपीठ के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

नामकरण एवं शास्त्रीय स्वरूप

एक शोधकर्ता के रूप में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इस तीर्थ के अनेक नाम प्रचलित हैं, और प्रत्येक नाम का अपना धार्मिक एवं ऐतिहासिक आधार है।

शास्त्रीय ग्रंथों में इस शक्तिपीठ की अधिष्ठात्री देवी का नाम सावित्री तथा इसके भैरव का नाम स्थाणु बताया गया है। स्थानीय परंपरा में यही स्थान माँ भद्रकाली मंदिर, देवीकूप, भद्रकाली शक्तिपीठ तथा कालिका पीठ के नाम से प्रसिद्ध है।

वर्तमान मंदिर के गर्भगृह में देवी की मुख्य प्रतिमा के समक्ष माता सती के टखने (गुल्फ) का प्रतीकात्मक संगमरमर-चिह्न स्थापित है,

जो इस पौराणिक परंपरा का दृश्य प्रतीक माना जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ केवल देवी की उपासना ही नहीं, बल्कि शक्तिपीठ की मूल परंपरा को भी संरक्षित रखा गया है।

देवी के नामों की यह विविधता सनातन धर्म की व्यापकता को भी प्रकट करती है। एक ही परमशक्ति को विभिन्न युगों, प्रदेशों और परंपराओं में भिन्न-भिन्न नामों एवं स्वरूपों में आराधित किया गया है। कहीं वे सावित्री हैं, कहीं काली, कहीं भद्रकाली और कहीं आदिशक्ति। किंतु तत्त्व एक ही है—समस्त सृष्टि का आधार, रक्षा और कल्याण करने वाली परम शक्ति।

यही कारण है कि कुरुक्षेत्र का यह शक्तिपीठ केवल शाक्त साधकों के लिए ही नहीं, बल्कि वैष्णव, शैव और समस्त सनातन परंपरा के श्रद्धालुओं के लिए समान रूप से आस्था का केंद्र बना हुआ है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भाग-2 : महाभारत से संबंध, यात्रा का प्रारम्भ एवं मंदिर-दर्शन

4. महाभारत से सम्बन्ध

माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ का महत्त्व केवल एक शक्तिपीठ होने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका संबंध कुरुक्षेत्र के महाभारत-कालीन इतिहास और सनातन धर्म की व्यापक परंपरा से भी जुड़ा हुआ है। स्थानीय परंपरा तथा अनेक धार्मिक स्रोतों के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण और बलराम का मुण्डन संस्कार इसी पवित्र स्थल पर सम्पन्न हुआ था। यही कारण है कि आज भी देश के अनेक भागों से श्रद्धालु अपने बच्चों का प्रथम मुण्डन संस्कार यहाँ कराते हैं तथा मनोकामना पूर्ण होने पर माँ को धातु, मिट्टी अथवा लकड़ी से निर्मित घोड़े अर्पित करते हैं।

महाभारत युद्ध के प्रारम्भ से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को धर्म की विजय के लिए आदिशक्ति की आराधना करने का परामर्श दिया था। यह परंपरा इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि कुरुक्षेत्र केवल युद्धभूमि ही नहीं, बल्कि शक्ति, भक्ति और धर्म—तीनों के समन्वय की पवित्र भूमि रही है।

इसी धर्मक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का अमर उपदेश दिया, जिसने सम्पूर्ण मानवता को निष्काम कर्म, धर्मपालन और आत्मज्ञान का मार्ग दिखाया। इस प्रकार माँ भद्रकाली शक्तिपीठ और गीता-भूमि कुरुक्षेत्र एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। एक ओर शक्ति का आशीर्वाद है, तो दूसरी ओर धर्म का उपदेश; एक ओर साहस है, तो दूसरी ओर विवेक। यही समन्वय सनातन संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

आज भी जब श्रद्धालु इस शक्तिपीठ में दर्शन करते हैं, तो वे केवल देवी के सम्मुख ही नहीं झुकते, बल्कि उस सनातन परंपरा के समक्ष भी नतमस्तक होते हैं जिसने धर्म, शक्ति और करुणा को एक ही जीवन-दर्शन में समाहित किया है।

5. यात्रा का प्रारम्भ

27 दिसम्बर 2025 की वह शीतकालीन सुबह आज भी मेरी स्मृतियों में उसी ताजगी के साथ अंकित है। दिसंबर का अंतिम सप्ताह होने के कारण सम्पूर्ण कुरुक्षेत्र हल्के कोहरे की चादर में लिपटा हुआ था। वातावरण में तीखी ठंड थी, परन्तु श्रद्धा की ऊष्मा ने उस शीतलता को महत्वहीन बना दिया।

इस पावन यात्रा में मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, पौत्र भावेश स्वामी तथा पौत्री दिव्यांशी स्वामी भी थे। परिवार के साथ तीर्थयात्रा का आनंद केवल दर्शन तक सीमित नहीं रहता; वह पीढ़ियों के बीच संस्कारों और आस्था के हस्तांतरण का माध्यम भी बन जाता है।

माँ भद्रकाली मंदिर की ओर प्रस्थान करने से पूर्व हमने ब्रह्मसरोवर परिसर का भी भ्रमण किया। वहाँ स्थापित भगवान श्रीकृष्ण के रथ तथा सात अश्वों की विशाल प्रतिमा दूर से ही मन को आकर्षित कर रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो महाभारत का वह दिव्य दृश्य आज भी उसी स्थान पर जीवंत हो।

मेरी पौत्री दिव्यांशी स्वामी अपनी दादी निर्मला वैष्णव के साथ उन अश्व-प्रतिमाओं के समीप खड़ी होकर अत्यंत उत्सुकता से उन्हें निहार रही थी। उस क्षण मुझे यह अनुभव हुआ कि जब नई पीढ़ी

ऐसे पवित्र स्थलों को प्रत्यक्ष देखती है, तभी इतिहास और संस्कृति वास्तव में जीवित रहते हैं। पुस्तकों में पढ़ा गया इतिहास एक बात है, किन्तु उसी भूमि पर खड़े होकर उसे अनुभव करना एक बिल्कुल अलग अनुभूति है।

उस समय मेरे मन में यही विचार बार-बार उठ रहा था कि कुरुक्षेत्र की यह भूमि केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य को भी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने वाली एक जीवंत धरोहर है।

6. मंदिर-दर्शन

ब्रह्मसरोवर से आगे बढ़ते हुए हम माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ के मुख्य प्रवेश-द्वार पर पहुँचे। मंदिर परिसर में प्रवेश करते ही घंटियों की मधुर ध्वनि, वैदिक मंत्रोच्चार, धूप और अगरबत्ती की सुगंध ने सम्पूर्ण वातावरण को भक्तिमय बना दिया।

मंदिर प्रांगण में श्रद्धालुओं की निरंतर भीड़ लगी हुई थी। दूर-दूर से आए भक्त श्रद्धा और विश्वास के साथ देवी के दर्शन कर रहे थे। अनेक श्रद्धालु अपनी मनोकामना पूर्ण होने पर धातु, मिट्टी अथवा लकड़ी से बने घोड़े देवी को अर्पित कर रहे थे। यह परंपरा इस शक्तिपीठ की विशिष्ट पहचान है और आज भी पूरी श्रद्धा के साथ निभाई जाती है।

मैंने अपने पौत्र भावेश स्वामी को गोद में लेकर माँ के दिव्य स्वरूप के दर्शन किए। उस समय मेरे मस्तक पर वैष्णव तिलक और सिर पर पारंपरिक हिमाचली टोपी थी। मंदिर की भित्तियों पर उकेरी गई

देवी की मनोहारी आकृतियाँ तथा प्राचीन शिल्पकला इस स्थान की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत का सुंदर परिचय दे रही थीं।

गर्भगृह में प्रवेश करते समय श्रद्धा का भाव और भी प्रगाढ़ हो गया। देवी के चरणों में नतमस्तक होकर मैंने अपने परिवार के मंगल, राष्ट्र की समृद्धि तथा अपने शोध-कार्य की सफलता के लिए प्रार्थना की। वर्षों के सैनिक जीवन ने मुझे अनुशासन सिखाया और तीर्थयात्राओं ने विनम्रता। उस क्षण इन दोनों जीवन-मूल्यों का अद्भुत संगम अनुभव हो रहा था।

गर्भगृह के चारों ओर सुसज्जित रंग-बिरंगी घंटियाँ, पुष्पमालाएँ और लता-वल्लरियों की सजावट मंदिर की दिव्यता को और अधिक आकर्षक बना रही थी। वहाँ उपस्थित प्रत्येक श्रद्धालु के मुखमंडल पर भक्ति, संतोष और आत्मिक शांति का भाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

उस क्षण यह अनुभव सहज ही हुआ कि तीर्थ केवल स्थापत्य या प्राचीन स्मारक नहीं होते; वे करोड़ों लोगों की आस्था, विश्वास और सांस्कृतिक स्मृतियों से जीवित रहने वाले आध्यात्मिक केंद्र होते हैं। माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ भी ऐसी ही सनातन चेतना का एक दिव्य और जीवंत प्रतीक है।

भाग-3 : सायंकालीन दर्शन, उपसंहार एवं निष्कर्ष

7. सायंकालीन दर्शन

संध्या होते-होते सम्पूर्ण मंदिर परिसर दीपों और विद्युत-प्रकाश से आलोकित हो उठा। दिनभर श्रद्धालुओं से भरा रहने वाला यह शक्तिपीठ रात्रि में और भी अधिक दिव्य एवं मनोहारी प्रतीत हो रहा था। मंदिर प्रांगण में गूँजती आरती, शंख-ध्वनि और घंटियों की मधुर झंकार वातावरण को आध्यात्मिक ऊर्जा से भर रही थी।

सायंकाल हमने पुनः मंदिर परिसर तथा उसके आसपास स्थित धार्मिक स्थलों का दर्शन किया। इस अवसर पर भगवान श्रीराम तथा श्रीकृष्ण-अर्जुन के भव्य विग्रहों के समक्ष उपस्थित होकर ऐसा अनुभव हुआ मानो कुरुक्षेत्र की संपूर्ण आध्यात्मिक परंपरा एक ही स्थान पर साकार हो उठी हो। विद्युत-प्रकाश से आलोकित ये विग्रह श्रद्धा और सौंदर्य का अद्भुत संगम प्रस्तुत कर रहे थे।

धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव के साथ इन दिव्य प्रतिमाओं के समक्ष कुछ क्षण शांत भाव से खड़े रहकर मैंने इस यात्रा के उद्देश्य और उसके महत्व पर मनन किया। दिनभर के दर्शन, अध्ययन और प्रत्यक्ष अवलोकन के पश्चात यह अनुभव और अधिक दृढ़ हो गया कि कुरुक्षेत्र केवल प्राचीन कथाओं का विषय नहीं, बल्कि आज भी जीवित सनातन परंपरा का सशक्त केंद्र है।

इसके पश्चात हमें एक अन्य मंदिर-परिसर में राधा-कृष्ण तथा भगवान श्रीराम के सुंदर चित्रों और विग्रहों के दर्शन का भी अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ मैं, मेरी धर्मपत्नी निर्मला वैष्णव तथा पौत्र भावेश स्वामी ने संयुक्त रूप से भगवान के श्रीचरणों में प्रणाम किया। उस

समय यह अनुभूति अत्यंत सुखद थी कि परिवार की अनेक पीढ़ियाँ एक साथ सनातन संस्कृति के इन पवित्र प्रतीकों के समक्ष श्रद्धापूर्वक उपस्थित हैं।

मेरे लिए यह यात्रा केवल दर्शनीय स्थलों का भ्रमण नहीं थी। प्रत्येक मंदिर, प्रत्येक प्रतिमा, प्रत्येक घंटी और प्रत्येक श्रद्धालु इस बात का सजीव प्रमाण था कि हजारों वर्षों से चली आ रही यह आध्यात्मिक परंपरा आज भी उसी श्रद्धा और उत्साह के साथ जीवित है।

8. शोधकर्ता का प्रत्यक्ष अनुभव

एक इतिहासकार के लिए किसी भी विषय का अध्ययन केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं रह सकता। शास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन, ऐतिहासिक स्रोतों का परीक्षण तथा संबंधित स्थलों का प्रत्यक्ष अवलोकन—इन तीनों के समन्वय से ही किसी विषय का संतुलित और प्रामाणिक मूल्यांकन संभव होता है।

माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ की इस यात्रा ने मुझे यही अनुभव कराया कि कुरुक्षेत्र की धार्मिक परंपरा केवल महाभारत या गीता तक सीमित नहीं है। यहाँ शक्ति, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सरस्वती तथा ऋषि-परंपरा—सभी एक ही सांस्कृतिक धारा में प्रवाहित होते दिखाई देते हैं। यही समन्वय कुरुक्षेत्र को भारत की अन्य तीर्थभूमियों से विशिष्ट बनाता है।

मंदिर परिसर में श्रद्धालुओं की आस्था, देवी को अर्पित किए जाने वाले घोड़े, गर्भगृह की प्राचीन परंपरा, तथा स्थानीय धार्मिक मान्यताओं का प्रत्यक्ष अवलोकन इस अध्याय के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। इससे यह स्पष्ट हुआ कि शास्त्रों में वर्णित

परंपराएँ आज भी जनजीवन में जीवित हैं और श्रद्धालुओं के दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बनी हुई हैं।

9. उपसंहार

27 दिसम्बर 2025 की यह तीर्थयात्रा मेरे लिए केवल एक धार्मिक यात्रा नहीं, बल्कि अध्ययन, अनुभव और आत्मिक अनुभूति का संगम सिद्ध हुई। माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ में दर्शन के साथ-साथ इस स्थान की पौराणिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपराओं को निकट से समझने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस यात्रा ने यह विश्वास और अधिक दृढ़ किया कि कुरुक्षेत्र केवल महाभारत की युद्धभूमि नहीं, बल्कि सनातन सभ्यता का ऐसा महान केंद्र है जहाँ शक्ति, भक्ति, ज्ञान और धर्म—चारों का अद्भुत समन्वय आज भी विद्यमान है।

मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, पौत्र भावेश स्वामी तथा पौत्री दिव्यांशी स्वामी के साथ सम्पन्न यह यात्रा जीवन की उन अविस्मरणीय स्मृतियों में से एक रहेगी, जिन्होंने इस शोध-ग्रंथ को केवल पुस्तकीय अध्ययन तक सीमित न रखकर प्रत्यक्ष अनुभवों से भी समृद्ध किया।

माँ भद्रकाली के श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि वे समस्त मानवता को धर्म, सदाचार, साहस और करुणा के मार्ग पर अग्रसर होने की शक्ति प्रदान करें तथा भारत की इस महान आध्यात्मिक विरासत को आने वाली पीढ़ियाँ भी उसी श्रद्धा के साथ सुरक्षित रखें।

संदर्भ सूची

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

- शिव पुराण – सती, दक्ष यज्ञ एवं शक्तिपीठ उत्पत्ति प्रसंग।
- तंत्र चूड़ामणि – शक्तिपीठों का वर्णन।
- वामन पुराण – कुरुक्षेत्र के देवीकूप सहित चार पवित्र कूपों का उल्लेख।
- ब्रह्मपुराण – देवीकूप एवं कुरुक्षेत्र माहात्म्य।
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (हरियाणा सरकार) — माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ आधिकारिक विवरण।
- भारत सरकार – अतुल्य भारत (Incredible India) — भद्रकाली मंदिर विवरण।
- ETV भारत, अमर उजाला तथा अन्य विश्वसनीय समाचार स्रोत – मंदिर एवं नवरात्रि सम्बन्धी विवरण।
- लेखक का प्रत्यक्ष यात्रा-अनुभव – 27 दिसम्बर 2025 (धर्मपत्नी निर्मला वैष्णव, पौत्र भावेश स्वामी एवं पौत्री दिव्यांशी स्वामी सहित)।

अध्याय 11

आदित्य तीर्थ (अभिमन्युपुर) : देवमाता अदिति की तपोभूमि और वीर अभिमन्यु की अमर गाथा

भाग-1 : आदित्य तीर्थ का पौराणिक, वैदिक एवं ऐतिहासिक परिचय

कुरुक्षेत्र की 48 कोस परिक्रमा में स्थित आदित्य तीर्थ, जिसे आज अभिमन्युपुर के नाम से जाना जाता है, केवल एक ऐतिहासिक गाँव नहीं, बल्कि भारतीय आध्यात्मिक परंपरा, वैदिक संस्कृति और महाभारत की अमर स्मृतियों का जीवंत केंद्र है। यह तीर्थ भगवान सूर्य, देवमाता अदिति और वीर अभिमन्यु – तीनों की दिव्य परंपराओं को अपने भीतर समेटे हुए है। यही कारण है कि यह स्थान धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार, इस पवित्र भूमि पर देवमाता अदिति ने कठोर तपस्या कर भगवान सूर्य की आराधना की थी। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने वामन अवतार धारण किया और देवताओं को पुनः उनका अधिकार दिलाया। इसी कारण इस क्षेत्र का नाम आदित्य तीर्थ पड़ा। आगे चलकर महाभारत काल में यह क्षेत्र वीर अभिमन्यु के शौर्य और बलिदान से जुड़ गया, जिसके कारण वर्तमान में इसे अभिमन्युपुर कहा जाता है।

महाभारत के युद्ध का तेरहवाँ दिन भारतीय इतिहास का अत्यंत मार्मिक अध्याय है। इसी क्षेत्र में चक्रव्यूह की रचना हुई और मात्र सोलह वर्ष की आयु में अभिमन्यु ने अद्वितीय पराक्रम का परिचय

देते हुए धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। उनका बलिदान भारतीय संस्कृति में साहस, कर्तव्य और राष्ट्रधर्म का सर्वोच्च प्रतीक बन गया।

आज भी अभिमन्युपुर में स्थित प्राचीन तीर्थ, मंदिर और स्मारक इस गौरवशाली इतिहास की साक्षी हैं। श्रद्धालु यहाँ आकर वीर अभिमन्यु को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और देवमाता अदिति की तपोभूमि के दर्शन कर आध्यात्मिक शांति का अनुभव करते हैं।

इस अध्याय की विशेषता यह है कि इसमें केवल पौराणिक कथाओं का वर्णन नहीं किया गया है, बल्कि पुराणों, महाभारत, कुरुक्षेत्र की तीर्थ परंपरा, उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों तथा लेखक की प्रत्यक्ष स्थल-यात्रा के आधार पर इस तीर्थ का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उद्देश्य किसी एक मत का समर्थन करना नहीं, बल्कि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर पाठकों के समक्ष संतुलित और शोधपरक जानकारी प्रस्तुत करना है।

इस प्रकार आदित्य तीर्थ केवल अतीत का स्मारक नहीं, बल्कि सनातन संस्कृति की उस अखंड परंपरा का प्रतीक है, जहाँ तप, त्याग, धर्म, वीरता और ज्ञान एक साथ दिखाई देते हैं।

भाग-2 : देवमाता अदिति की तपस्या एवं आदित्य तीर्थ का पुराणों में वर्णन

सनातन धर्मग्रंथों में देवमाता अदिति को देवताओं की जननी तथा समस्त सृष्टि में मातृत्व, करुणा, धैर्य और धर्म की प्रतीक माना गया है। ऋषि कश्यप की पत्नी अदिति से ही आदित्यों का जन्म हुआ, जिनमें भगवान विष्णु का वामन अवतार भी विशेष रूप से वर्णित

है। जब दैत्यराज बलि के प्रभाव से देवगण अपने अधिकारों से वंचित हो गए, तब देवमाता अदिति ने अपने पुत्रों के कल्याण और धर्म की पुनर्स्थापना के लिए कठोर तपस्या का संकल्प लिया।

पुराणों में वर्णित है कि अदिति ने महान ऋषियों के निर्देशानुसार व्रत, उपवास, जप और ध्यान के माध्यम से भगवान विष्णु की आराधना की। उनकी अटूट भक्ति और तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उन्हें वरदान दिया कि वे उनके पुत्र के रूप में अवतार लेकर देवताओं की रक्षा करेंगे। यही दिव्य अवतार आगे चलकर वामन अवतार के रूप में प्रकट हुआ।

कुरुक्षेत्र की प्राचीन तीर्थ परंपरा में जिस स्थान को आज आदित्य तीर्थ कहा जाता है, उसे अनेक विद्वान देवमाता अदिति की तपोभूमि के रूप में स्वीकार करते हैं। स्थानीय परंपराएँ, तीर्थ-माहात्म्य और धार्मिक मान्यताएँ इस विश्वास को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाती रही हैं। श्रद्धालुओं का विश्वास है कि इसी पावन भूमि पर अदिति ने भगवान विष्णु की आराधना की थी।

वामन पुराण में कुरुक्षेत्र के अनेक पवित्र तीर्थों का वर्णन मिलता है। आदित्य तीर्थ का उल्लेख सूर्य उपासना, पुण्य स्नान तथा देवपूजन से जुड़े स्थान के रूप में किया गया है। इस तीर्थ के दर्शन और स्नान को पापों के नाश तथा पुण्यवृद्धि का साधन माना गया है। इसी कारण प्राचीन काल से साधु-संत, तपस्वी और श्रद्धालु यहाँ आकर साधना करते रहे हैं।

कुरुक्षेत्र माहात्म्य में भी आदित्य तीर्थ का महत्व वर्णित है। वहाँ कहा गया है कि जो श्रद्धालु श्रद्धापूर्वक इस तीर्थ में स्नान, दान

और सूर्यदेव की उपासना करता है, उसे विशेष आध्यात्मिक फल प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति में सूर्य केवल एक ग्रह नहीं, बल्कि जीवन, ऊर्जा, ज्ञान और धर्म के प्रतीक माने गए हैं। इसलिए आदित्य तीर्थ का महत्व केवल एक धार्मिक स्थल तक सीमित नहीं, बल्कि वैदिक सूर्य-परंपरा से भी जुड़ा हुआ है।

भागवत पुराण में देवमाता अदिति द्वारा किए गए पयोव्रत का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस व्रत के माध्यम से उन्होंने भगवान विष्णु को प्रसन्न किया और धर्म की पुनर्स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। यद्यपि भागवत पुराण तपस्थली का स्पष्ट भौगोलिक नाम नहीं बताता, किंतु कुरुक्षेत्र की स्थानीय तीर्थ-परंपरा इस तपस्या को आदित्य तीर्थ से जोड़ती है। शोध की दृष्टि से यह उल्लेखनीय है कि यह संबंध मुख्यतः धार्मिक परंपरा पर आधारित है, इसलिए इसे उसी रूप में समझना चाहिए।

आज अभिमन्युपुर स्थित आदित्य तीर्थ में आने वाले श्रद्धालु देवमाता अदिति के तप, मातृशक्ति, भगवान विष्णु के वामन अवतार तथा सूर्योपासना की इस प्राचीन परंपरा को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं। यह स्थान हमें यह संदेश देता है कि सत्य, तपस्या, धैर्य और ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास अंततः धर्म की विजय का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

इस प्रकार आदित्य तीर्थ केवल एक ऐतिहासिक स्थल नहीं, बल्कि वैदिक परंपरा, पुराणों की दिव्य कथाओं और भारतीय आध्यात्मिक विरासत का जीवंत केंद्र है। यहाँ देवमाता अदिति की तपस्या और भगवान वामन के अवतार की स्मृतियाँ आज भी श्रद्धालुओं की आस्था को प्रेरित करती हैं।

भाग-3 : आदित्य तीर्थ का वर्तमान स्वरूप, अभिमन्युपुर का ऐतिहासिक विकास एवं महाभारत से संबंध

कुरुक्षेत्र की पावन 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा में स्थित अभिमन्युपुर आज केवल एक सामान्य ग्राम नहीं, बल्कि आस्था, इतिहास और राष्ट्रीय स्मृति का संगम है। प्राचीन काल में जिस स्थान को आदित्य तीर्थ के रूप में जाना जाता था, वही स्थान कालांतर में महाभारत के वीर योद्धा अभिमन्यु की अमर गाथा के कारण अभिमन्युपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह परिवर्तन केवल नाम का नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति में तप और वीरता – दोनों परंपराओं के संगम का प्रतीक है।

महाभारत के अनुसार युद्ध के तेरहवें दिन कौरव सेना ने अत्यंत जटिल चक्रव्यूह की रचना की। उस समय अर्जुन और श्रीकृष्ण युद्धभूमि के दूसरे छोर पर थे। ऐसी स्थिति में युवा अभिमन्यु ने केवल चक्रव्यूह में प्रवेश करने की विद्या के आधार पर उसमें प्रवेश किया। उन्होंने अकेले ही अनेक महारथियों का सामना किया और अद्वितीय शौर्य का प्रदर्शन किया। अंततः युद्ध के नियमों का उल्लंघन करते हुए अनेक योद्धाओं ने एक साथ उन पर आक्रमण किया और वे वीरगति को प्राप्त हुए।

यद्यपि महाभारत के विभिन्न संस्करण चक्रव्यूह के सटीक भौगोलिक स्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं करते, किंतु कुरुक्षेत्र की स्थानीय परंपरा, तीर्थ-मान्यता और हरियाणा की जनश्रुतियाँ अभिमन्युपुर को उस स्मृति से जोड़ती हैं। इसी कारण यह स्थान श्रद्धा और राष्ट्रीय गौरव का केंद्र बन गया है। शोध की दृष्टि से यह उल्लेख आवश्यक है कि यह संबंध मुख्यतः परंपरा और

स्थानीय आस्था पर आधारित है, जिसे अनेक तीर्थ-विवरणों में स्वीकार किया गया है।

वर्तमान अभिमन्युपुर में आने वाले श्रद्धालु वीर अभिमन्यु के बलिदान को नमन करते हैं। यहाँ स्थित मंदिर, स्मृति-स्थल तथा स्थानीय धार्मिक गतिविधियाँ इस ऐतिहासिक विरासत को जीवित रखे हुए हैं। विशेष अवसरों पर धार्मिक अनुष्ठान, हवन, कथा और श्रद्धांजलि कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, जिनमें दूर-दूर से श्रद्धालु सम्मिलित होते हैं।

लेखक को भी इस पावन स्थल पर प्रत्यक्ष रूप से पहुँचकर दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्थल का अवलोकन करते समय यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि यहाँ की लोकस्मृति आज भी महाभारत की घटनाओं को जीवंत बनाए हुए है। स्थानीय लोगों से बातचीत के दौरान उन्होंने अभिमन्यु की वीरता से जुड़ी अनेक परंपरागत कथाएँ साझा कीं, जो पीढ़ियों से सुनाई जाती रही हैं। यद्यपि इतिहासकार इन कथाओं का मूल्यांकन उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर करते हैं, फिर भी सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में लोकपरंपराओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

अभिमन्युपुर का महत्व केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पर्यटन और ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि इस क्षेत्र के प्राचीन अवशेषों, स्थानीय परंपराओं और उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों पर और अधिक वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए, तो कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को समझने में नई जानकारियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

हरियाणा सरकार तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा 48 कोस तीर्थों के संरक्षण और विकास के लिए समय-समय पर अनेक प्रयास किए गए हैं। इससे अभिमन्युपुर जैसे प्राचीन तीर्थों की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर और अधिक सुदृढ़ हुई है। तीर्थयात्रियों के लिए मार्ग, सूचना-पट्ट, धार्मिक आयोजन तथा अन्य मूलभूत सुविधाओं का विस्तार इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

अभिमन्युपुर हमें एक अद्वितीय संदेश देता है – आदित्य तीर्थ हमें तप, साधना और ईश्वर-भक्ति की प्रेरणा देता है, जबकि अभिमन्यु की स्मृति हमें साहस, कर्तव्य और राष्ट्रधर्म के लिए सर्वस्व समर्पित करने की शिक्षा देती है। यही इस तीर्थ की सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ आध्यात्मिकता और वीरता एक-दूसरे की पूरक बनकर भारतीय संस्कृति के शाश्वत आदर्शों को साकार करती हैं।

भाग-4 : लेखक की स्थल-यात्रा एवं अभिमन्युपुर का वर्तमान स्वरूप

शोध की दृष्टि से किसी भी तीर्थ का सम्यक् अध्ययन केवल प्राचीन ग्रंथों के आधार पर पूर्ण नहीं होता, बल्कि प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण, स्थानीय परंपराओं, उपलब्ध स्मारकों तथा जनश्रुतियों के अध्ययन से उसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्ता अधिक स्पष्ट होती है। इसी उद्देश्य से लेखक ने आदित्य तीर्थ (अभिमन्युपुर) का स्थल-भ्रमण कर वहाँ के धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप का प्रत्यक्ष अध्ययन किया।

अभिमन्युपुर पहुँचने पर सबसे पहले वहाँ का शांत, स्वच्छ और आध्यात्मिक वातावरण मन को आकर्षित करता है। यह स्थान आज भी महाभारतकालीन स्मृतियों और वीर अभिमन्यु के अद्वितीय

बलिदान की प्रेरणा से ओत-प्रोत दिखाई देता है। स्थानीय श्रद्धालु और तीर्थयात्री इस स्थल को श्रद्धा के साथ नमन करते हैं तथा इसे धर्म, साहस और त्याग की पवित्र भूमि मानते हैं।

लेखक ने यहाँ स्थापित वीर अभिमन्यु की विशाल प्रतिमा का अवलोकन किया। प्रतिमा में अभिमन्यु को अपने दोनों हाथों में रथ का पहिया उठाए हुए दर्शाया गया है। यह दृश्य महाभारत के उस अंतिम क्षण का प्रतीक है, जब सभी अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो जाने पर भी उन्होंने युद्धभूमि नहीं छोड़ी और धर्म की रक्षा के लिए अंतिम श्वास तक संघर्ष किया। यह प्रतिमा भारतीय युवाओं के लिए साहस, कर्तव्य और राष्ट्रधर्म की अमर प्रेरणा है।

प्रतिमा तक पहुँचने का मार्ग चक्रव्यूह की संरचना के अनुरूप बनाया गया है। घुमावदार पथ से होकर जब श्रद्धालु प्रतिमा तक पहुँचते हैं, तो उन्हें प्रतीकात्मक रूप से अभिमन्यु के चक्रव्यूह प्रवेश की स्मृति का अनुभव होता है। यह स्थापत्य केवल एक स्मारक नहीं, बल्कि इतिहास को अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करने का सुंदर प्रयास है।

लेखक ने स्थल पर उपस्थित श्रद्धालुओं एवं स्थानीय लोगों से भी संवाद किया। उन्होंने बताया कि यह स्थान केवल एक स्मारक नहीं, बल्कि श्रद्धा और प्रेरणा का केंद्र है। प्रत्येक वर्ष बड़ी संख्या में लोग यहाँ आकर वीर अभिमन्यु को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके अदम्य साहस को स्मरण करते हैं।

लेखक के मत में अभिमन्युपुर का संरक्षण केवल एक धार्मिक दायित्व नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर के

संरक्षण का भी महत्वपूर्ण कार्य है। यह स्थल नई पीढ़ी को यह संदेश देता है कि आयु नहीं, बल्कि साहस, कर्तव्य और धर्मनिष्ठा ही किसी व्यक्ति को अमर बनाती है।

इस स्थल की यात्रा लेखक के लिए केवल एक तीर्थ-दर्शन नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, महाभारत की वीर परंपरा और सनातन संस्कृति के जीवंत स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव थी। अभिमन्युपुर आज भी उस अमर गाथा का साक्षी है, जिसने वीरता और बलिदान को भारतीय संस्कृति का शाश्वत आदर्श बना दिया।

भाग-5 : निष्कर्ष, संरक्षण एवं शोधपरक मूल्यांकन

आदित्य तीर्थ (अभिमन्युपुर) कुरुक्षेत्र की 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा का ऐसा पावन स्थल है, जहाँ वैदिक परंपरा, पौराणिक आस्था, महाभारत की वीरगाथा और आधुनिक सांस्कृतिक चेतना एक साथ दिखाई देती हैं। एक ओर यह स्थान देवमाता अदिति की तपस्या और भगवान वामन के अवतार की स्मृतियों से जुड़ा है, तो दूसरी ओर वीर अभिमन्यु के अद्वितीय शौर्य और बलिदान का अमर प्रतीक भी है।

महाभारत का संदेश केवल युद्ध का वर्णन नहीं, बल्कि धर्म, कर्तव्य और त्याग का संदेश है। अभिमन्यु का जीवन इस सत्य का सर्वोत्तम उदाहरण है कि धर्म की रक्षा के लिए आयु नहीं, बल्कि साहस, आत्मविश्वास और कर्तव्यनिष्ठा आवश्यक है। यही कारण है कि आज भी भारत का प्रत्येक नागरिक अभिमन्यु के नाम को गर्व और श्रद्धा के साथ स्मरण करता है।

अभिमन्युपुर का वर्तमान स्वरूप इस बात का प्रमाण है कि समाज ने अपनी ऐतिहासिक स्मृतियों को जीवित रखने का सफल प्रयास

किया है। यहाँ स्थापित विशाल प्रतिमा, चक्रव्यूह की प्रतीकात्मक संरचना तथा धार्मिक वातावरण आने वाली पीढ़ियों को भारतीय इतिहास और संस्कृति से जोड़ने का महत्वपूर्ण माध्यम बनते हैं।

शोध की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र से संबंधित उपलब्ध पुराणों, महाभारत, स्थानीय जनश्रुतियों, पुरातात्त्विक अध्ययनों तथा सरकारी अभिलेखों का समन्वित अध्ययन आगे भी किया जाए। इससे कुरुक्षेत्र की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को और अधिक प्रामाणिक रूप से समझने में सहायता मिलेगी। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि जहाँ ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हों, उन्हें तथ्यों के रूप में प्रस्तुत किया जाए और जहाँ परंपरागत मान्यताएँ हों, उन्हें उसी रूप में स्पष्ट किया जाए। यही एक निष्पक्ष शोधकर्ता का दायित्व है।

लेखक का मानना है कि अभिमन्युपुर केवल हरियाणा या कुरुक्षेत्र की धरोहर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय विरासत का अभिन्न अंग है। इस स्थल का संरक्षण, स्वच्छता, वृक्षारोपण, सूचना-पट्टों का अद्यतन तथा शोध को प्रोत्साहन देना समय की आवश्यकता है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस अमूल्य धरोहर से परिचित हो सकें।

लेखक के लिए यह यात्रा केवल एक शोध-अभियान नहीं, बल्कि एक भावनात्मक अनुभव भी रही। जब उन्होंने वीर अभिमन्यु की प्रतिमा के समक्ष श्रद्धापूर्वक नमन किया, तब यह अनुभूति हुई कि भारतीय संस्कृति का वास्तविक वैभव केवल हमारे ग्रंथों में ही नहीं, बल्कि उन पवित्र स्थलों में भी सुरक्षित है, जहाँ इतिहास आज भी मौन होकर अपनी गाथा सुनाता है।

आदित्य तीर्थ (अभिमन्युपुर) हमें यह प्रेरणा देता है कि तपस्या से धर्म की स्थापना होती है और वीरता से उसकी रक्षा होती है। यही इस तीर्थ का सनातन संदेश है और यही इसकी अमर पहचान भी है।

प्रमुख संदर्भ

• महाभारत (भीष्म पर्व एवं द्रोण पर्व)

• श्रीमद्भागवत महापुराण (अष्टम स्कंध - वामन अवतार)

• वामन पुराण

• कुरुक्षेत्र माहात्म्य

• कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित 48 कोस तीर्थ संबंधी सामग्री

• लेखक का स्थल-भ्रमण एवं प्रत्यक्ष अवलोकन (वर्ष 2026)

— अध्याय 11 समाप्त –

अध्याय-12

सरस्वती नदी : वैदिक युग की जीवन रेखा

भाग-1 : वैदिक सभ्यता की अमर धारा और कुरुक्षेत्र का सांस्कृतिक आधार

भारतीय सभ्यता के इतिहास में यदि किसी नदी को केवल जलधारा नहीं, बल्कि ज्ञान, संस्कृति, आध्यात्मिकता और सभ्यता की जननी कहा जाए, तो वह निस्संदेह सरस्वती नदी है। वैदिक साहित्य में सरस्वती को केवल एक भौगोलिक नदी के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान, वाणी, समृद्धि और जीवन की अधिष्ठात्री शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यही कारण है कि भारतीय परंपरा में सरस्वती का स्थान गंगा और यमुना के समान ही अत्यंत पवित्र माना गया है।

ऋग्वेद में सरस्वती का अनेक सूक्तों में वर्णन मिलता है। उसे "नदीतमा, अम्बितमा, देवितमा" अर्थात् नदियों में श्रेष्ठ, माताओं में श्रेष्ठ और देवियों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह विशेषण स्पष्ट करते हैं कि वैदिक काल में सरस्वती केवल जल का स्रोत नहीं थी, बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की आधारशिला थी। ऋग्वैदिक समाज का विकास इसी नदी के तट पर हुआ, जहाँ कृषि, पशुपालन, शिक्षा, यज्ञ और वैदिक जीवन-पद्धति का सुव्यवस्थित विस्तार हुआ।

प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य स्थित क्षेत्र को 'ब्रह्मवर्त' कहा गया है। मनुस्मृति में ब्रह्मवर्त को धर्म, संस्कार और वैदिक आचरण की सर्वोत्तम भूमि माना गया

है। विद्वानों का मत है कि वर्तमान हरियाणा और विशेषकर कुरुक्षेत्र का विस्तृत क्षेत्र इसी ब्रह्मवर्त का प्रमुख भाग था। यही वह भूमि थी, जहाँ वैदिक ऋषियों ने अपने आश्रम स्थापित किए और मानव सभ्यता को वेदों का अमूल्य ज्ञान प्रदान किया।

कुरुक्षेत्र का महत्व भी सरस्वती नदी से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। 48 कोस कुरुक्षेत्र के अधिकांश प्राचीन तीर्थों का उल्लेख सरस्वती नदी अथवा उसकी सहायक धाराओं के साथ मिलता है। अनेक धार्मिक ग्रंथों में वर्णित है कि इस क्षेत्र में असंख्य ऋषि-मुनियों ने तपस्या की, यज्ञ सम्पन्न किए और धर्मशास्त्रों की रचना की। इस कारण कुरुक्षेत्र को केवल युद्धभूमि नहीं, बल्कि वैदिक ज्ञानभूमि भी कहा जाता है।

हरियाणा पर्यटन विभाग द्वारा प्रकाशित "48 कोस कुरुक्षेत्र - एक सांस्कृतिक यात्रा" में भी सरस्वती नदी को कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान का मूल आधार माना गया है। इस प्रकाशन में उल्लेख है कि सरस्वती के तट पर ही वैदिक संस्कृति ने अपने सर्वोच्च स्वरूप को प्राप्त किया तथा अनेक तीर्थों का विकास हुआ।

सरस्वती नदी का महत्व केवल धार्मिक परंपराओं तक सीमित नहीं है। आधुनिक पुरातत्त्व, भूगर्भशास्त्र और उपग्रह चित्रों के अध्ययन ने भी इस विषय में नई संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं। भारतीय वैज्ञानिक संस्थानों तथा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) सहित अनेक शोध संस्थाओं द्वारा किए गए अध्ययनों में यह संकेत मिले हैं कि उत्तर-पश्चिम भारत में एक विशाल प्राचीन नदी-प्रणाली विद्यमान थी, जिसे अनेक विद्वान वैदिक सरस्वती से जोड़कर देखते हैं। यद्यपि इसके प्रवाह-पथ और इतिहास पर अभी भी शोध जारी

है, फिर भी यह विषय भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व का अत्यंत महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र बना हुआ है।

इस प्रकार सरस्वती नदी केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के विकास की एक ऐसी आधारशिला है, जिसने ज्ञान, धर्म, संस्कृति और सामाजिक जीवन को दिशा प्रदान की। कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि का गौरव भी इसी नदी की ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक परंपरा से जुड़ा हुआ है। अतः सरस्वती नदी का अध्ययन केवल एक नदी का अध्ययन नहीं, बल्कि भारत की वैदिक आत्मा को समझने का प्रयास है।

भाग-2 : ऋग्वेद में सरस्वती नदी, 'नदीतमा' की उपाधि एवं ब्रह्मवर्त की अवधारणा

सरस्वती नदी का सर्वाधिक प्राचीन और प्रामाणिक उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में सरस्वती का वर्णन केवल एक नदी के रूप में नहीं, बल्कि जीवन, ज्ञान, समृद्धि और दिव्य चेतना के स्रोत के रूप में किया गया है। वैदिक ऋषियों ने सरस्वती को ऐसी महान नदी माना, जिसने मानव जीवन, कृषि, शिक्षा, यज्ञ और आध्यात्मिक साधना को पोषित किया। इसीलिए ऋग्वेद में उसे "अम्बितमे, नदीतमे, देवितमे सरस्वति" कहकर संबोधित किया गया है। इसका अर्थ है – हे सरस्वती! आप माताओं में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ और देवियों में श्रेष्ठ हैं।

यह उपाधि स्पष्ट करती है कि वैदिक समाज में सरस्वती का स्थान केवल एक प्राकृतिक जलधारा का नहीं था, बल्कि वह संपूर्ण सभ्यता की जीवनरेखा थी। नदी के दोनों तटों पर कृषि सम्पन्न थी,

पशुपालन विकसित था और ऋषि-मुनियों के आश्रम ज्ञान एवं तपस्या के प्रमुख केंद्र बने हुए थे। यहीं से वैदिक मंत्रों का उच्चारण हुआ और भारतीय संस्कृति की आधारशिला मजबूत हुई।

ऋग्वेद के नदी सूक्त (मण्डल 10, सूक्त 75) में सरस्वती सहित अनेक नदियों का उल्लेख मिलता है। इसमें सरस्वती को प्रमुख स्थान दिया गया है। अन्य सूक्तों में उसके तीव्र प्रवाह, विशाल स्वरूप और समुद्र की ओर बहने का भी वर्णन मिलता है। इन वर्णनों के आधार पर अनेक इतिहासकारों और भूगोलविदों का मत है कि वैदिक काल में सरस्वती एक विशाल और जलसमृद्ध नदी रही होगी।

मनुस्मृति में सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य स्थित प्रदेश को 'ब्रह्मवर्त' कहा गया है। मनुस्मृति के अनुसार यही वह पवित्र भूमि थी, जहाँ श्रेष्ठ आचार, वैदिक धर्म और सामाजिक मर्यादाओं का विकास हुआ। भारतीय परंपरा में ब्रह्मवर्त को धर्म और संस्कृति का उद्गम क्षेत्र माना गया है। अधिकांश विद्वान वर्तमान हरियाणा, विशेषकर कुरुक्षेत्र क्षेत्र को, इस प्राचीन ब्रह्मवर्त का महत्वपूर्ण भाग मानते हैं।

ब्रह्मवर्त केवल एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं था, बल्कि वह वैदिक संस्कृति की प्रयोगशाला था। यहीं ऋषि-मुनियों ने यज्ञ किए, वेदों का अध्ययन और अध्यापन किया तथा मानव जीवन के लिए धर्म, नीति और संस्कारों के सिद्धांत स्थापित किए। इसी कारण कुरुक्षेत्र को आगे चलकर 'धर्मक्षेत्र' की उपाधि भी प्राप्त हुई।

सरस्वती नदी के तट पर अनेक प्रसिद्ध ऋषियों – जैसे वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व, भारद्वाज और अन्य वैदिक मनीषियों – के आश्रम होने का उल्लेख विभिन्न ग्रंथों और परंपराओं में मिलता है। यद्यपि प्रत्येक आश्रम का सटीक भौगोलिक स्थान आज उपलब्ध नहीं है, फिर भी यह निर्विवाद है कि सरस्वती तट वैदिक शिक्षा और आध्यात्मिक साधना का प्रमुख केंद्र था।

कुरुक्षेत्र की 48 कोस तीर्थ-परंपरा में आज भी अनेक तीर्थ ऐसे हैं, जिनका संबंध सरस्वती नदी से जोड़ा जाता है। इन तीर्थों की धार्मिक मान्यता इस बात का प्रमाण है कि सरस्वती केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भारतीय जनमानस की आस्था में आज भी जीवित है।

इस प्रकार ऋग्वेद, मनुस्मृति और अन्य प्राचीन ग्रंथों का समन्वित अध्ययन यह संकेत देता है कि सरस्वती नदी ने भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ज्ञान, धर्म, संस्कृति और सामाजिक जीवन के विकास में उसका योगदान इतना व्यापक था कि उसे वैदिक युग की वास्तविक जीवन रेखा कहा जाना पूर्णतः सार्थक प्रतीत होता है।

भाग-3 : सरस्वती नदी के तट पर वैदिक ऋषियों के आश्रम, वेदों की रचना एवं यज्ञ परंपरा

सरस्वती नदी केवल एक विशाल जलधारा नहीं थी, बल्कि वह वैदिक ज्ञान, आध्यात्मिक साधना और भारतीय संस्कृति का महान केंद्र भी थी। प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार सरस्वती के पवित्र तटों पर अनेक ऋषि-मुनियों ने अपने आश्रम स्थापित किए, जहाँ वेदों का

अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, तपस्या तथा आध्यात्मिक अनुसंधान निरंतर चलता था। इसी कारण सरस्वती को भारतीय सभ्यता की "ज्ञानगंगा" भी कहा जाता है।

वैदिक काल में आश्रम केवल निवास-स्थान नहीं थे। वे उस समय के विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थान और आध्यात्मिक केंद्र थे। यहाँ दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। गुरु अपने शिष्यों को वेद, वेदांग, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा नैतिक जीवन का प्रशिक्षण देते थे। इस प्रकार सरस्वती के तट पर विकसित आश्रमों ने भारतीय ज्ञान-परंपरा को स्थायी आधार प्रदान किया।

ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना सरस्वती क्षेत्र में हुई मानी जाती है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति, अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र, वरुण तथा सरस्वती की उपासना करते हुए जिन मंत्रों का दर्शन किया, वे आगे चलकर मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहर बने। वैदिक परंपरा में वेदों को मानव-रचित ग्रंथ नहीं, बल्कि ऋषियों द्वारा अनुभूत दिव्य ज्ञान माना गया है।

सरस्वती के तट पर यज्ञ परंपरा विशेष रूप से विकसित हुई। यज्ञ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं था, बल्कि सामाजिक एकता, पर्यावरण संरक्षण, कृषि समृद्धि और लोककल्याण का भी माध्यम था। यज्ञों के माध्यम से समाज में अनुशासन, सहयोग और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती थी। यही कारण है कि वैदिक साहित्य में सरस्वती क्षेत्र को यज्ञभूमि के रूप में भी विशेष महत्व प्राप्त है।

कुरुक्षेत्र का संबंध भी इसी महान यज्ञ परंपरा से जुड़ा हुआ है। अनेक पुराणों तथा कुरुक्षेत्र माहात्म्य में उल्लेख मिलता है कि इस क्षेत्र में ऋषियों ने असंख्य यज्ञ सम्पन्न किए। आगे चलकर राजा कुरु ने भी इसी भूमि को धर्म, तप और कर्म की भूमि के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस कारण कुरुक्षेत्र को "धर्मक्षेत्र" की उपाधि प्राप्त हुई।

सरस्वती नदी के तट पर स्थित अनेक तीर्थ आज भी इस वैदिक परंपरा के जीवंत प्रतीक हैं। ज्योतिसर, ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, पृथूदक (पिहोवा), कपालमोचन, आदिबद्री तथा 48 कोस क्षेत्र के अनेक अन्य तीर्थ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरस्वती की सांस्कृतिक धारा से जुड़े हुए माने जाते हैं। इन तीर्थों में आज भी यज्ञ, हवन, श्राद्ध, दान और धार्मिक अनुष्ठानों की परंपरा निरंतर चल रही है, जो हजारों वर्षों की सांस्कृतिक निरंतरता का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

आधुनिक इतिहासकारों और पुरातत्त्वविदों का भी मत है कि उत्तर-पश्चिम भारत में विकसित प्रारम्भिक सभ्यताओं का गहरा संबंध किसी विशाल नदी-प्रणाली से रहा होगा। अनेक पुरातात्त्विक स्थलों की खोज से यह संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में प्राचीन मानव बस्तियाँ, कृषि और व्यापार का पर्याप्त विकास हुआ था। यद्यपि इन स्थलों और वैदिक सरस्वती के प्रत्यक्ष संबंध पर अभी भी शोध जारी है, फिर भी इस विषय ने भारतीय इतिहास के अध्ययन को नई दिशा दी है।

लेखक का मत है कि सरस्वती नदी का महत्व केवल इसलिए नहीं है कि वह एक प्राचीन नदी थी, बल्कि इसलिए भी है कि उसने भारत को ज्ञान, संस्कृति, शिक्षा, यज्ञ और आध्यात्मिक चेतना की ऐसी विरासत दी, जिसने हजारों वर्षों तक भारतीय समाज का मार्गदर्शन

किया। आज भी जब हम सरस्वती का स्मरण करते हैं, तो केवल एक लुप्त नदी नहीं, बल्कि उस महान वैदिक संस्कृति का स्मरण करते हैं, जिसने सम्पूर्ण मानवता को ज्ञान का प्रकाश प्रदान किया।

इस प्रकार सरस्वती नदी के तट पर विकसित आश्रम, वेदों की रचना और यज्ञ परंपरा भारतीय सभ्यता के स्वर्णिम अध्याय हैं। इन्हीं के कारण सरस्वती नदी को वैदिक युग की वास्तविक जीवन रेखा कहा जाता है।

भाग-4 : कुरुक्षेत्र, राजा कुरु और सरस्वती नदी का संबंध तथा आधुनिक वैज्ञानिक शोध

सरस्वती नदी और कुरुक्षेत्र का संबंध भारतीय इतिहास, धर्म और संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण अध्यायों में से एक है। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार कुरुक्षेत्र की पवित्रता केवल महाभारत युद्ध के कारण नहीं है, बल्कि इसका आधार उस वैदिक संस्कृति में निहित है, जिसका विकास सरस्वती नदी के तट पर हुआ। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र, ब्रह्मक्षेत्र और यज्ञभूमि जैसे गौरवपूर्ण नाम प्राप्त हुए।

पुराणों तथा महाभारत के वर्णनों के अनुसार राजा कुरु ने इसी क्षेत्र में तप, सत्य, दया, क्षमा, दान और धर्म के बीज बोने का प्रतीकात्मक संकल्प लिया। कहा जाता है कि उन्होंने स्वर्ण हल से इस भूमि को जोता और इसे धर्म की भूमि के रूप में प्रतिष्ठित किया। धार्मिक परंपरा के अनुसार भगवान इन्द्र ने राजा कुरु से प्रसन्न होकर वरदान दिया कि इस भूमि पर धर्मपूर्वक जीवन जीने वाले तथा यहाँ तप, यज्ञ और पुण्य कर्म करने वाले लोगों को विशेष आध्यात्मिक

फल प्राप्त होगा। यही परंपरा आगे चलकर कुरुक्षेत्र की पवित्र पहचान का आधार बनी।

महाभारत काल में सरस्वती नदी का महत्व और भी बढ़ जाता है। यद्यपि युद्ध का विस्तृत वर्णन कुरुक्षेत्र की भूमि पर केंद्रित है, परंतु अनेक तीर्थ, आश्रम और धार्मिक स्थल सरस्वती नदी अथवा उसकी प्राचीन धाराओं से जुड़े हुए बताए गए हैं। युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण, पाण्डवों और अनेक ऋषियों द्वारा इस क्षेत्र के पवित्र तीर्थों का उल्लेख भारतीय परंपरा में मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि सरस्वती केवल एक नदी नहीं थी, बल्कि पूरे कुरुक्षेत्र क्षेत्र की सांस्कृतिक धुरी थी।

48 कोस कुरुक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले अनेक तीर्थ – जैसे ज्योतिसर, सन्निहित सरोवर, ब्रह्मसरोवर, पिहोवा (पृथूदक), आदिबद्री तथा अन्य सरस्वती-संबद्ध स्थल – आज भी उस प्राचीन परंपरा की स्मृति को जीवित रखते हैं। श्रद्धालुओं का विश्वास है कि सरस्वती की दिव्य धारा इन तीर्थों के आध्यात्मिक महत्व का आधार रही है।

आधुनिक काल में सरस्वती नदी केवल धार्मिक विमर्श का विषय नहीं रही, बल्कि पुरातत्त्व, भूगर्भशास्त्र, जलविज्ञान और उपग्रह विज्ञान का भी महत्वपूर्ण शोध-विषय बन चुकी है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO), राष्ट्रीय सुदूर संवेदन केंद्र (NRSC), भूवैज्ञानिक संस्थानों तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा उपग्रह चित्रों, भूजल सर्वेक्षणों और अवसादी अध्ययनों के आधार पर उत्तर-पश्चिम भारत में एक प्राचीन नदी-प्रणाली के प्रमाण खोजे गए हैं। अनेक वैज्ञानिकों का मत है कि यह प्राचीन जलधारा वैदिक साहित्य में वर्णित सरस्वती नदी से संबंधित हो सकती है।

हालाँकि यह भी उल्लेखनीय है कि सरस्वती नदी के सटीक प्रवाह-पथ, उद्गम और लुप्त होने के कारणों पर विद्वानों में अभी भी मतभेद हैं। कुछ शोध इसे हिमालय से निकलने वाली विशाल नदी मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान इसे अनेक नदियों और मौसमी जलधाराओं से बनी नदी-प्रणाली के रूप में देखते हैं। इसलिए एक निष्पक्ष शोधकर्ता के रूप में इन विभिन्न मतों का सम्मान करना आवश्यक है।

हरियाणा सरकार द्वारा आदिबद्री सरस्वती उद्गम क्षेत्र के विकास, सरस्वती धरोहर संरक्षण तथा नदी से जुड़े तीर्थों के संवर्धन के लिए विभिन्न योजनाएँ संचालित की गई हैं। साथ ही, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने भी 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा में सरस्वती से जुड़े स्थलों को विशेष महत्व दिया है। इन प्रयासों का उद्देश्य केवल धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देना नहीं, बल्कि भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण भी है।

लेखक के मत में सरस्वती नदी का अध्ययन केवल अतीत की खोज नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की जड़ों को समझने का प्रयास है। जब धार्मिक ग्रंथों, पुरातात्त्विक खोजों, वैज्ञानिक अनुसंधानों और स्थानीय परंपराओं का समन्वित अध्ययन किया जाता है, तब सरस्वती नदी भारतीय इतिहास के एक अत्यंत महत्वपूर्ण अध्याय के रूप में हमारे सामने उभरकर आती है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र और सरस्वती का संबंध केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और ऐतिहासिक है। यह संबंध आज भी भारतीय जनमानस में श्रद्धा, शोध और राष्ट्रीय गौरव का विषय बना हुआ है।

भाग-5 : लेखक का अनुभव, निष्कर्ष एवं सरस्वती की अमर सांस्कृतिक धारा

सरस्वती नदी केवल इतिहास और पुराणों के पृष्ठों तक सीमित नहीं है, बल्कि आज भी उसकी स्मृतियाँ कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि पर स्थित तीर्थों में जीवित हैं। यद्यपि समय के साथ नदी का दृश्य स्वरूप लुप्त हो गया, किन्तु उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक धारा आज भी निरंतर प्रवाहित हो रही है। ज्योतिसर, ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, पिहोवा (पृथूदक), नरकतारी (बाणगंगा क्षेत्र), आदिबद्री तथा 48 कोस कुरुक्षेत्र के अनेक तीर्थ सरस्वती की इसी अमर विरासत के प्रतीक हैं।

लेखक को अपने जीवन में इन पवित्र स्थलों की यात्रा अनेक बार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रत्येक यात्रा में एक नया अनुभव, नई प्रेरणा और नई ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त हुई। कभी ब्रह्मसरोवर के शांत जल ने आत्मिक शांति प्रदान की, कभी ज्योतिसर में श्रीमद्भगवद्गीता के दिव्य संदेश का स्मरण हुआ, कभी पिहोवा के प्राचीन तीर्थ ने वैदिक परंपरा का बोध कराया, तो कभी नरकतारी और अन्य तीर्थों ने महाभारत की घटनाओं को सजीव कर दिया।

इस शोध-यात्रा के दौरान लेखक ने केवल धार्मिक दर्शन ही नहीं किए, बल्कि स्थानीय लोगों से संवाद किया, मंदिरों, सरोवरों और प्राचीन स्थलों का प्रत्यक्ष अवलोकन किया तथा उपलब्ध ऐतिहासिक और सरकारी स्रोतों का भी अध्ययन किया। इस प्रत्यक्ष अध्ययन ने यह विश्वास और दृढ़ किया कि कुरुक्षेत्र की आत्मा को समझना हो तो सरस्वती की सांस्कृतिक धारा को समझना अनिवार्य है।

सरस्वती नदी भारतीय सभ्यता की वह जीवनरेखा है, जिसने वैदिक ज्ञान, ऋषि परंपरा, यज्ञ संस्कृति, शिक्षा, कृषि और सामाजिक जीवन को दिशा प्रदान की। यही कारण है कि हजारों वर्ष बीत जाने के बाद भी उसका नाम भारतीय जनमानस में श्रद्धा और सम्मान के साथ लिया जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक शोध, पुरातात्त्विक अध्ययन और उपग्रह चित्रों ने भी इस विषय में नई संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिससे सरस्वती पर शोध निरंतर आगे बढ़ रहा है।

लेखक का मानना है कि सरस्वती नदी का संरक्षण केवल एक नदी की खोज का विषय नहीं है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक स्मृति और वैदिक विरासत के संरक्षण का भी प्रश्न है। यदि आने वाली पीढ़ियों को अपनी जड़ों से जोड़ना है, तो सरस्वती से जुड़े तीर्थों, पुरातात्त्विक स्थलों और ऐतिहासिक परंपराओं का संरक्षण और वैज्ञानिक अध्ययन निरंतर जारी रहना चाहिए।

इस अध्याय का उद्देश्य किसी एक मत को अंतिम सत्य घोषित करना नहीं, बल्कि वैदिक साहित्य, पुराणों, महाभारत, आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों, सरकारी प्रकाशनों तथा लेखक के प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण के आधार पर सरस्वती नदी के बहुआयामी स्वरूप को पाठकों के सामने प्रस्तुत करना है। यही एक शोधकर्ता का दायित्व भी है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सरस्वती नदी भले ही आज प्रत्यक्ष रूप से दिखाई न देती हो, किन्तु उसकी ज्ञानधारा आज भी भारतीय संस्कृति, साहित्य, धर्म और राष्ट्रीय चेतना में उसी प्रकार प्रवाहित है, जैसे वैदिक युग में प्रवाहित होती थी। यही सरस्वती की अमरता है और यही उसकी सबसे बड़ी पहचान।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

प्रमुख संदर्भ

• ऋग्वेद (विशेषतः नदी सूक्त)

• मनुस्मृति

• महाभारत

• वामन पुराण

• कुरुक्षेत्र माहात्म्य

• हरियाणा पर्यटन विभाग — 48 कोस कुरुक्षेत्र : एक सांस्कृतिक यात्रा

• भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) एवं राष्ट्रीय सुदूर संवेदन केंद्र (NRSC) द्वारा सरस्वती नदी पर उपलब्ध शोध

• लेखक का प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण एवं शोध (2026)

अध्याय–13

48 कोस कुरुक्षेत्र : सीमा, भूगोल और सांस्कृतिक स्वरूप

भाग-1 : 48 कोस कुरुक्षेत्र की अवधारणा, सीमा और ऐतिहासिक विकास

भारत की सांस्कृतिक विरासत में 48 कोस कुरुक्षेत्र का स्थान अद्वितीय है। यह केवल एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं, बल्कि वैदिक संस्कृति, महाभारत, पुराणों, ऋषि-परंपरा और सनातन धर्म की हजारों वर्षों पुरानी जीवंत धरोहर है। इसी पावन भूमि पर वैदिक ऋषियों ने यज्ञ किए, अनेक आश्रम स्थापित हुए, महाभारत का महान युद्ध हुआ और भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का अमर उपदेश प्रदान किया।

प्राचीन भारतीय माप-पद्धति में 'कोस' दूरी की एक पारंपरिक इकाई थी। सामान्यतः एक कोस लगभग तीन से साढ़े तीन किलोमीटर के बीच माना जाता है। इस प्रकार 48 कोस का क्षेत्र लगभग 150 किलोमीटर से अधिक के विशाल सांस्कृतिक परिक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। यह क्षेत्र केवल वर्तमान कुरुक्षेत्र जिला तक सीमित नहीं है, बल्कि कुरुक्षेत्र, कैथल, करनाल, पानीपत और जींद सहित हरियाणा के अनेक जिलों में फैले पवित्र तीर्थों को समाहित करता है।

पुराणों और महाभारत में इस क्षेत्र को धर्मक्षेत्र, ब्रह्मक्षेत्र, समन्तपंचक और कुरुक्षेत्र जैसे नामों से संबोधित किया गया है। वामन पुराण, महाभारत, नारदीय पुराण तथा कुरुक्षेत्र माहात्म्य में इस क्षेत्र की महिमा का विस्तार से वर्णन मिलता है। धार्मिक मान्यता है कि इस

भूमि पर किया गया स्नान, दान, जप, तप और यज्ञ विशेष पुण्यदायी माना जाता है।

आधुनिक समय में कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (Kurukshetra Development Board – KDB) ने इस प्राचीन विरासत के संरक्षण, विकास और दस्तावेजीकरण का महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रारंभिक सर्वेक्षणों में 48 कोस क्षेत्र के 134 तीर्थों का विवरण उपलब्ध था, किंतु विस्तृत शोध एवं नवीन सर्वेक्षणों के उपरांत अब 182 तीर्थों का आधिकारिक अभिलेखीकरण किया जा चुका है। साथ ही, बोर्ड द्वारा नए तीर्थों की पहचान और उनके ऐतिहासिक अध्ययन का कार्य आज भी निरंतर जारी है।

इन 182 तीर्थों को विभिन्न श्रेणियों – देव तीर्थ, ऋषि तीर्थ, नित्य तीर्थ, महाभारत-संबद्ध तीर्थ, शक्ति तीर्थ तथा नैमित्तिक तीर्थ – में वर्गीकृत किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र केवल एक धार्मिक परिक्रमा नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, भूगोल, संस्कृति और आस्था का विशाल ज्ञानकोष है।

लेखक के लिए यह अध्याय केवल पुस्तकीय अध्ययन का परिणाम नहीं है। इस शोध-ग्रंथ की तैयारी के दौरान लेखक ने 48 कोस क्षेत्र के अनेक प्रमुख तीर्थों का बार-बार प्रत्यक्ष भ्रमण किया, स्थानीय परंपराओं का अध्ययन किया, पुरातात्त्विक स्थलों का अवलोकन किया तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित नवीन 48 कोस कुरुक्षेत्र तीर्थ विवरणिका सहित सरकारी स्रोतों का गहन अध्ययन किया। इस प्रत्यक्ष अनुभव ने यह स्पष्ट किया कि कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक सीमा प्रशासनिक सीमाओं से कहीं अधिक व्यापक और प्राचीन है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

इस अध्याय में 48 कोस कुरुक्षेत्र की भौगोलिक सीमा, प्रशासनिक विस्तार, तीर्थों का वर्गीकरण, सांस्कृतिक स्वरूप तथा वर्तमान संरक्षण कार्यों का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा, जिससे पाठक इस महान तीर्थ-परिक्षेत्र की वास्तविक व्यापकता और महत्व को समझ सकें।

भाग-2 : 48 कोस कुरुक्षेत्र के 182 तीर्थों का विस्तृत स्वरूप

48 कोस कुरुक्षेत्र केवल एक नगर अथवा जिला नहीं, बल्कि एक विशाल सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक क्षेत्र है। समय के साथ कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा किए गए नवीन सर्वेक्षणों, पुराणों, महाभारत, स्थानीय परंपराओं तथा पुरातात्त्विक अध्ययनों के आधार पर इस क्षेत्र में अब 182 तीर्थों की पहचान की जा चुकी है। इन तीर्थों का संरक्षण, विकास तथा प्रचार-प्रसार निरंतर जारी है।

इन 182 तीर्थों का विस्तार वर्तमान कुरुक्षेत्र, करनाल, कैथल, जींद और पानीपत जिलों तक फैला हुआ है। प्रत्येक तीर्थ का अपना अलग इतिहास, धार्मिक महत्व तथा सांस्कृतिक संदेश है। कहीं महाभारत की घटनाओं की स्मृति सुरक्षित है, कहीं वैदिक ऋषियों की तपोभूमि, कहीं देवताओं की आराधना का स्थल, तो कहीं पितृ-तर्पण, यज्ञ और सनातन संस्कारों की परंपरा आज भी जीवित है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इन तीर्थों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया है, जैसे:

• देव तीर्थ

• ऋषि तीर्थ

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

• नित्य तीर्थ

• महाभारत संबंधी तीर्थ

• नैमित्तिक तीर्थ

यह वर्गीकरण तीर्थों के धार्मिक स्वरूप और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

सबसे अधिक तीर्थ कुरुक्षेत्र जिले में स्थित हैं, जहाँ ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, भद्रकाली शक्तिपीठ, स्थानेश्वर महादेव, भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर, कर्ण का टीला, चक्रव्यूह क्षेत्र तथा अनेक अन्य प्राचीन स्थल विद्यमान हैं।

करनाल जिले में सीतामाई, वेदवती, पराशर, जमदग्नि, पृथ्वी तीर्थ, ब्रह्म तीर्थ, सूर्य तीर्थ सहित अनेक प्राचीन धार्मिक स्थल स्थित हैं, जिनका उल्लेख स्थानीय परंपराओं तथा प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

कैथल जिले में पिहोवा (पृथूदक), कपिल मुनि, सरस्वती तट तथा अनेक प्राचीन यज्ञस्थलों का विशेष महत्व है। पिहोवा आज भी सम्पूर्ण भारत में पितृ-श्राद्ध और तर्पण के प्रमुख तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है।

जींद और पानीपत जिलों में भी अनेक ऋषि-आश्रम, देवस्थल तथा प्राचीन तीर्थ इस सांस्कृतिक परिधि का अभिन्न अंग हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि 48 कोस कुरुक्षेत्र किसी एक नगर तक सीमित न होकर एक व्यापक आध्यात्मिक सभ्यता का जीवंत स्वरूप है।

लेखक की शोध-यात्रा के दौरान इन तीर्थों का भ्रमण करते समय यह अनुभव हुआ कि प्रत्येक स्थान अपने भीतर इतिहास की एक नई

कथा समेटे हुए है। अनेक स्थान आज भी शांत ग्रामों के बीच स्थित हैं, जबकि कुछ तीर्थ आधुनिक विकास के साथ भव्य स्वरूप धारण कर चुके हैं। किंतु सभी स्थानों में सनातन परंपरा की निरंतरता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

इसी कारण 48 कोस कुरुक्षेत्र को केवल तीर्थों का समूह नहीं, बल्कि भारत की वैदिक, पौराणिक, महाभारतीय और सांस्कृतिक चेतना का जीवंत मानचित्र कहा जा सकता है।

भाग-3 : 48 कोस कुरुक्षेत्र का प्रशासनिक विस्तार एवं सांस्कृतिक एकात्मता

48 कोस कुरुक्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी पहचान किसी एक नगर या जिले तक सीमित नहीं है। यह एक ऐसा सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसकी सीमाएँ वर्तमान प्रशासनिक सीमाओं से कहीं अधिक व्यापक हैं। आज यह क्षेत्र मुख्यतः कुरुक्षेत्र, करनाल, कैथल, जींद तथा पानीपत जिलों में फैला हुआ है, जबकि इसके सांस्कृतिक प्रभाव हरियाणा के अन्य भागों तथा पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक भी दिखाई देते हैं।

प्राचीन काल में 48 कोस कुरुक्षेत्र की सीमा का निर्धारण आधुनिक नक्शों के आधार पर नहीं, बल्कि नदियों, वनों, आश्रमों, यज्ञस्थलों और तीर्थों के आधार पर किया जाता था। यही कारण है कि पुराणों और महाभारत में वर्णित अनेक स्थान आज विभिन्न जिलों में स्थित होने पर भी एक ही धार्मिक परंपरा से जुड़े हुए हैं।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा किए गए नवीन सर्वेक्षण में 48 कोस क्षेत्र के 182 तीर्थों का व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह

केवल तीर्थों की सूची नहीं, बल्कि सनातन संस्कृति की निरंतरता का प्रमाण है। प्रत्येक तीर्थ किसी न किसी धार्मिक, ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक घटना का साक्षी है।

इस सम्पूर्ण क्षेत्र में यात्रा करते समय स्पष्ट अनुभव होता है कि यहाँ की संस्कृति में अद्भुत एकरूपता विद्यमान है। गाँव बदल जाते हैं, प्रशासनिक जिले बदल जाते हैं, किन्तु तीर्थों की परंपरा, लोक-आस्था, धार्मिक अनुष्ठान, मेले, सरोवर, प्राचीन मंदिर तथा संत-महात्माओं की स्मृतियाँ एक ही सांस्कृतिक सूत्र में बँधी हुई दिखाई देती हैं।

लेखक की शोध-यात्रा के दौरान यह पाया गया कि अनेक तीर्थ आज भी ग्रामीण परिवेश में सुरक्षित हैं। कहीं केवल एक प्राचीन सरोवर बचा है, कहीं पुरातात्त्विक टीला, कहीं मंदिर, तो कहीं स्थानीय जनश्रुतियाँ उस स्थान की पहचान को जीवित रखे हुए हैं। दूसरी ओर ब्रह्मसरोवर, ज्योतिसर, सन्निहित सरोवर, पिहोवा और स्थानेश्वर जैसे प्रमुख तीर्थ आधुनिक सुविधाओं के साथ विकसित किए जा चुके हैं, जहाँ प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु पहुँचते हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की यही विशेषता इसे भारत के अन्य तीर्थ क्षेत्रों से अलग बनाती है। यहाँ धर्म, इतिहास, पुरातत्त्व, भूगोल, लोकजीवन और सांस्कृतिक परंपराएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। यही कारण है कि यह क्षेत्र केवल श्रद्धा का केंद्र नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के अध्ययन की एक विशाल खुली प्रयोगशाला भी है।

आधुनिक समय में कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, हरियाणा सरकार तथा विभिन्न धार्मिक संस्थाओं द्वारा इन तीर्थों

के संरक्षण और विकास का कार्य निरंतर किया जा रहा है। इससे आने वाली पीढ़ियों के लिए इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने का मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

निष्कर्ष

48 कोस कुरुक्षेत्र केवल एक भौगोलिक परिधि नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, वैदिक संस्कृति, महाभारत की परंपरा और सनातन आस्था का जीवंत केंद्र है। यहाँ स्थित 182 तीर्थ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक निरंतरता के साक्षी हैं। आज भी यह भूमि श्रद्धा, शोध और पर्यटन – तीनों दृष्टियों से समान रूप से महत्वपूर्ण है। आने वाली पीढ़ियों के लिए इन तीर्थों का संरक्षण और प्रामाणिक दस्तावेजीकरण हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है।

अध्याय–14

कुरुक्षेत्र के सरोवर, कुंड और पवित्र जल-परंपरा

भाग-1 : जल, तीर्थ और सनातन संस्कृति का आधार

भारतीय संस्कृति में जल को केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन, पवित्रता और आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक माना गया है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों और महाभारत में जल को सृष्टि का मूल तत्व बताया गया है। इसी कारण भारत की प्राचीन सभ्यताओं का विकास नदियों, सरोवरों और जलाशयों के आसपास हुआ। कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि भी इस परंपरा का एक महान उदाहरण है, जहाँ असंख्य सरोवर, कुंड, तीर्थ और प्राचीन जलाशय आज भी हजारों वर्षों की सांस्कृतिक स्मृतियों को संजोए हुए हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र में स्थित अनेक तीर्थों का संबंध किसी न किसी सरोवर, कुंड, नदी अथवा जलधारा से है। इनमें ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, बाणगंगा, भीष्म कुंड, पिहोवा (पृथूदक), नरकतारी, कपिल मुनि तीर्थ, आदिबद्री तथा अन्य अनेक जल-तीर्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन जलस्थलों का महत्व केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वैदिक परंपरा में जल को शुद्धि, ऊर्जा और जीवन का स्रोत माना गया है। ऋग्वेद में जल को औषधि, शक्ति और कल्याण प्रदान करने वाला बताया गया है। यही कारण है कि यज्ञ, पूजा, श्राद्ध, दान,

स्नान और अन्य धार्मिक संस्कारों में जल का विशेष महत्व है। कुरुक्षेत्र के सरोवर और कुंड इसी प्राचीन परंपरा के जीवंत प्रतीक हैं।

ब्रह्मसरोवर को भारतीय परंपरा में सृष्टि-आरंभ का प्रतीक माना जाता है। धार्मिक मान्यता है कि भगवान ब्रह्मा ने इसी क्षेत्र में सृष्टि-रचना का कार्य प्रारम्भ किया। इसी प्रकार सन्निहित सरोवर को सात पवित्र नदियों का संगम माना जाता है, जबकि पिहोवा (पृथूदक) पितृ-तर्पण और श्राद्ध के लिए प्रसिद्ध है। ज्योतिसर भगवान श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश की स्मृति से जुड़ा हुआ है, और भीष्म कुंड तथा बाणगंगा महाभारत की घटनाओं के अमर प्रतीक हैं।

इन जलस्थलों का महत्व केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है। प्राचीन काल में सरोवर और कुंड जल-संरक्षण, कृषि, पशुपालन तथा सामाजिक जीवन के केंद्र भी थे। अनेक सरोवरों के चारों ओर मंदिर, आश्रम, धर्मशालाएँ और यज्ञस्थल विकसित हुए, जिससे वे सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र बन गए।

आधुनिक समय में हरियाणा सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड तथा अन्य संस्थाओं द्वारा इन सरोवरों और कुंडों के संरक्षण तथा विकास का कार्य किया जा रहा है। घाटों का निर्माण, स्वच्छता, प्रकाश व्यवस्था, वृक्षारोपण और धार्मिक आयोजनों के माध्यम से इन प्राचीन जल-तीर्थों को नई पीढ़ी से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है।

लेखक को भी इन सरोवरों और कुंडों की अनेक बार यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। प्रत्येक स्थल की अपनी अलग ऐतिहासिक स्मृति, धार्मिक परंपरा और सांस्कृतिक पहचान है। कभी ब्रह्मसरोवर

की विशालता मन को विस्मित करती है, कभी सन्निहित सरोवर की आध्यात्मिक शांति, तो कभी भीष्म कुंड और बाणगंगा की महाभारतकालीन स्मृतियाँ मन में श्रद्धा उत्पन्न करती हैं।

इस अध्याय में कुरुक्षेत्र के प्रमुख सरोवरों, कुंडों और जल-तीर्थों का ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक तथा शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा, जिससे पाठक इस महान जल-परंपरा के महत्व को समग्र रूप से समझ सकें।

भाग-2 : ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर और सरस्वती की अमर जल-परंपरा

कुरुक्षेत्र के पवित्र जल-तीर्थों में ब्रह्मसरोवर और सन्निहित सरोवर का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। ये दोनों सरोवर केवल धार्मिक आस्था के केंद्र नहीं हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति, वैदिक परंपरा और महाभारतकालीन विरासत के जीवंत प्रतीक भी हैं। प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु देश-विदेश से यहाँ स्नान, पूजा, दान, श्राद्ध और आध्यात्मिक साधना के लिए आते हैं।

ब्रह्मसरोवर : सृष्टि का प्रतीक

सनातन परंपरा के अनुसार ब्रह्मसरोवर वह पवित्र स्थान है, जहाँ सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना का प्रारम्भ किया। इसी कारण इसका नाम 'ब्रह्मसरोवर' पड़ा। वामन पुराण, महाभारत तथा कुरुक्षेत्र माहात्म्य में इस सरोवर की महिमा का उल्लेख मिलता है। धार्मिक मान्यता है कि सूर्यग्रहण, अमावस्या, गीता जयंती तथा अन्य पुण्य पर्वों पर यहाँ स्नान करने से विशेष आध्यात्मिक फल प्राप्त होता है।

वर्तमान समय में ब्रह्मसरोवर भारत के सबसे विशाल मानव-निर्मित पवित्र सरोवरों में से एक माना जाता है। इसके चारों ओर बने घाट, परिक्रमा मार्ग, मंदिर, यज्ञशालाएँ और सायंकालीन दीपदान का दृश्य श्रद्धालुओं के लिए अत्यंत आकर्षण का केंद्र है। विशेष अवसरों पर हजारों दीपों से प्रकाशित ब्रह्मसरोवर भारतीय संस्कृति की अद्भुत झलक प्रस्तुत करता है।

सन्निहित सरोवर : सात पवित्र नदियों का संगम

ब्रह्मसरोवर से कुछ दूरी पर स्थित सन्निहित सरोवर का धार्मिक महत्व भी अत्यंत विशिष्ट है। सनातन मान्यता के अनुसार प्रत्येक अमावस्या तथा विशेष पर्वों पर गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सिंधु और कावेरी सहित सात पवित्र नदियों का दिव्य संगम यहाँ होता है। इसी कारण इसका नाम 'सन्निहित', अर्थात् एकत्र होने वाला सरोवर, पड़ा।

पौराणिक ग्रंथों में वर्णित है कि इस सरोवर में स्नान, तर्पण और पितृ-श्राद्ध का विशेष महत्व है। श्रद्धालुओं का विश्वास है कि यहाँ श्रद्धापूर्वक किए गए धार्मिक अनुष्ठान पितरों की शांति तथा आत्मिक कल्याण का माध्यम बनते हैं। इसी कारण वर्षभर यहाँ धार्मिक गतिविधियाँ निरंतर चलती रहती हैं।

सरस्वती की अमर जल-परंपरा

ब्रह्मसरोवर और सन्निहित सरोवर, दोनों का संबंध प्राचीन सरस्वती नदी की सांस्कृतिक परंपरा से भी जोड़ा जाता है। यद्यपि सरस्वती का प्रत्यक्ष प्रवाह आज दिखाई नहीं देता, किन्तु कुरुक्षेत्र की धार्मिक परंपराओं में उसकी स्मृति आज भी जीवित है। अनेक विद्वानों का

मत है कि इन सरोवरों की पवित्रता का आधार वही प्राचीन वैदिक परंपरा है, जिसने सरस्वती को ज्ञान, तप और संस्कृति की अधिष्ठात्री नदी के रूप में प्रतिष्ठित किया।

लेखक का अनुभव

लेखक को अपने जीवन में ब्रह्मसरोवर और सन्निहित सरोवर के अनेक बार दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्रत्येक यात्रा में यह अनुभव हुआ कि इन सरोवरों का वातावरण केवल धार्मिक नहीं, बल्कि अत्यंत आध्यात्मिक और सांस्कृतिक भी है। प्रातःकालीन आरती, श्रद्धालुओं की आस्था, यज्ञ की सुगंध, मंदिरों की घंटियाँ और शांत जलराशि मन में अद्भुत शांति का संचार करती हैं।

लेखक के मत में ब्रह्मसरोवर और सन्निहित सरोवर केवल जलाशय नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता की हजारों वर्षों पुरानी स्मृतियों के जीवंत साक्षी हैं। इनका संरक्षण केवल धार्मिक दायित्व नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का भी महत्वपूर्ण कार्य है।

भाग-3 : पिहोवा (पृथूदक), भीष्म कुंड, बाणगंगा, नरकतारी एवं अन्य प्रमुख जल-तीर्थ

कुरुक्षेत्र की 48 कोस तीर्थ-परंपरा केवल ब्रह्मसरोवर और सन्निहित सरोवर तक सीमित नहीं है। इस पावन क्षेत्र में अनेक ऐसे सरोवर, कुंड और जल-तीर्थ हैं, जिनका संबंध महाभारत, वैदिक परंपरा, पितृ-श्राद्ध, ऋषि तपस्या तथा सनातन संस्कृति से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक तीर्थ अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक और धार्मिक पहचान रखता है तथा भारतीय संस्कृति के किसी न किसी महत्वपूर्ण अध्याय का साक्षी है।

पिहोवा (पृथूदक) : पितृ-श्राद्ध का महान तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों में पिहोवा, जिसका प्राचीन नाम पृथूदक है, अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। वामन पुराण, महाभारत तथा कुरुक्षेत्र माहात्म्य में पृथूदक की महिमा का उल्लेख मिलता है। धार्मिक मान्यता है कि यहाँ पितरों का श्राद्ध, तर्पण और पिंडदान करने से उन्हें शांति प्राप्त होती है। यही कारण है कि देश के विभिन्न राज्यों से श्रद्धालु वर्षभर यहाँ अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने आते हैं। सरस्वती नदी की प्राचीन परंपरा से जुड़ा यह तीर्थ आज भी सनातन संस्कारों का एक प्रमुख केंद्र है।

भीष्म कुंड : त्याग और तपस्या का प्रतीक

महाभारत के महान योद्धा भीष्म पितामह का नाम आते ही कुरुक्षेत्र के भीष्म कुंड की स्मृति स्वतः जाग उठती है। परंपरा के अनुसार, जब भीष्म पितामह बाणों की शय्या पर लेटे थे और उन्हें प्यास लगी, तब अर्जुन ने अपने दिव्य बाण से पृथ्वी का भेदन कर जलधारा प्रकट की। वही स्थान आज भीष्म कुंड के नाम से श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। यह तीर्थ त्याग, सत्यनिष्ठा और धर्मपालन की अमर प्रेरणा देता है।

बाणगंगा और नरकतारी

कुरुक्षेत्र के समीप स्थित बाणगंगा और नरकतारी भी महाभारतकालीन परंपराओं से जुड़े महत्वपूर्ण तीर्थ हैं। बाणगंगा का संबंध अर्जुन द्वारा प्रकट की गई जलधारा की लोकपरंपरा से जोड़ा जाता है, जबकि नरकतारी को भीष्म पितामह की शरशय्या से संबंधित क्षेत्र के रूप में सम्मान दिया जाता है। आज भी श्रद्धालु

इन स्थलों पर पहुँचकर महाभारत की घटनाओं का स्मरण करते हैं और धर्म तथा कर्तव्य के आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

अन्य प्रमुख जल-तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र में इसके अतिरिक्त भी अनेक जल-तीर्थ स्थित हैं, जिनमें विभिन्न कुंड, सरोवर, बावड़ियाँ तथा प्राचीन जलाशय सम्मिलित हैं। इनका संबंध ऋषियों की तपस्थली, यज्ञभूमि, देवस्थलों तथा विभिन्न पौराणिक प्रसंगों से है। अनेक स्थानों पर आज भी धार्मिक मेले, स्नान, यज्ञ और सांस्कृतिक आयोजन होते हैं, जो इस क्षेत्र की जीवंत परंपरा को बनाए हुए हैं।

लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव

इस शोध-यात्रा के दौरान लेखक को पिहोवा, भीष्म कुंड, बाणगंगा, नरकतारी तथा अन्य जल-तीर्थों का अनेक बार दर्शन करने का अवसर मिला। प्रत्येक स्थल पर यह अनुभव हुआ कि यहाँ केवल इतिहास नहीं, बल्कि श्रद्धा और लोकस्मृति भी समान रूप से जीवित है। स्थानीय लोगों द्वारा सुनाई जाने वाली परंपराएँ, मंदिरों की प्राचीनता, सरोवरों की शांति और तीर्थयात्रियों की आस्था इन स्थानों को विशिष्ट पहचान प्रदान करती है।

लेखक का मानना है कि इन जल-तीर्थों का महत्व केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति, पर्यावरण और लोकजीवन के अध्ययन की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनका संरक्षण और वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक राष्ट्रीय दायित्व है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र के सरोवर और कुंड केवल जलाशय नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सभ्यता की निरंतर प्रवाहित होती सांस्कृतिक धारा के अमर प्रतीक हैं। आज भी इन पवित्र जल-तीर्थों के तट पर खड़े होकर ऐसा अनुभव होता है, मानो वैदिक ऋषियों की वाणी, महाभारत का शंखनाद और सनातन संस्कृति की दिव्य चेतना अब भी इस भूमि में स्पंदित हो रही हो।

भाग-4 : निष्कर्ष, संरक्षण और लेखक की शोध-यात्रा

कुरुक्षेत्र के सरोवर, कुंड और पवित्र जल-तीर्थ केवल धार्मिक आस्था के केंद्र नहीं हैं, बल्कि वे भारत की वैदिक सभ्यता, महाभारतकालीन इतिहास, पुराणों की परंपरा और सनातन संस्कृति के अमूल्य साक्ष्य भी हैं। इन जलाशयों ने हजारों वर्षों से समाज को केवल जल ही नहीं, बल्कि संस्कृति, संस्कार, अध्यात्म और लोकजीवन का आधार भी प्रदान किया है।

ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, पिहोवा (पृथूदक), भीष्म कुंड, बाणगंगा, नरकतारी, ज्योतिसर तथा 48 कोस क्षेत्र में स्थित अन्य जल-तीर्थ आज भी श्रद्धा, आस्था और सांस्कृतिक चेतना के प्रमुख केंद्र हैं। प्रत्येक तीर्थ अपनी अलग ऐतिहासिक पहचान रखता है, किंतु सभी का मूल उद्देश्य मानव को धर्म, सत्य, सेवा, त्याग और प्रकृति के प्रति सम्मान का संदेश देना है।

लेखक को इस शोध-ग्रंथ के लेखन के दौरान इन प्रमुख जल-तीर्थों की अनेक बार यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ। कई स्थानों पर सूर्योदय के समय सरोवरों का शांत वातावरण, मंदिरों की आरती, वैदिक मंत्रोच्चार और श्रद्धालुओं की आस्था ने यह अनुभव कराया

कि कुरुक्षेत्र केवल इतिहास का विषय नहीं, बल्कि आज भी जीवंत आध्यात्मिक चेतना का केंद्र है। प्रत्येक यात्रा में नई जानकारी, नए ऐतिहासिक तथ्य और स्थानीय परंपराओं से जुड़े अनेक महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त हुए, जिन्होंने इस शोध को अधिक प्रामाणिक बनाने में सहायता की।

आधुनिक समय में जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण, जल प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव के कारण इन प्राचीन जल-धरोहरों के संरक्षण की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हरियाणा सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण तथा स्थानीय धार्मिक संस्थाएँ इन तीर्थों के संरक्षण, सौंदर्यीकरण और विकास के लिए निरंतर कार्य कर रही हैं। घाटों का पुनर्निर्माण, स्वच्छता अभियान, जल संरक्षण, सूचना-पट्टों की स्थापना तथा तीर्थ-परिक्रमा मार्ग का विकास इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास हैं।

लेखक का मानना है कि संरक्षण केवल सरकारी योजनाओं से संभव नहीं है। प्रत्येक श्रद्धालु और नागरिक का भी यह कर्तव्य है कि वह इन सरोवरों और कुंडों की स्वच्छता बनाए रखे, जल को प्रदूषित न करे और इस सांस्कृतिक धरोहर के प्रति सम्मान का भाव रखे। यदि समाज और प्रशासन मिलकर कार्य करें, तो यह अमूल्य विरासत आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुँचाई जा सकती है।

इस अध्याय के लेखन में वैदिक ग्रंथों, महाभारत, पुराणों, कुरुक्षेत्र माहात्म्य, हरियाणा सरकार एवं कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के प्रकाशनों, साथ ही लेखक के प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण और स्थानीय जनश्रुतियों का समन्वित अध्ययन किया गया है। जहाँ ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं,

उन्हें तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है, और जहाँ धार्मिक परंपराएँ हैं, उन्हें उसी रूप में स्पष्ट किया गया है। यही शोध की निष्पक्षता और प्रामाणिकता का आधार है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि कुरुक्षेत्र के सरोवर और कुंड केवल जल के स्रोत नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की जीवित स्मृतियाँ हैं। इनका जल युगों से श्रद्धा, ज्ञान, तप और संस्कृति का संदेश देता आया है। जो भी श्रद्धालु इन तीर्थों के दर्शन करता है, वह केवल एक जलाशय नहीं देखता, बल्कि भारत की हजारों वर्षों पुरानी आध्यात्मिक परंपरा का साक्षात्कार करता है।

प्रमुख संदर्भ

- ऋग्वेद
- महाभारत (वनपर्व, शल्यपर्व, भीष्मपर्व)
- वामन पुराण
- कुरुक्षेत्र माहात्म्य
- हरियाणा पर्यटन विभाग — 48 कोस कुरुक्षेत्र : एक सांस्कृतिक यात्रा
- कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के आधिकारिक प्रकाशन एवं तीर्थ-विवरण
- लेखक का प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण एवं शोध (2026)

खंड-2

48 कोस कुरुक्षेत्र : इतिहास, तीर्थ-परंपरा और सांस्कृतिक विरासत

अध्याय–15

48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों का विस्तृत अध्ययन

भाग-1 : 48 कोस तीर्थ-यात्रा की परंपरा और उसका महत्व

48 कोस कुरुक्षेत्र भारत की प्राचीनतम तीर्थ-परंपराओं में से एक है। यह केवल मंदिरों और पवित्र स्थलों की यात्रा नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, वैदिक संस्कृति, महाभारत, पुराणों और सनातन जीवन-दर्शन की एक जीवंत यात्रा है। इस पवित्र परिक्रमा में श्रद्धालु उन स्थलों के दर्शन करते हैं, जहाँ ऋषियों ने तपस्या की, यज्ञ सम्पन्न हुए, देवताओं की आराधना हुई तथा महाभारत की अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ घटित हुईं।

प्राचीन काल से ही यह मान्यता रही है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की श्रद्धापूर्वक परिक्रमा करने से व्यक्ति केवल धार्मिक पुण्य ही प्राप्त नहीं करता, बल्कि भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत से भी जुड़ता है। इसी कारण विभिन्न राज्यों से श्रद्धालु, संत, शोधकर्ता और इतिहास के विद्यार्थी समय-समय पर इस पवित्र क्षेत्र की यात्रा करते रहे हैं।

वर्तमान समय में कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा इस परंपरा को व्यवस्थित रूप दिया गया है। नवीन सर्वेक्षणों के अनुसार 48 कोस क्षेत्र में 182 तीर्थों का दस्तावेजीकरण किया जा चुका है। इन तीर्थों में देव-तीर्थ, ऋषि-तीर्थ, महाभारत से जुड़े स्थल,

शक्ति-पीठ, सरोवर, कुंड, प्राचीन मंदिर, आश्रम तथा ऐतिहासिक टीले सम्मिलित हैं। इनका संरक्षण और विकास निरंतर जारी है, जिससे यह धरोहर आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुँच सके।

इस शोध-ग्रंथ के लेखन के दौरान लेखक ने भी 48 कोस कुरुक्षेत्र के अधिकांश प्रमुख तीर्थों का प्रत्यक्ष भ्रमण किया। प्रत्येक स्थल पर जाकर स्थानीय परंपराओं, ऐतिहासिक स्रोतों, पुरातात्त्विक अवशेषों और सरकारी अभिलेखों का अध्ययन किया गया। इस कारण इस अध्याय में प्रस्तुत विवरण केवल पुस्तकीय जानकारी पर आधारित नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अवलोकन और शोध का भी परिणाम है।

इस अध्याय में 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों का क्रमवार परिचय प्रस्तुत किया जाएगा। प्रत्येक तीर्थ के अंतर्गत उसके स्थान, पौराणिक महत्व, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वर्तमान स्वरूप तथा लेखक के प्रत्यक्ष अनुभव का उल्लेख किया जाएगा। इससे पाठकों को न केवल तीर्थ का महत्व ज्ञात होगा, बल्कि भविष्य में यात्रा करने पर उन्हें एक प्रामाणिक मार्गदर्शिका भी प्राप्त होगी।

यह अध्याय 48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थ-परंपरा का हृदय है, क्योंकि इसके माध्यम से पाठक उन स्थलों तक पहुँचेंगे, जिन्होंने हजारों वर्षों से भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना को जीवित रखा है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भाग-2 : श्रीकृष्ण संग्रहालय, कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र और ज्योतिसर

48 कोस कुरुक्षेत्र की यात्रा केवल प्राचीन मंदिरों और तीर्थों तक सीमित नहीं है। आधुनिक युग में ऐसे कई संस्थान विकसित किए गए हैं, जो महाभारत, भगवान श्रीकृष्ण, वैदिक संस्कृति तथा भारतीय इतिहास को आधुनिक तकनीक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं। इनमें श्रीकृष्ण संग्रहालय, कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र तथा ज्योतिसर तीर्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन तीनों स्थलों का भ्रमण तीर्थयात्रियों, शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों और पर्यटकों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

श्रीकृष्ण संग्रहालय

श्रीकृष्ण संग्रहालय की स्थापना भगवान श्रीकृष्ण के जीवन, उनके आदर्शों तथा महाभारतकालीन संस्कृति को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से की गई। संग्रहालय में विभिन्न कालों की मूर्तियाँ, चित्रकला, पांडुलिपियों की प्रतिकृतियाँ, सिक्के, शिल्पकृतियाँ तथा श्रीकृष्ण के जीवन से संबंधित अनेक कलात्मक प्रदर्शनियाँ संग्रहीत हैं।

यह संग्रहालय केवल धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं, बल्कि भारतीय कला, इतिहास और पुरातत्त्व के अध्ययन का भी महत्वपूर्ण संस्थान है। यहाँ प्रदर्शित सामग्री से यह समझने में

सहायता मिलती है कि भगवान श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व केवल एक धार्मिक आराध्य तक सीमित नहीं था, बल्कि वे महान दार्शनिक, कूटनीतिज्ञ, समाज-सुधारक और कर्मयोग के प्रवर्तक भी थे।

कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र

कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र आधुनिक तकनीक और भारतीय इतिहास का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करता है। यहाँ महाभारत युद्ध, श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश तथा प्राचीन भारतीय विज्ञान को दृश्य-श्रव्य माध्यमों से आकर्षक ढंग से प्रदर्शित किया गया है।

विशाल गोलाकार पैनोरमा में महाभारत युद्ध के प्रमुख प्रसंगों का चित्रण दर्शकों को उस युग की घटनाओं का सजीव अनुभव कराता है। साथ ही विज्ञान केंद्र में विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धांतों और प्रयोगों को सरल भाषा में समझाया गया है। इस प्रकार यह केंद्र धार्मिक पर्यटन के साथ-साथ शैक्षिक पर्यटन का भी प्रमुख आकर्षण है।

ज्योतिसर : श्रीमद्भगवद्गीता की जन्मस्थली

48 कोस कुरुक्षेत्र के सभी तीर्थों में ज्योतिसर का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। सनातन परंपरा के अनुसार यही वह पवित्र स्थान है, जहाँ महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश दिया

था। गीता का संदेश केवल अर्जुन के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए जीवन-दर्शन का अमूल्य ग्रंथ बन गया।

ज्योतिसर में स्थित प्राचीन अक्षय वट वृक्ष श्रद्धालुओं के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र है। स्थानीय परंपरा इसे गीता उपदेश की स्मृति से जोड़ती है। यहाँ निर्मित रथ, भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रतिमा, सरोवर, मंदिर तथा सायंकालीन ध्वनि एवं प्रकाश कार्यक्रम (Light and Sound Show) इस तीर्थ की महिमा को और भी प्रभावशाली बनाते हैं।

लेखक का अनुभव

इस शोध-यात्रा के दौरान लेखक ने श्रीकृष्ण संग्रहालय, कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र तथा ज्योतिसर का अनेक बार भ्रमण किया। प्रत्येक यात्रा में यह अनुभव हुआ कि यदि कोई व्यक्ति कुरुक्षेत्र के इतिहास और महाभारत को समग्र रूप में समझना चाहता है, तो इन तीनों स्थलों का दर्शन अवश्य करना चाहिए। यहाँ उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री, आधुनिक प्रस्तुति और आध्यात्मिक वातावरण शोधकर्ताओं तथा सामान्य पाठकों – दोनों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

इन स्थलों का भ्रमण यह अनुभव कराता है कि कुरुक्षेत्र केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि आज भी भारतीय संस्कृति, इतिहास और ज्ञान परंपरा का एक जीवंत केंद्र है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भाग-3 : ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, स्थानेश्वर महादेव एवं श्री देवीकूप भद्रकाली शक्तिपीठ

कुरुक्षेत्र नगर के मध्य स्थित ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, स्थानेश्वर महादेव मंदिर और श्री देवीकूप भद्रकाली शक्तिपीठ 48 कोस कुरुक्षेत्र के चार ऐसे प्रमुख तीर्थ हैं, जिनके बिना कुरुक्षेत्र की यात्रा अधूरी मानी जाती है। इन चारों तीर्थों का उल्लेख विभिन्न पुराणों, महाभारत, स्थानीय परंपराओं तथा आधुनिक धार्मिक साहित्य में मिलता है। प्रतिवर्ष देश-विदेश से लाखों श्रद्धालु इन पवित्र स्थलों के दर्शन के लिए पहुँचते हैं।

ब्रह्मसरोवर

ब्रह्मसरोवर को सनातन परंपरा में सृष्टि के प्रारंभ का प्रतीक माना जाता है। धार्मिक मान्यता है कि भगवान ब्रह्मा ने यहीं से सृष्टि-रचना का कार्य प्रारम्भ किया। विशाल सरोवर, पक्के घाट, सुंदर परिक्रमा मार्ग और मध्य में स्थित मंदिर इसकी भव्यता को और अधिक आकर्षक बनाते हैं।

विशेष अवसरों – जैसे सूर्यग्रहण, सोमवती अमावस्या, गीता जयंती और अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव – पर यहाँ लाखों श्रद्धालु स्नान एवं पूजा-अर्चना के लिए एकत्रित होते हैं। सायंकाल दीपदान के समय ब्रह्मसरोवर का दृश्य अत्यंत मनोहारी होता है और भारतीय संस्कृति की दिव्यता का अद्भुत अनुभव कराता है।

सन्निहित सरोवर

ब्रह्मसरोवर से कुछ ही दूरी पर स्थित सन्निहित सरोवर को 48 कोस कुरुक्षेत्र का अत्यंत पवित्र तीर्थ माना जाता है। धार्मिक परंपरा के अनुसार अमावस्या तथा विशेष पर्वों पर सात पवित्र नदियों का दिव्य संगम यहाँ माना जाता है। इसलिए श्रद्धालु यहाँ स्नान, पितृ-तर्पण, श्राद्ध और दान-पुण्य के लिए आते हैं।

सन्निहित सरोवर के चारों ओर अनेक मंदिर, धर्मशालाएँ और धार्मिक संस्थान स्थित हैं, जो इसे कुरुक्षेत्र के प्रमुख आध्यात्मिक केंद्रों में स्थान दिलाते हैं।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर

कुरुक्षेत्र का स्थानेश्वर महादेव मंदिर भगवान शिव के प्राचीनतम मंदिरों में से एक माना जाता है। स्थानीय परंपरा के अनुसार महाभारत युद्ध से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने यहाँ भगवान शिव की आराधना कर विजय का आशीर्वाद प्राप्त किया था। इसी कारण यह मंदिर शैव और वैष्णव – दोनों परंपराओं के श्रद्धालुओं के लिए समान रूप से पूजनीय है।

मंदिर परिसर में स्थित प्राचीन सरोवर भी धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। महाशिवरात्रि और श्रावण मास में यहाँ विशेष धार्मिक आयोजन होते हैं।

श्री देवीकूप भद्रकाली शक्तिपीठ

कुरुक्षेत्र स्थित श्री देवीकूप भद्रकाली शक्तिपीठ भारत के प्राचीन शक्ति-तीर्थों में से एक है। धार्मिक मान्यता है कि माता सती का दाहिना चरण (गुल्फ) यहाँ गिरा था, जिसके कारण इसे शक्तिपीठ का सम्मान प्राप्त है। यह मंदिर शक्ति उपासना का महत्वपूर्ण केंद्र है।

महाभारत की परंपरा के अनुसार युद्ध से पूर्व पाण्डवों ने यहाँ माता भद्रकाली की पूजा कर विजय का आशीर्वाद प्राप्त किया था। आज भी श्रद्धालु अपनी मनोकामना पूर्ण होने पर यहाँ विशेष पूजा-अर्चना तथा भेंट अर्पित करते हैं।

लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव

इस शोध-ग्रंथ की तैयारी के दौरान लेखक ने इन चारों तीर्थों का अनेक बार प्रत्यक्ष भ्रमण किया। प्रत्येक यात्रा में यह अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र की आध्यात्मिक पहचान इन्हीं तीर्थों के माध्यम से सबसे अधिक प्रकट होती है। ब्रहमसरोवर की विशालता, सन्निहित सरोवर की शांति, स्थानेश्वर महादेव की प्राचीनता और भद्रकाली शक्तिपीठ की दिव्य आस्था – ये सभी मिलकर कुरुक्षेत्र को विश्व के महानतम तीर्थों में स्थान दिलाते हैं।

शोधकर्ता की दृष्टि से भी ये चारों तीर्थ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके माध्यम से वैदिक परंपरा, महाभारत, शैव, वैष्णव

और शाक्त उपासना की निरंतरता एक ही सांस्कृतिक क्षेत्र में स्पष्ट दिखाई देती है।

भाग-4 : पिहोवा (पृथूदक), आदिबद्री, भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर एवं अन्य प्रमुख तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र का महत्व केवल कुरुक्षेत्र नगर तक सीमित नहीं है। इस पवित्र परिक्षेत्र में अनेक ऐसे तीर्थ हैं, जो वैदिक काल, महाभारत, पुराणों तथा भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। इनमें पिहोवा (पृथूदक), आदिबद्री, भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर, कर्ण का टीला (मिर्जापुर), नरकतारी, कपिल मुनि तीर्थ, सीतामाई तथा अन्य अनेक तीर्थ अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं।

पिहोवा (पृथूदक)

प्राचीन ग्रंथों में पृथूदक के नाम से प्रसिद्ध पिहोवा भारत के प्रमुख पितृ-तीर्थों में गिना जाता है। धार्मिक मान्यता है कि यहाँ पितरों का श्राद्ध, तर्पण और पिंडदान करने से उन्हें शांति प्राप्त होती है। सरस्वती नदी की प्राचीन धारा के तट पर विकसित यह तीर्थ आज भी देशभर के श्रद्धालुओं की आस्था का प्रमुख केंद्र है। यहाँ प्राप्त अभिलेख और प्राचीन शिलालेख इतिहासकारों के लिए भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

आदिबद्री

यमुनानगर जनपद के शिवालिक क्षेत्र में स्थित आदिबद्री को सरस्वती नदी के उद्गम क्षेत्र से जोड़कर देखा जाता है। यहाँ प्राचीन मंदिर, पुरातात्त्विक अवशेष और प्राकृतिक वातावरण एक साथ दिखाई देते हैं। हरियाणा सरकार द्वारा इस क्षेत्र के संरक्षण एवं विकास के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं। सरस्वती सभ्यता के अध्ययन में आदिबद्री का महत्वपूर्ण स्थान है।

भीष्म कुंड

दयालपुर गाँव स्थित भीष्म कुंड महाभारत की स्मृतियों से जुड़ा अत्यंत पवित्र तीर्थ है। परंपरा के अनुसार, जब भीष्म पितामह शरशय्या पर थे और उन्हें प्यास लगी, तब अर्जुन ने अपने बाण से पृथ्वी का भेदन कर जलधारा प्रकट की। वही स्थान आज भी श्रद्धा के साथ भीष्म कुंड के रूप में पूजित है। यह तीर्थ त्याग, सत्य और धर्मनिष्ठा का प्रेरणास्रोत माना जाता है।

बाणगंगा

बाणगंगा भी दयालपुर क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण तीर्थ है। लोकपरंपरा में इसका संबंध अर्जुन के बाण से प्रकट हुई जलधारा से जोड़ा जाता है। शांत वातावरण और धार्मिक महत्व के कारण यह तीर्थ श्रद्धालुओं तथा शोधकर्ताओं दोनों के लिए आकर्षण का केंद्र है।

अभिमन्युपुर

कुरुक्षेत्र के निकट स्थित अभिमन्युपुर महाभारत के वीर योद्धा अभिमन्यु की स्मृतियों से जुड़ा हुआ है। मान्यता है कि चक्रव्यूह से संबंधित घटनाओं का संबंध इस क्षेत्र से रहा है। आज यहाँ विकसित स्मारक और स्थानीय परंपराएँ महाभारत की उस अमर गाथा की याद दिलाती हैं, जिसमें युवा अभिमन्यु ने अद्वितीय वीरता और बलिदान का परिचय दिया।

कर्ण का टीला (मिर्जापुर)

मिर्जापुर स्थित कर्ण का टीला महाभारत के महान दानवीर कर्ण से जुड़ी परंपराओं के कारण प्रसिद्ध है। पुरातात्त्विक दृष्टि से भी यह क्षेत्र महत्वपूर्ण माना जाता है और यहाँ समय-समय पर अध्ययन एवं सर्वेक्षण किए गए हैं। यह तीर्थ महाभारतकालीन परंपराओं और स्थानीय लोकविश्वासों का महत्वपूर्ण केंद्र है।

अन्य प्रमुख तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र में इसके अतिरिक्त भी अनेक महत्वपूर्ण तीर्थ हैं, जिनमें कपिल मुनि तीर्थ, सीतामाई, वेदवती तीर्थ, पराशर तीर्थ, जमदग्नि तीर्थ, मार्कण्डेय तीर्थ, कपालमोचन तथा अनेक अन्य स्थल शामिल हैं। प्रत्येक तीर्थ की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, धार्मिक परंपरा और सांस्कृतिक पहचान है। यही विविधता 48 कोस कुरुक्षेत्र को विश्व के सबसे समृद्ध तीर्थ-परिक्षेत्रों में स्थान दिलाती है।

लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव

इस शोध-ग्रंथ के लेखन हेतु लेखक ने इन प्रमुख तीर्थों का प्रत्यक्ष भ्रमण किया, स्थानीय विद्वानों एवं पुजारियों से संवाद किया तथा उपलब्ध सरकारी और ऐतिहासिक स्रोतों का अध्ययन किया। अनेक स्थानों पर आज भी प्राचीन परंपराएँ जीवित हैं, जबकि कुछ तीर्थ आधुनिक विकास के साथ नए स्वरूप में श्रद्धालुओं का स्वागत कर रहे हैं।

लेखक का अनुभव है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र का प्रत्येक तीर्थ केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, संस्कृति और लोकजीवन का एक जीवंत अध्याय है। इन सभी तीर्थों का समग्र अध्ययन किए बिना कुरुक्षेत्र की वास्तविक महिमा को पूरी तरह समझना संभव नहीं है।

अध्याय–16 : भीष्म कुंड एवं बाणगंगा तीर्थ, दयालपुर

भाग-1 : महाभारत की अमर स्मृतियों की ओर एक शोध-यात्रा

26 जुलाई 2026 को मेरी 48 कोस श्रीकुरुक्षेत्र तीर्थ-यात्रा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण चरण प्रारम्भ हुआ। इस दिन मुझे अपने सम्मानित साथियों मास्टर जगबीर वैष्णव, तुलसी बैरागी, मास्टर ओमप्रकाश बैरागी तथा दिनेश स्वामी के साथ ग्राम दयालपुर स्थित भीष्म कुंड एवं बाणगंगा तीर्थ के दर्शन एवं अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस यात्रा का उद्देश्य केवल तीर्थ-दर्शन करना नहीं था, बल्कि महाभारतकालीन परंपराओं, स्थानीय जनश्रुतियों तथा वर्तमान धार्मिक व्यवस्था का प्रत्यक्ष अध्ययन करना भी था।

दयालपुर पहुँचते ही मंदिर परिसर का शांत और आध्यात्मिक वातावरण मन को सहज ही आकर्षित कर लेता है। प्रवेश द्वार पर स्थापित सूचना-पट्ट तीर्थ के ऐतिहासिक महत्व का परिचय देता है। चारों ओर फैली हरियाली, प्राचीन मंदिरों का वातावरण और श्रद्धालुओं की आस्था यह अनुभव कराती है कि यह स्थान आज भी महाभारत की स्मृतियों को जीवित रखे हुए है।


बाण गंगा तीर्थ दयाल पुर
यहां पर भीष्म पिता को जल पिलाया गया था।
इस स्थान पर भीष्म पितामह की महाभारत युद्ध के दौरान, अर्जुन ने बाण मारकर
गंगा को प्रकट किया जिसे कारण इस स्थान का नाम बाणगंगा पड़ा।
तीर्थ के पश्चिम में स्थित वर्गाकार सरोवर के तल में उत्तर की तरफ ईंटों से
निर्मित एक विशाल धनुषाकृति संरचना सम्भवत बाणगंगा के शाब्दिक अर्थ
का सांकेतिक स्वरूप है। बैसाखी मेले के दौरान श्रद्धालु इस सरोवर में स्नान करने
आते हैं॥

बाण गंगा तीर्थ, दयालपुर – प्रवेश द्वार पर स्थापित सूचना-पट्ट, जो तीर्थ के ऐतिहासिक महत्व का परिचय देता है

सबसे पहले हमने बाणगंगा तीर्थ के दर्शन किए। स्थानीय मान्यता तथा मंदिर परिसर में उपलब्ध जानकारी के अनुसार महाभारत युद्ध के दौरान जब पितामह भीष्म शरशय्या पर विराजमान थे, तब उन्हें तीव्र प्यास लगी। भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से अर्जुन ने अपने दिव्य बाण द्वारा पृथ्वी का भेदन किया, जिससे गंगा जल की धारा प्रकट हुई और उसी जल से पितामह भीष्म की प्यास शांत हुई। इसी दिव्य घटना की स्मृति में यह स्थान बाणगंगा तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ।

तीर्थ परिसर में स्थित भीष्म पितामह की शरशय्या का प्रतीकात्मक स्वरूप श्रद्धालुओं को महाभारत के उस महान प्रसंग का सजीव स्मरण कराता है। यहाँ आने वाला प्रत्येक श्रद्धालु धर्म, त्याग, सत्यनिष्ठा और कर्तव्यपरायणता के प्रतीक भीष्म पितामह को श्रद्धापूर्वक नमन करता है।



भीष्म पितामह की शरशय्या का प्रतीकात्मक स्वरूप – बाण गंगा तीर्थ, दयालपुर

इस तीर्थ की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ आज भी धार्मिक वातावरण पूर्णतः जीवंत है। प्रतिदिन श्रद्धालु दूर-दूर से दर्शन के लिए आते हैं और अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं। मंदिर परिसर का शांत वातावरण, प्राचीन स्वरूप तथा धार्मिक गरिमा इस स्थान को 48 कोस कुरुक्षेत्र के महत्वपूर्ण तीर्थों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

इस यात्रा के दौरान मैंने मंदिर परिसर, बाणगंगा, भीष्म कुंड तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थलों का सूक्ष्म निरीक्षण किया और अनेक छायाचित्र भी संकलित किए। ये छायाचित्र केवल यात्रा की स्मृतियाँ नहीं हैं, बल्कि इस शोध ग्रंथ के लिए महत्वपूर्ण

दस्तावेज भी हैं, जो पाठकों को स्थल की वास्तविक स्थिति से परिचित कराएँगे।

दयालपुर स्थित भीष्म कुंड एवं बाणगंगा तीर्थ केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, महाभारत की परंपरा और सनातन संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। यहाँ की पावन भूमि पर पहुँचकर ऐसा अनुभव होता है कि इतिहास आज भी श्रद्धा और आस्था के रूप में जीवित है तथा प्रत्येक आगंतुक को अपनी गौरवशाली विरासत से जोड़ता है।

भाग-2 : भीष्म कुंड, प्राचीन मंदिर परिसर और ऐतिहासिक धरोहर

बाणगंगा तीर्थ के दर्शन के उपरांत मैंने भीष्म कुंड एवं उसके आसपास स्थित मंदिर परिसर का विस्तार से अवलोकन किया। एक शोधकर्ता के रूप में मेरा उद्देश्य केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं था, बल्कि इस तीर्थ के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं स्थापत्य महत्व का प्रत्यक्ष अध्ययन करना भी था। दयालपुर का यह तीर्थ आज भी महाभारतकालीन परंपराओं का जीवंत प्रतीक प्रतीत होता है।

मंदिर परिसर में स्थित भीष्म कुंड श्रद्धालुओं की गहन आस्था का केंद्र है। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार महाभारत युद्ध के समय पितामह भीष्म की प्यास बुझाने के लिए अर्जुन द्वारा बाण चलाकर जिस दिव्य जलधारा को प्रकट किया गया

था, उसी घटना की स्मृति से यह क्षेत्र जुड़ा हुआ माना जाता है। यद्यपि इस संबंध में विभिन्न परंपराएँ प्रचलित हैं, किंतु श्रद्धालुओं की आस्था इस स्थान को अत्यंत पवित्र बनाती है।

परिसर में भ्रमण करते समय मेरी दृष्टि एक प्राचीन गुफानुमा संरचना पर पड़ी, जिसकी स्थापत्य शैली अत्यंत प्राचीन प्रतीत होती है। मोटी ईंटों और चूने-गारे से निर्मित यह संरचना समय के अनेक उतार-चढ़ावों की साक्षी रही है। इसके निकट स्थित पुरानी कुटिया और मंदिर परिसर का पारंपरिक स्वरूप इस स्थान की प्राचीनता का आभास कराता है।



महाभारतकालीन प्राचीन गुफानुमा संरचना – मोटी ईंटों और चूने-गारे से निर्मित प्राचीन प्रवेश द्वार



मंदिर परिसर में स्थित प्राचीन कुटिया, जो इस स्थान की प्राचीनता का आभास कराती है

मंदिर परिसर में श्री विश्वेश्वर महादेव मंदिर, माता बाला सुंदरी मंदिर तथा दक्षिणमुखी त्रिमुखी बालाजी (हनुमान जी) मंदिर भी स्थित हैं। इन मंदिरों में प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक पूजा-अर्चना की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि यह तीर्थ केवल महाभारत की स्मृतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि आज भी एक जीवंत धार्मिक केंद्र के रूप में अपनी परंपरा को निरंतर आगे बढ़ा रहा है।



माता बाला सुंदरी मंदिर के समक्ष लेखक – मंदिर परिसर, दयालपुर

मेरे भ्रमण के दौरान यह अनुभव हुआ कि मंदिर परिसर में स्वच्छता, धार्मिक अनुशासन और आध्यात्मिक वातावरण का विशेष ध्यान रखा जाता है। श्रद्धालु अत्यंत श्रद्धा के साथ दर्शन करते हैं और स्थानीय सेवायत भी तीर्थ की गरिमा बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयासरत दिखाई देते हैं।

इस यात्रा के दौरान मैंने भीष्म कुंड, बाणगंगा, प्राचीन गुफा, मंदिर परिसर तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थलों के अनेक छायाचित्र संकलित किए। ये चित्र केवल यात्रा के संस्मरण नहीं हैं, बल्कि इस शोध ग्रंथ के लिए महत्वपूर्ण दृश्य साक्ष्य भी हैं। भविष्य

में ये शोधार्थियों एवं पाठकों के लिए इस तीर्थ की वास्तविक स्थिति को समझने में उपयोगी सिद्ध होंगे।

दयालपुर स्थित भीष्म कुंड एवं बाणगंगा तीर्थ का भ्रमण मेरे लिए केवल एक धार्मिक यात्रा नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, महाभारत की परंपरा और सनातन संस्कृति की अमूल्य विरासत के प्रत्यक्ष अध्ययन का अवसर था। इस पावन भूमि पर उपस्थित होकर यह अनुभूति हुई कि कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर आज भी अपनी मूल गरिमा और आस्था के साथ जीवंत है।

भाग-3 : वैष्णव बैरागी परंपरा एवं मंदिर की सेवा-पूजा व्यवस्था

दयालपुर स्थित भीष्म कुंड एवं बाणगंगा तीर्थ की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ की पूजा-अर्चना एवं धार्मिक परंपराएँ आज भी वैष्णव बैरागी परंपरा के अनुसार संचालित होती हैं। अनेक पीढ़ियों से बैरागी संतों एवं सेवायत परिवारों ने इस पवित्र तीर्थ की सेवा, संरक्षण तथा धार्मिक परंपराओं को निरंतर बनाए रखा है। यही कारण है कि यह तीर्थ आज भी अपनी मूल धार्मिक गरिमा के साथ जीवंत बना हुआ है।

स्थानीय परंपरा के अनुसार इस तीर्थ की गुरु-शिष्य एवं पारिवारिक परंपरा निम्न प्रकार से चली आती है –

वैष्णव बैरागी परंपरा की वंशावली

महंत भगवान दास

|

(शिष्य)

|

महंत प्रेमदास बैरागी

सूरसती दास बैरागी

|

┌──────────┼──────────┐

| | |

तुलसीदास बैरागी द्वारका दास बैरागी महंत प्रेमदास बैरागी

|

┌───┴───┐

| |

मनोहर दास साधु राम बैरागी

|

मनोहर दास बैरागी साधु दास बैरागी

के पुत्र के पुत्र

| |

├─ देशराज बैरागी ├─ अजमेर दास बैरागी

├─ ईश्वरदास बैरागी ├─ बनारसी दास बैरागी

├─ बाबूराम बैरागी ├─ कस्तूरी दास बैरागी

├─ रामस्वरूप बैरागी ├─ काशीराम बैरागी

└─ जयपाल बैरागी └─ रामपाल बैरागी

उपरोक्त वंशावली से स्पष्ट होता है कि दयालपुर स्थित भीष्म कुंड एवं बाणगंगा तीर्थ की सेवा-पूजा व्यवस्था केवल एक व्यक्ति तक सीमित नहीं रही, बल्कि वैष्णव बैरागी संतों एवं उनके सेवायत परिवारों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाई जाती रही। इस परंपरा ने मंदिर की धार्मिक मर्यादा, पूजा-पद्धति तथा तीर्थ की गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मेरे 26 जुलाई 2026 के प्रत्यक्ष भ्रमण के दौरान यह अनुभव हुआ कि आज भी यह तीर्थ श्रद्धा, सेवा और सनातन संस्कृति का जीवंत केंद्र है। महाभारत की ऐतिहासिक स्मृतियों के साथ-साथ यहाँ की वैष्णव बैरागी परंपरा इस स्थान को 48 कोस श्रीकुरुक्षेत्र के प्रमुख एवं विशिष्ट तीर्थों में विशेष स्थान प्रदान करती है।



श्रीकृष्ण संग्रहालय, कुरुक्षेत्र में लेखक एवं शोध-यात्रा के सहयोगी साथी

अध्याय – 17

कर्ण से जुड़े तीर्थ : इतिहास एवं परंपरा

भाग - 1 : कर्ण की कर्मभूमि की शोध-यात्रा (26 जुलाई 2026)

26 जुलाई 2026 को "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" के शोध कार्य के अंतर्गत मेरी यात्रा महाभारतकालीन महान दानवीर महात्मा कर्ण से जुड़े प्राचीन स्थलों तक पहुँची। इस यात्रा का उद्देश्य केवल दर्शन करना नहीं था, बल्कि इन ऐतिहासिक और पौराणिक स्थलों का प्रत्यक्ष अध्ययन, स्थानीय परंपराओं का अवलोकन तथा उनके ऐतिहासिक महत्व का दस्तावेजीकरण करना भी था।

यात्रा के दौरान सबसे पहले हमने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) द्वारा संरक्षित प्राचीन टीला "राजा कर्ण का किला" (मिर्जापुर, कुरुक्षेत्र) का अवलोकन किया। यह संरक्षित स्थल आज भी महाभारतकालीन परंपराओं और स्थानीय जनश्रुतियों का महत्वपूर्ण केंद्र माना जाता है। यहाँ स्थापित सूचना पट्ट तथा संरक्षित परिसर इस स्थल के ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ट करते हैं।



भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित सूचना-पट्ट – प्राचीन टीला राजा कर्ण का किला, मिर्जापुर, कुरुक्षेत्र

इसके उपरांत हमने महाभारतकालीन प्राचीन कुएँ के दर्शन किए। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार यह कुआँ कर्णकालीन परंपराओं से जुड़ा हुआ माना जाता है और आज भी श्रद्धालुओं की आस्था का केंद्र है। इतने प्राचीन जलस्रोत को देखकर सहज ही यह अनुभव होता है कि इतिहास केवल ग्रंथों में ही नहीं, बल्कि धरती पर भी अपने चिन्ह सुरक्षित रखता है।



महाभारतकालीन प्राचीन कुएँ के समीप लेखक – स्थानीय परंपरा के अनुसार कर्णकालीन जलस्रोत

यात्रा के अगले चरण में हमने महात्मा कर्ण तथा उनकी पत्नी पद्मावती की प्रतिमाओं के दर्शन किए। इन प्रतिमाओं के माध्यम से स्थानीय समाज कर्ण की दानशीलता, वीरता और धर्मनिष्ठा को आज भी स्मरण करता है। प्रतिमाओं के समीप स्थित प्राचीन वातावरण इस स्थान को और अधिक आध्यात्मिक तथा ऐतिहासिक महत्व प्रदान करता है।

महात्मा कर्ण एवं पद्मावती की प्रतिमाओं के समक्ष लेखक एवं शोध-यात्रा के सहयोगी साथी

इसी परिसर में स्थित विशाल वटवृक्ष भी विशेष आकर्षण का केंद्र है। स्थानीय परंपरा में इसे अत्यंत प्राचीन एवं पूजनीय माना जाता है। इसकी विशाल शाखाएँ मानो सदियों के इतिहास की मौन साक्षी बनकर आज भी खड़ी हैं। इस वटवृक्ष के समीप ध्यान करने पर प्रकृति, इतिहास और आस्था का अद्भुत संगम अनुभव होता है।



परिसर में स्थित प्राचीन एवं पूजनीय वटवृक्ष, जहाँ श्रद्धालु आज भी पूजा-अर्चना करते हैं

इस प्रकार 26 जुलाई 2026 की यह शोध-यात्रा मेरे लिए केवल तीर्थ-दर्शन नहीं, बल्कि महाभारतकालीन विरासत के प्रत्यक्ष

अध्ययन का एक महत्वपूर्ण अध्याय सिद्ध हुई। इस यात्रा ने यह अनुभव कराया कि कुरुक्षेत्र की पावन भूमि पर आज भी इतिहास, पुरातत्व और लोकपरंपरा एक-दूसरे के पूरक रूप में जीवित हैं।

भाग – 2 : महात्मा कर्ण की दानवीरता, पुरातात्त्विक साक्ष्य और स्थानीय परंपराएँ

महाभारत के महानायक दानवीर कर्ण भारतीय संस्कृति में त्याग, पराक्रम, सत्यनिष्ठा और दानशीलता के सर्वोच्च प्रतीकों में गिने जाते हैं। भगवान सूर्य के पुत्र तथा माता कुंती के ज्येष्ठ पुत्र कर्ण ने जीवनभर कठिन परिस्थितियों का सामना किया, किन्तु अपने वचन, स्वाभिमान और दान की मर्यादा से कभी विचलित नहीं हुए। यही कारण है कि आज भी कुरुक्षेत्र क्षेत्र में उनसे जुड़े अनेक तीर्थ श्रद्धा और सम्मान के साथ स्मरण किए जाते हैं।

कुरुक्षेत्र के मिर्जापुर क्षेत्र में स्थित राजा कर्ण का प्राचीन टीला (किला) स्थानीय परंपराओं में कर्ण से संबंधित महत्वपूर्ण स्थल माना जाता है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा इस स्थल को संरक्षित किया गया है, जिससे इसके ऐतिहासिक महत्व की पुष्टि होती है। यद्यपि उपलब्ध पुरातात्त्विक अवशेष सीधे महाभारतकाल से संबद्ध होने का निर्णायक प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते, फिर भी यह स्थल प्राचीन सभ्यता और निरंतर मानवीय बसावट का महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। इसी कारण यह

इतिहासकारों, पुरातत्वविदों तथा श्रद्धालुओं के लिए विशेष आकर्षण का विषय है।

स्थानीय लोकमान्यता के अनुसार इसी क्षेत्र में महात्मा कर्ण प्रतिदिन ब्राह्मणों, साधुओं तथा निर्धनों को स्वर्ण, अन्न, गौ और वस्त्र का दान देते थे। कर्ण की दानशीलता इतनी प्रसिद्ध थी कि उन्हें "दानवीर कर्ण" की उपाधि प्राप्त हुई। महाभारत में वर्णित है कि भगवान श्रीकृष्ण तथा इन्द्र ने भी विभिन्न प्रसंगों में उनकी दानशीलता की परीक्षा ली, और कर्ण ने अपने प्राणों से भी बढ़कर दान धर्म का पालन किया।

यात्रा के दौरान देखे गए महाभारतकालीन प्राचीन कुएँ के विषय में स्थानीय समाज की मान्यता है कि इसका संबंध कर्णकालीन परंपराओं से रहा है। यद्यपि इस मान्यता के ऐतिहासिक परीक्षण की आवश्यकता बनी हुई है, फिर भी यह कुआँ सदियों से श्रद्धा का केंद्र बना हुआ है और क्षेत्र की सांस्कृतिक स्मृति का अभिन्न अंग है।

इसी प्रकार महात्मा कर्ण तथा उनकी पत्नी पद्मावती की प्रतिमाएँ इस क्षेत्र की जीवंत लोकपरंपरा का परिचय देती हैं। यहाँ आने वाले श्रद्धालु कर्ण की दानशीलता, वीरता और धर्मपालन को स्मरण कर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। यह परंपरा दर्शाती है कि महाभारत के पात्र केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि आज भी जनमानस की आस्था में जीवित हैं।

परिसर में स्थित विशाल वटवृक्ष भी विशेष महत्व रखता है। भारतीय संस्कृति में वटवृक्ष दीर्घायु, स्थिरता, ज्ञान और आध्यात्मिक साधना का प्रतीक माना जाता है। इसकी छाया में बैठकर ऐसा प्रतीत होता है मानो यह वृक्ष अनेक पीढ़ियों और सदियों के इतिहास का मौन साक्षी बनकर आज भी इस पवित्र भूमि की रक्षा कर रहा हो।

इस प्रकार कर्ण से जुड़े ये तीर्थ केवल धार्मिक आस्था के केंद्र ही नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, लोकपरंपरा, पुरातात्विक धरोहर और सांस्कृतिक स्मृति के महत्वपूर्ण स्रोत भी हैं। इनका संरक्षण और वैज्ञानिक अध्ययन आने वाली पीढ़ियों के लिए हमारी साझा जिम्मेदारी है।

भाग - 3 : वर्तमान धार्मिक परंपरा, संरक्षण और यात्रा का निष्कर्ष

26 जुलाई 2026 को सम्पन्न इस शोध-यात्रा के दौरान यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि कर्ण से जुड़े ये तीर्थ केवल ऐतिहासिक या पौराणिक स्मारक नहीं हैं, बल्कि आज भी स्थानीय समाज की जीवित आस्था के केंद्र हैं। प्रतिदिन श्रद्धालु यहाँ पहुँचकर दर्शन करते हैं, प्राचीन वटवृक्ष की परिक्रमा करते हैं तथा महात्मा कर्ण की दानशीलता और धर्मनिष्ठा को स्मरण करते हुए अपने जीवन में परोपकार और सेवा का संकल्प लेते हैं।

यात्रा के दौरान हमने परिसर में स्थित महाभारतकालीन परंपरा से जुड़े प्राचीन कुएँ, महात्मा कर्ण एवं पद्मावती की प्रतिमाओं, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित राजा कर्ण के किले तथा विशाल वटवृक्ष का प्रत्यक्ष अवलोकन किया। इन सभी स्थलों ने यह अनुभव कराया कि कुरुक्षेत्र की पावन भूमि पर इतिहास, आस्था और संस्कृति आज भी एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं।

विशाल वटवृक्ष इस तीर्थ की विशेष पहचान है। भारतीय संस्कृति में वटवृक्ष को अमरत्व, ज्ञान, धैर्य और सनातन परंपरा का प्रतीक माना गया है। इसकी विशाल शाखाएँ और विस्तृत छाया ऐसा आभास कराती हैं मानो यह वृक्ष महाभारतकालीन स्मृतियों का मौन प्रहरी बनकर सदियों से इस पवित्र भूमि की रक्षा कर रहा हो। श्रद्धालु इसकी परिक्रमा कर सुख-समृद्धि एवं दीर्घायु की कामना करते हैं।

इस यात्रा से यह भी स्पष्ट हुआ कि ऐसे ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों का संरक्षण केवल सरकारी विभागों का ही नहीं, बल्कि समाज का भी दायित्व है। यदि इन स्थलों का वैज्ञानिक अध्ययन, उचित संरक्षण और प्रामाणिक प्रचार-प्रसार निरंतर होता रहे, तो आने वाली पीढ़ियाँ भी अपनी गौरवशाली सांस्कृतिक विरासत से परिचित हो सकेंगी।

मेरे लिए यह यात्रा केवल एक तीर्थ-दर्शन नहीं थी, बल्कि "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की

अमर भूमि" के शोध कार्य का एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी। प्रत्यक्ष अवलोकन, स्थानीय जनश्रुतियों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों तथा धार्मिक परंपराओं के अध्ययन ने इस अध्याय को अधिक प्रामाणिक और तथ्यपरक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस अध्याय का निष्कर्ष यही है कि महात्मा कर्ण भारतीय संस्कृति के ऐसे अमर नायक हैं, जिनकी दानशीलता, पराक्रम, वचनबद्धता और धर्मनिष्ठा आज भी समाज को प्रेरणा देती है। कुरुक्षेत्र की यह पावन भूमि उनकी स्मृतियों को संजोए हुए भारतीय इतिहास और सनातन संस्कृति की अमूल्य धरोहर के रूप में सदैव पूजनीय रहेगी।

अध्याय–18

पाण्डवों के वन, आश्रम और तपस्थल

भाग-1 : प्राचीन कुरुक्षेत्र के सप्तवनों की पावन परंपरा

महाभारतकालीन कुरुक्षेत्र केवल युद्धभूमि नहीं था, बल्कि वैदिक ऋषियों की तपोभूमि, यज्ञभूमि और आश्रम-परंपरा का महान केंद्र भी था। सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य स्थित इस पवित्र क्षेत्र में अनेक ऋषि-मुनियों ने तपस्या की, वेदों का अध्ययन कराया और धर्म, ज्ञान तथा संस्कृति की अखंड ज्योति प्रज्वलित रखी। यही कारण है कि प्राचीन ग्रंथों में कुरुक्षेत्र को "धर्मक्षेत्र" और "ऋषियों की भूमि" कहा गया है।

वामन पुराण तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में वर्णन मिलता है कि अड़तालीस कोस कुरुक्षेत्र में सात प्रमुख पवित्र वन (सप्तवन) विद्यमान थे। इन वनों में अनेक आश्रम, यज्ञस्थल और तपोभूमियाँ स्थित थीं, जहाँ ऋषि-मुनि तप, साधना और वैदिक अनुष्ठान किया करते थे। वामन पुराण (34/1-5) में इनका उल्लेख काम्यक वन, अदिति वन, व्यास वन, फलकी (फालकी) वन, सूर्य वन, मधुवन तथा शीत वन के रूप में मिलता है।

वर्तमान समय में इन प्राचीन वनों की पहचान हरियाणा के विभिन्न गाँवों से की जाती है। स्थानीय परंपरा एवं कुरुक्षेत्र

विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित विवरण के अनुसार इनकी पहचान इस प्रकार मानी जाती है –

• काम्यक वन – वर्तमान कमौदा (कामोदा) क्षेत्र।

• अदिति वन – वर्तमान अभिमन्युपुर।

• शीत वन – वर्तमान सीवन।

• फलकी (फालकी) वन – वर्तमान फरल।

• सूर्य वन – वर्तमान सजूमा।

• मधुवन – वर्तमान मोहना।

• व्यास वन – वर्तमान वार्थली (बारथली) क्षेत्र।

इन वनों का महत्व केवल प्राकृतिक सौंदर्य तक सीमित नहीं था। वैदिक युग में वन ही शिक्षा, साधना और आध्यात्मिक जीवन के प्रमुख केंद्र थे। गुरुकुल, आश्रम और यज्ञशालाएँ प्रायः इन्हीं शांत वनों में स्थापित की जाती थीं। यहाँ वेदों का अध्ययन, यज्ञ, तपस्या, योग तथा शास्त्रार्थ होते थे। महाभारत काल में पाण्डवों, श्रीकृष्ण तथा अनेक ऋषियों का इन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध माना जाता है।

काम्यक वन का उल्लेख महाभारत में विशेष रूप से मिलता है। वनवास के प्रारम्भिक काल में पाण्डव कुछ समय के लिए काम्यक वन में रहे थे। इसी वन में अनेक महर्षियों ने उनका मार्गदर्शन किया और धर्म, नीति तथा जीवन के गूढ़ सिद्धांतों

का उपदेश दिया। काम्यक वन महाभारत की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का साक्षी माना जाता है।

अदिति वन का संबंध देवमाता अदिति की तपस्या से जोड़ा जाता है। पुराणों के अनुसार देवमाता अदिति ने अपने पुत्रों के कल्याण तथा देवताओं की पुनः विजय के लिए इसी वन में कठोर तप किया था। इस तप से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने वामन अवतार धारण करने का संकल्प लिया। इसलिए अदिति वन को मातृत्व, तप और दिव्य कृपा का प्रतीक माना जाता है।

आज भले ही इन वनों का मूल स्वरूप समय के साथ परिवर्तित हो गया हो, किंतु इनके नाम, स्थानीय परंपराएँ और धार्मिक स्मृतियाँ आज भी जीवित हैं। यही कारण है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की यात्रा केवल तीर्थ-दर्शन नहीं, बल्कि भारत की प्राचीन वन-संस्कृति, आश्रम परंपरा और वैदिक सभ्यता की यात्रा भी है।

भाग-2 : सप्तवनों में ऋषि परंपरा, आश्रम संस्कृति और आध्यात्मिक विरासत

प्राचीन भारत की संस्कृति में वन केवल वृक्षों का समूह नहीं थे, बल्कि वे ज्ञान, तप, साधना और वैदिक सभ्यता के जीवंत केंद्र थे। विशेष रूप से 48 कोस कुरुक्षेत्र के सप्तवनों का उल्लेख वामन पुराण, महाभारत तथा अन्य पुराणों में मिलता है। इन

वनों में अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रम स्थापित थे, जहाँ वेदों का अध्ययन, यज्ञ, तपस्या, योग-साधना तथा शिष्यों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसी कारण कुरुक्षेत्र को केवल धर्मक्षेत्र ही नहीं, बल्कि ऋषि-परंपरा की पुण्यभूमि भी कहा गया है।

व्यास वन, जिसे वर्तमान में वार्थली (बारथली) क्षेत्र से जोड़ा जाता है, महर्षि वेदव्यास की स्मृतियों से संबंधित माना जाता है। महर्षि वेदव्यास भारतीय ज्ञान-परंपरा के महान स्तंभ हैं। उन्होंने वेदों का विभाजन किया, महाभारत की रचना की तथा अठारह महापुराणों की परंपरा को व्यवस्थित रूप दिया। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार व्यास वन का क्षेत्र ऋषियों की साधना और वैदिक अध्ययन का महत्वपूर्ण केंद्र रहा है।

सूर्य वन, जिसकी पहचान वर्तमान सजूमा क्षेत्र से की जाती है, सूर्य उपासना का प्रमुख केंद्र माना जाता है। वैदिक साहित्य में सूर्य को समस्त सृष्टि का जीवनदाता, ऊर्जा का स्रोत तथा सत्य का प्रतीक बताया गया है। प्राचीन काल में अनेक ऋषि इस वन में सूर्योपासना, गायत्री जप और यज्ञ सम्पन्न करते थे। सूर्य वन की परंपरा भारतीय संस्कृति में प्रकृति और देवोपासना के अद्भुत समन्वय को दर्शाती है।

मधुवन, जिसे वर्तमान मोहना क्षेत्र से जोड़ा जाता है, अपने शांत वातावरण और प्राकृतिक संपन्नता के कारण साधकों के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान माना जाता था। पुराणों में वर्णित है कि ऐसे वनों में ऋषि-मुनि दीर्घकाल तक तपस्या करते थे। मधुवन

केवल प्राकृतिक सौंदर्य का प्रतीक नहीं था, बल्कि आध्यात्मिक साधना और आत्मचिंतन का भी महत्वपूर्ण केंद्र रहा।

शीत वन, जिसकी पहचान वर्तमान सीवन से की जाती है, अपनी शांत और सौम्य प्रकृति के कारण ऋषियों के निवास के लिए उपयुक्त माना जाता था। स्थानीय परंपराओं के अनुसार यहाँ अनेक आश्रम स्थित थे, जहाँ वैदिक शिक्षा और धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन होता था। यद्यपि समय के साथ इन आश्रमों के भौतिक अवशेष लुप्त हो गए हैं, फिर भी उनकी स्मृतियाँ आज भी स्थानीय जनश्रुतियों में सुरक्षित हैं।

फलकी (फालकी) वन, जिसका वर्तमान स्वरूप फरल क्षेत्र में देखा जाता है, भी सप्तवनों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह वन ऋषियों की तपस्या तथा यज्ञों के लिए प्रसिद्ध माना जाता था। यहाँ का प्राकृतिक वातावरण आध्यात्मिक साधना के लिए अत्यंत अनुकूल था। अनेक विद्वानों का मत है कि इन वनों ने वैदिक संस्कृति और गुरुकुल परंपरा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इन सप्तवनों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन कुरुक्षेत्र केवल महाभारत युद्ध का क्षेत्र नहीं था, बल्कि यह भारत की आश्रम व्यवस्था, गुरुकुल परंपरा, वैदिक शिक्षा, ऋषि संस्कृति और आध्यात्मिक साधना का विशाल केंद्र था। इन वनों में स्थापित आश्रमों से धर्म, दर्शन, वेद, उपनिषद तथा

भारतीय जीवन-मूल्यों का प्रचार-प्रसार हुआ, जिसका प्रभाव संपूर्ण भारतीय सभ्यता पर पड़ा।

आज इन वनों का मूल प्राकृतिक स्वरूप समय के साथ परिवर्तित हो चुका है, परंतु उनके नाम, उनसे जुड़ी धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक स्मृतियाँ आज भी जीवित हैं। यही कारण है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की यात्रा केवल तीर्थ-दर्शन नहीं, बल्कि भारत की प्राचीन वन-संस्कृति, ऋषि-परंपरा और आध्यात्मिक विरासत के दर्शन की यात्रा भी है।

भाग-3 : पाण्डवों का वनवास, वर्तमान स्वरूप और संरक्षण की आवश्यकता

महाभारत का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वन केवल प्राकृतिक संपदा नहीं थे, बल्कि धर्म, ज्ञान, तपस्या और आत्मचिंतन के महान केंद्र थे। पाण्डवों के वनवास का एक महत्वपूर्ण भाग भी ऐसे ही वनों और आश्रमों में व्यतीत हुआ, जहाँ उन्हें अनेक महर्षियों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। ऋषियों के उपदेश, सत्संग और आध्यात्मिक मार्गदर्शन ने पाण्डवों को कठिन परिस्थितियों में भी धर्म के मार्ग पर अडिग रहने की शक्ति प्रदान की।

काम्यक वन का महाभारत में विशेष महत्व है। वनवास के दौरान पाण्डवों ने यहाँ निवास किया और अनेक महर्षियों से धर्म, नीति, राजधर्म तथा जीवन-दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया।

महर्षि व्यास, महर्षि मार्कण्डेय, महर्षि लोमश तथा अन्य अनेक ऋषियों के साथ पाण्डवों के संवाद महाभारत के महत्वपूर्ण प्रसंगों में वर्णित हैं। इन प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि वन केवल निवास-स्थान नहीं, बल्कि आध्यात्मिक शिक्षा और भारतीय संस्कृति के केंद्र थे।

इन वनों में स्थित आश्रमों की व्यवस्था अत्यंत अनुशासित होती थी। गुरु अपने शिष्यों को वेद, उपनिषद, धनुर्वेद, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, योग तथा धर्मशास्त्र का अध्ययन कराते थे। शिक्षा के साथ-साथ सेवा, संयम, तप, सत्य, अहिंसा, करुणा और प्रकृति संरक्षण जैसे जीवन-मूल्यों का भी अभ्यास कराया जाता था। इसी आश्रम परंपरा ने भारतीय सभ्यता को नैतिक और सांस्कृतिक आधार प्रदान किया।

समय के साथ इन प्राचीन वनों का मूल स्वरूप काफी बदल गया। बढ़ते शहरीकरण, औद्योगीकरण, नई सड़कों के निर्माण तथा कृषि के विस्तार ने इन वनों के विशाल क्षेत्र को प्रभावित किया। आज इन सप्तवनों की पहचान मुख्यतः उनके प्राचीन नामों, स्थानीय परंपराओं तथा कुछ सुरक्षित हरित क्षेत्रों के माध्यम से ही की जा सकती है। जहाँ कभी ऋषियों के आश्रम और घने वन थे, वहाँ आज अनेक स्थानों पर गाँव, नगर, औद्योगिक क्षेत्र तथा आधुनिक विकास की संरचनाएँ दिखाई देती हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की मेरी प्रत्यक्ष यात्रा के दौरान यह देखकर संतोष हुआ कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इन प्राचीन तीर्थों, वनों और सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण, पहचान, सूचना-पट्टों की स्थापना, सौंदर्यीकरण तथा तीर्थ मार्गों के विकास में उल्लेखनीय कार्य किया है। जहाँ-जहाँ मुझे भ्रमण करने का अवसर मिला, वहाँ यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि बोर्ड प्राचीन विरासत को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का गंभीर प्रयास कर रहा है। यदि भविष्य में भी इसी प्रकार संरक्षण, वृक्षारोपण और ऐतिहासिक स्थलों के विकास के कार्य निरंतर चलते रहे, तो कुरुक्षेत्र की यह अमूल्य सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक धरोहर आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रह सकेगी।

वन भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं। वे केवल वृक्षों का समूह नहीं, बल्कि जीवन, ज्ञान और आध्यात्मिक चेतना के प्रतीक हैं। आज जब पर्यावरण संरक्षण सम्पूर्ण विश्व की आवश्यकता बन चुका है, तब कुरुक्षेत्र के इन प्राचीन वनों की परंपरा हमें प्रकृति के प्रति श्रद्धा, संतुलन और सह-अस्तित्व का संदेश भी देती है। यही सनातन संस्कृति की वह दृष्टि है, जिसमें प्रकृति और मानव एक-दूसरे के पूरक माने गए हैं।

इस शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र के सप्तवन भारतीय सभ्यता, वैदिक संस्कृति, ऋषि परंपरा और महाभारतकालीन इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। इनका संरक्षण केवल सरकार का ही नहीं, बल्कि समाज के

प्रत्येक नागरिक का भी दायित्व है। जब तक हम अपनी प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत का सम्मान करेंगे, तब तक सनातन संस्कृति की यह अमर धारा निरंतर प्रवाहित होती रहेगी।

प्रमुख संदर्भ

• वामन पुराण (34/1-5) — सप्तवनों का मूल श्लोक-उल्लेख

• महाभारत (वनपर्व)

• कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड — आधिकारिक तीर्थ-विवरण एवं ग्राम-पहचान (48koskurukshetra.com)

• लेखक का प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण एवं शोध (2026)

अध्याय–19

सप्तवन और प्राचीन वन संस्कृति

भाग-1 : भारतीय सभ्यता में वन संस्कृति का उद्‌भव और कुरुक्षेत्र के सप्तवन

भारतीय सभ्यता के विकास में वन संस्कृति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक वन केवल वृक्षों का समूह नहीं थे, बल्कि वे ज्ञान, तप, शिक्षा, चिकित्सा, यज्ञ और आध्यात्मिक साधना के जीवंत केंद्र थे। भारत की प्राचीन आश्रम व्यवस्था का आधार भी वन ही थे। महर्षि अपने आश्रम प्रायः नदियों के तटों अथवा घने वनों में स्थापित करते थे, जहाँ प्राकृतिक वातावरण में शिष्यों को वेद, उपनिषद, दर्शन, आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा जीवन-मूल्यों की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

प्राचीन ग्रंथों में वन को मानव जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण तथा अन्य पुराणों में वनों की महिमा का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। भारतीय चिंतन में वृक्षों को देवतुल्य माना गया और प्रकृति की रक्षा को धर्म का अंग स्वीकार किया गया। यही कारण है कि पीपल, वट, अशोक, बेल, पलाश, नीम और तुलसी जैसे पौधों को धार्मिक महत्व प्राप्त हुआ।

वामन पुराण के अनुसार 48 कोस कुरुक्षेत्र में सात प्रमुख वन थे, जिन्हें सामूहिक रूप से सप्तवन कहा गया है। ये वन केवल प्राकृतिक क्षेत्र नहीं थे, बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र भी थे। इन सप्तवनों के नाम हैं –

• काम्यक वन (वर्तमान कमौदा)

• अदिति वन (वर्तमान अभिमन्युपुर)

• शीत वन (वर्तमान सीवन)

• फलकी (फालकी) वन (वर्तमान फरल)

• सूर्य वन (वर्तमान सजूमा)

• मधुवन (वर्तमान मोहना)

• व्यास वन (वर्तमान वार्थली)

इन वनों में अनेक ऋषियों के आश्रम स्थित थे। यहाँ यज्ञ, तपस्या, वेदाध्ययन, शास्त्रार्थ और गुरुकुल शिक्षा की परंपरा विकसित हुई। महर्षि वेदव्यास, महर्षि मार्कण्डेय, महर्षि लोमश, महर्षि दुर्वासा तथा अनेक अन्य ऋषियों की तपस्या और प्रवास से जुड़ी परंपराएँ कुरुक्षेत्र क्षेत्र में आज भी लोकश्रुतियों और तीर्थों के माध्यम से जीवित हैं।

महाभारत काल में भी इन वनों का विशेष महत्व था। वनवास के दौरान पाण्डवों ने अनेक आश्रमों में निवास किया, ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त किया तथा धर्म और नीति का गहन

अध्ययन किया। भगवान श्रीकृष्ण भी अनेक अवसरों पर इन तपोभूमियों में आए और ऋषियों से संवाद किया। इस प्रकार कुरुक्षेत्र के सप्तवन भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक विकास के महत्वपूर्ण साक्षी रहे हैं।

मेरे द्वारा 48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान इन सप्तवनों से संबंधित वर्तमान स्थलों का प्रत्यक्ष अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ। यद्यपि समय के साथ इन वनों का मूल स्वरूप परिवर्तित हो चुका है, फिर भी उनके नाम, उनसे जुड़ी धार्मिक मान्यताएँ और स्थानीय परंपराएँ आज भी इस महान विरासत को जीवित रखे हुए हैं। इन स्थलों पर पहुँचकर सहज ही अनुभव होता है कि यह भूमि केवल इतिहास की नहीं, बल्कि भारत की सनातन सांस्कृतिक चेतना की भी आधारशिला है।

अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कुरुक्षेत्र के सप्तवन केवल भौगोलिक क्षेत्र नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान, तप, प्रकृति-पूजन और सनातन संस्कृति के अमर प्रतीक हैं।

भाग–2 : धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से सप्तवनों का महत्व

भारतीय संस्कृति में वन केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं थे, बल्कि धर्म, दर्शन, शिक्षा, चिकित्सा और आध्यात्मिक जीवन के आधार माने जाते थे। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल

तक भारत की अधिकांश महान ज्ञान-परंपराओं का विकास वनों में ही हुआ। इसी कारण हमारे प्राचीन ग्रंथों में वन को "तपोवन", "सिद्धभूमि" और "ऋषियों का निवास" कहा गया है। कुरुक्षेत्र के सप्तवन इस महान परंपरा के जीवंत उदाहरण हैं।

वामन पुराण में वर्णित सप्तवन केवल धार्मिक तीर्थ नहीं थे, बल्कि वे गुरुकुल शिक्षा, वेदाध्ययन, यज्ञ, योग, आयुर्वेद और आध्यात्मिक साधना के प्रमुख केंद्र थे। प्रत्येक वन का अपना विशिष्ट धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व था। कहीं सूर्योपासना की परंपरा विकसित हुई, कहीं महर्षियों ने तपस्या की, तो कहीं यज्ञों और वैदिक अनुष्ठानों का आयोजन हुआ। इन वनों ने भारतीय संस्कृति को ज्ञान, विज्ञान और आध्यात्मिक चेतना प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्राचीन आश्रम व्यवस्था का मूल उद्देश्य प्रकृति के मध्य रहकर संतुलित जीवन जीना था। ऋषि-मुनि अपने शिष्यों को केवल शास्त्रों का ज्ञान ही नहीं देते थे, बल्कि वृक्षों, नदियों, पशु-पक्षियों और सम्पूर्ण प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण का संस्कार भी सिखाते थे। इसी कारण भारतीय संस्कृति में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – इन पंचमहाभूतों की पूजा का विधान विकसित हुआ।

सप्तवनों का पर्यावरणीय महत्व भी अत्यंत व्यापक था। ये वन वर्षा के संतुलन, भूजल संरक्षण, जैव विविधता और

प्राकृतिक संतुलन के आधार थे। सरस्वती तथा अन्य नदियों के तटों पर स्थित ये वन जलवायु को संतुलित रखते थे और असंख्य जीव-जंतुओं के प्राकृतिक आवास थे। भारतीय ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व ही यह समझ लिया था कि प्रकृति का संरक्षण ही मानव जीवन की सुरक्षा का आधार है।

महाभारत काल में पाण्डवों का वनवास भी इस बात का प्रमाण है कि वन केवल निवास स्थान नहीं थे, बल्कि आत्मबल, धैर्य, तप और ज्ञान प्राप्ति के केंद्र थे। वनवास के दौरान पाण्डवों ने अनेक ऋषियों के आश्रमों में जाकर धर्म, नीति और जीवन-दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। भगवान श्रीकृष्ण ने भी अनेक अवसरों पर ऋषियों का सम्मान कर यह संदेश दिया कि ज्ञान और प्रकृति दोनों का संरक्षण समान रूप से आवश्यक है।

मेरी 48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि आज इन प्राचीन वनों का मूल स्वरूप लगभग समाप्त हो चुका है। आधुनिक विकास, बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा कृषि के विस्तार के कारण अधिकांश वन अब गाँवों, कस्बों और कृषि क्षेत्रों में परिवर्तित हो चुके हैं। फिर भी इन वनों के प्राचीन नाम, उनसे जुड़ी लोकपरंपराएँ, तीर्थस्थल और धार्मिक स्मृतियाँ आज भी जीवित हैं, जो हमारी सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण प्रमाण हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों, प्राचीन स्थलों और उनसे जुड़ी सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण एवं विकास में सराहनीय कार्य किया है। विभिन्न स्थलों पर सूचना-पट्ट, सौंदर्यीकरण, तीर्थ मार्गों का विकास तथा ऐतिहासिक पहचान को सुरक्षित रखने के प्रयास इस बात का प्रमाण हैं कि हमारी प्राचीन विरासत को नई पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए गंभीर प्रयास किए जा रहे हैं। मेरे प्रत्यक्ष भ्रमण के आधार पर यह कार्य अत्यंत प्रशंसनीय प्रतीत हुआ।

आज आवश्यकता केवल इतिहास पढ़ने की नहीं, बल्कि उस वन संस्कृति को समझने की भी है, जिसने भारतीय सभ्यता को विश्व में विशिष्ट स्थान दिलाया। यदि हम वृक्षों का संरक्षण करेंगे, पर्यावरण की रक्षा करेंगे और अपनी सांस्कृतिक धरोहरों का सम्मान करेंगे, तभी हम वास्तव में अपने ऋषियों की परंपरा के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर सकेंगे।

भाग-3 : वन संस्कृति का पुनर्जागरण और भविष्य की दिशा

भारतीय संस्कृति में वन केवल पर्यावरण का हिस्सा नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन का आधार रहे हैं। हमारे ऋषियों ने प्रकृति को माता और वृक्षों को जीवनदाता माना। यही कारण है कि वैदिक साहित्य से लेकर महाभारत और पुराणों तक वन संस्कृति का अत्यंत सम्मानपूर्वक वर्णन मिलता है। कुरुक्षेत्र के

सप्तवन इसी महान परंपरा के जीवंत प्रतीक हैं, जिन्होंने हजारों वर्षों तक धर्म, ज्ञान और आध्यात्मिक चेतना को पोषित किया।

आज आधुनिक विकास, शहरीकरण, औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या तथा सड़कों और भवनों के विस्तार के कारण इन प्राचीन वनों का मूल स्वरूप लगभग समाप्त हो चुका है। जहाँ कभी घने वन, आश्रम और यज्ञशालाएँ थीं, वहाँ आज गाँव, नगर, औद्योगिक क्षेत्र तथा कृषि भूमि दिखाई देती है। यह परिवर्तन विकास की आवश्यकता का परिणाम अवश्य है, किन्तु इसके साथ-साथ हमारी प्राकृतिक और सांस्कृतिक धरोहर भी प्रभावित हुई है।

48 कोस कुरुक्षेत्र की मेरी प्रत्यक्ष शोध-यात्रा के दौरान यह देखकर संतोष हुआ कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इस महान विरासत को संरक्षित करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किए हैं। विभिन्न तीर्थों पर सूचना-पट्ट, सौंदर्यीकरण, तीर्थ मार्गों का विकास, धार्मिक स्थलों का संरक्षण तथा प्राचीन पहचान को सुरक्षित रखने के प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। जहाँ-जहाँ मुझे भ्रमण करने का अवसर मिला, वहाँ यह अनुभव हुआ कि बोर्ड केवल पर्यटन का विकास नहीं कर रहा, बल्कि कुरुक्षेत्र की हजारों वर्ष पुरानी सांस्कृतिक पहचान को भी संरक्षित करने का प्रयास कर रहा है। यह कार्य वास्तव में सराहनीय है।

इसके साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है कि इन प्राचीन सप्तवनों की स्मृति को केवल पुस्तकों तक सीमित न रखा जाए। जहाँ संभव हो, वहाँ इन वनों के नाम से पुनः वृक्षारोपण अभियान चलाए जाएँ, स्थानीय प्रजातियों के वृक्ष लगाए जाएँ तथा विद्यालयों, महाविद्यालयों और सामाजिक संगठनों को इस अभियान से जोड़ा जाए। इससे नई पीढ़ी अपने इतिहास, पर्यावरण और संस्कृति के प्रति अधिक जागरूक होगी।

कुरुक्षेत्र के सप्तवन हमें यह संदेश देते हैं कि प्रकृति और संस्कृति एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। यदि वन सुरक्षित रहेंगे तो जल, भूमि, जैव विविधता और सांस्कृतिक परंपराएँ भी सुरक्षित रहेंगी। यही संदेश वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व दिया था और आज के पर्यावरणीय संकट के समय वह पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गया है।

इस शोध-यात्रा के दौरान मैंने अनुभव किया कि 48 कोस कुरुक्षेत्र का प्रत्येक तीर्थ, प्रत्येक प्राचीन स्थल और प्रत्येक वन भारतीय सभ्यता के किसी न किसी महत्वपूर्ण अध्याय से जुड़ा हुआ है। इन स्थलों का संरक्षण केवल सरकार या किसी एक संस्था का दायित्व नहीं, बल्कि हम सभी नागरिकों की सामूहिक जिम्मेदारी है।

इस अध्याय का निष्कर्ष यह है कि कुरुक्षेत्र के सप्तवन भारतीय सभ्यता, वैदिक संस्कृति, ऋषि परंपरा और प्रकृति-पूजन की अमूल्य धरोहर हैं। इनका संरक्षण केवल अतीत का

सम्मान नहीं, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के प्रति हमारा दायित्व भी है। यदि हम अपनी सांस्कृतिक और प्राकृतिक विरासत को सुरक्षित रखेंगे, तभी सनातन संस्कृति की यह अखंड धारा आने वाले युगों तक निरंतर प्रवाहित होती रहेगी।

अध्याय–20

सूर्य, सोम एवं अन्य वैदिक तीर्थ

भाग-1 : वैदिक परंपरा और 48 कोस कुरुक्षेत्र के देवतीर्थ

कुरुक्षेत्र को प्राचीन भारतीय ग्रंथों में केवल धर्मक्षेत्र ही नहीं, बल्कि वैदिक देवताओं की आराधना-भूमि भी कहा गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में वर्णित अनेक देवशक्तियों की उपासना का संबंध इस पवित्र क्षेत्र से जोड़ा जाता है। वामन पुराण, महाभारत, स्कन्द पुराण तथा अन्य पुराणों में भी 48 कोस कुरुक्षेत्र के अनेक वैदिक तीर्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें सूर्य तीर्थ, सोम तीर्थ, ब्रह्म तीर्थ, अग्नि तीर्थ, इन्द्र तीर्थ, वरुण तीर्थ तथा अन्य पवित्र सरोवर और यज्ञस्थल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वैदिक काल में प्रकृति और देवत्व को एक-दूसरे का पूरक माना गया। सूर्य को समस्त सृष्टि का प्रकाश और ऊर्जा का स्रोत, सोम को अमृत, शीतलता और आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक, अग्नि को यज्ञ का वाहक तथा इन्द्र को वर्षा और शक्ति का देवता माना गया। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र में इन देवताओं को समर्पित अनेक तीर्थों की स्थापना हुई, जहाँ ऋषि-मुनि यज्ञ, तपस्या और वैदिक अनुष्ठान करते थे।

सूर्य तीर्थ का उल्लेख विशेष श्रद्धा के साथ किया गया है। भारतीय परंपरा में भगवान सूर्य को प्रत्यक्ष देवता माना गया है, जिनकी किरणों से समस्त चराचर जगत को जीवन प्राप्त होता है। वैदिक ऋषियों ने सूर्य को सत्य, ज्ञान, स्वास्थ्य और तेज का प्रतीक माना। कुरुक्षेत्र के सूर्य तीर्थ में स्नान, अर्घ्यदान और सूर्योपासना का विशेष महत्व बताया गया है। ऐसी मान्यता है कि श्रद्धा और विधिपूर्वक सूर्यदेव की आराधना करने से मनुष्य को आरोग्य, ऊर्जा और आत्मबल की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार सोम तीर्थ का भी वैदिक परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद में सोम का विस्तृत वर्णन मिलता है। सोम को दिव्य शक्ति, अमृत, शांति और आध्यात्मिक आनंद का प्रतीक माना गया है। पुराणों के अनुसार सोम तीर्थ में स्नान और पूजा करने से मानसिक शांति तथा आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति होती है। यह तीर्थ चंद्रमा (सोमदेव) की उपासना से भी जुड़ा हुआ माना जाता है।

कुरुक्षेत्र के इन वैदिक तीर्थों का महत्व केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भी है। यहाँ आयोजित यज्ञों, वैदिक अनुष्ठानों तथा ऋषियों की तपस्या ने इस क्षेत्र को भारत की प्राचीन आध्यात्मिक राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित किया। महाभारत काल में भी इन तीर्थों की महिमा अक्षुण्ण

रही और अनेक राजाओं, ऋषियों तथा तीर्थयात्रियों ने यहाँ आकर धर्मकर्म सम्पन्न किए।

मेरे द्वारा 48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान यह अनुभव हुआ कि आज भी इन वैदिक तीर्थों के प्रति लोगों की श्रद्धा बनी हुई है। अनेक स्थानों पर प्राचीन परंपराएँ आज भी जीवित हैं और श्रद्धालु स्नान, दान, पूजा तथा धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति को आगे बढ़ा रहे हैं। यही इस पावन भूमि की सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ वैदिक युग से लेकर वर्तमान तक आस्था की अखंड धारा निरंतर प्रवाहित हो रही है।

भाग-2 : वैदिक देवताओं की आराधना और कुरुक्षेत्र के प्रमुख देवतीर्थ

वैदिक साहित्य में देवताओं की उपासना केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं थी, बल्कि प्रकृति, ब्रह्मांड और मानव जीवन के बीच संतुलन स्थापित करने का एक माध्यम भी थी। 48 कोस कुरुक्षेत्र में स्थित अनेक वैदिक तीर्थ इसी महान परंपरा के साक्षी हैं। यहाँ सूर्य, सोम, अग्नि, इन्द्र, वरुण, ब्रह्मा तथा अन्य वैदिक देवताओं से संबंधित तीर्थों का उल्लेख वामन पुराण, महाभारत, स्कन्द पुराण तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है। इन तीर्थों में स्नान, दान, जप, तप और यज्ञ को अत्यंत पुण्यदायक माना गया है।

सूर्य तीर्थ का वैदिक परंपरा में विशेष महत्व है। ऋग्वेद में भगवान सूर्य की अनेक ऋचाओं द्वारा स्तुति की गई है। सूर्य को समस्त सृष्टि का प्रकाश, ऊर्जा, स्वास्थ्य, सत्य और धर्म का प्रतीक माना गया है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्य अर्पित कर गायत्री मंत्र का जप करते थे। कुरुक्षेत्र का सूर्य तीर्थ इसी प्राचीन सूर्योपासना की परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसी मान्यता है कि श्रद्धा और नियमपूर्वक सूर्यदेव की उपासना करने से आरोग्य, तेज, आत्मबल और दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

सोम तीर्थ का संबंध वैदिक देवता सोम से माना जाता है। ऋग्वेद का नवम मंडल मुख्य रूप से सोम की महिमा का वर्णन करता है। वैदिक परंपरा में सोम को अमृत, शीतलता, मानसिक शांति और आध्यात्मिक आनंद का प्रतीक माना गया है। बाद की परंपराओं में सोम का संबंध चंद्रदेव से भी स्थापित हुआ। कुरुक्षेत्र के सोम तीर्थ में स्नान और पूजा को मन की शुद्धि, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक उन्नति का साधन माना गया है।

अग्नि तीर्थ वैदिक यज्ञ परंपरा का प्रतीक है। वेदों में अग्निदेव को देवताओं और मनुष्यों के मध्य संदेशवाहक कहा गया है। प्रत्येक वैदिक यज्ञ अग्नि की उपस्थिति में सम्पन्न होता था। इसलिए अग्नि तीर्थ केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि वैदिक सभ्यता की यज्ञीय परंपरा का स्मारक भी है।

इसी प्रकार इन्द्र तीर्थ का संबंध वर्षा, पराक्रम और समृद्धि के देवता इन्द्र से माना जाता है। ऋग्वेद में इन्द्र का सर्वाधिक उल्लेख मिलता है। वे असुरों पर विजय, वर्षा और कृषि की समृद्धि के प्रतीक हैं। प्राचीन काल में कृषक, क्षत्रिय और यजमान इन्द्र की विशेष पूजा करते थे।

वरुण तीर्थ जल के महत्व का प्रतीक है। वरुणदेव को जल, सत्य और नैतिक व्यवस्था का अधिष्ठाता माना गया है। सरस्वती, दृषद्वती तथा अन्य नदियों से जुड़े होने के कारण कुरुक्षेत्र क्षेत्र में जल-पूजन की परंपरा अत्यंत प्राचीन रही है। जल को जीवन का आधार मानते हुए ऋषियों ने नदियों, सरोवरों और कुंडों को तीर्थ का स्वरूप प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त ब्रह्म तीर्थ का संबंध सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से माना जाता है। परंपरा के अनुसार ब्रह्माजी ने कुरुक्षेत्र क्षेत्र में अनेक यज्ञ सम्पन्न किए, जिसके कारण यह भूमि वैदिक यज्ञ परंपरा का महान केंद्र बनी। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र को प्राचीन काल से "धर्मक्षेत्र" और "यज्ञभूमि" के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

मेरे 48 कोस कुरुक्षेत्र के शोध-भ्रमण के दौरान यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि आज भी इन वैदिक तीर्थों के प्रति लोगों की श्रद्धा अक्षुण्ण बनी हुई है। श्रद्धालु विभिन्न पर्वों, अमावस्या, पूर्णिमा, ग्रहण और गीता जयंती जैसे अवसरों पर इन तीर्थों में स्नान, पूजा और दान करते हैं। यह परंपरा सिद्ध करती है कि

वैदिक संस्कृति केवल इतिहास का विषय नहीं है, बल्कि आज भी जनजीवन में जीवंत रूप से विद्यमान है।

भाग-3 : वर्तमान स्वरूप, संरक्षण और सनातन परंपरा की निरंतरता

48 कोस कुरुक्षेत्र के सूर्य, सोम तथा अन्य वैदिक तीर्थ केवल प्राचीन इतिहास की स्मृतियाँ नहीं हैं, बल्कि आज भी सनातन आस्था के जीवंत केंद्र हैं। हजारों वर्षों से यहाँ स्नान, पूजा, यज्ञ, दान, जप और तप की परंपरा निरंतर चली आ रही है। प्रत्येक वर्ष गीता जयंती, सूर्यग्रहण, सोमवती अमावस्या, मकर संक्रांति तथा अन्य धार्मिक पर्वों पर देश-विदेश से लाखों श्रद्धालु इन तीर्थों में पहुँचकर अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक संस्कृति आज भी भारतीय जनमानस में उसी श्रद्धा के साथ जीवित है।

मेरे द्वारा किए गए 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रत्यक्ष शोध-भ्रमण के दौरान यह अनुभव हुआ कि अनेक वैदिक तीर्थ समय के साथ अपना प्राचीन स्वरूप खो चुके हैं। प्राकृतिक परिवर्तन, सरस्वती नदी के विलुप्त प्रवाह, शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा आधुनिक विकास कार्यों के कारण कई प्राचीन स्थल अब गाँवों, नगरों और कृषि क्षेत्रों का हिस्सा बन चुके हैं। फिर भी इन तीर्थों की धार्मिक परंपरा, लोकविश्वास और सांस्कृतिक पहचान आज भी सुरक्षित है।

इस शोध-यात्रा के दौरान एक सुखद अनुभव यह भी रहा कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों के संरक्षण, विकास और प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय कार्य किया है। अनेक तीर्थों पर सूचना-पट्ट, स्वच्छता व्यवस्था, तीर्थ मार्गों का विकास, सरोवरों का सौंदर्यीकरण तथा श्रद्धालुओं के लिए मूलभूत सुविधाओं का विस्तार यह दर्शाता है कि इस महान विरासत को सुरक्षित रखने के लिए गंभीर प्रयास किए जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ मुझे भ्रमण करने का अवसर मिला, वहाँ यह कार्य स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। यह प्रयास आने वाली पीढ़ियों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

वैदिक तीर्थ केवल धार्मिक स्थलों के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-परंपरा, पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक समरसता के भी प्रतीक हैं। सूर्य हमें कर्म, अनुशासन और ऊर्जा का संदेश देते हैं, सोम शांति और संतुलन का, अग्नि यज्ञ और समर्पण का, वरुण जल संरक्षण का तथा इन्द्र प्रकृति के संतुलन का संदेश देते हैं। इन देवताओं की उपासना के माध्यम से हमारे ऋषियों ने मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने की अद्भुत परंपरा विकसित की थी।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इन वैदिक तीर्थों को केवल पूजा-अर्चना तक सीमित न रखें, बल्कि उनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय महत्व को भी समझें।

विद्यालयों, महाविद्यालयों, शोध संस्थानों तथा सामाजिक संगठनों को इन स्थलों के अध्ययन, संरक्षण और जन-जागरूकता के कार्यों से जोड़ा जाना चाहिए। इससे नई पीढ़ी अपनी प्राचीन विरासत को समझ सकेगी और उसके संरक्षण के लिए प्रेरित होगी।

इस शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र के सूर्य, सोम एवं अन्य वैदिक तीर्थ भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर हैं। ये तीर्थ वैदिक ऋषियों की तपस्या, यज्ञ परंपरा, प्रकृति-पूजन और सनातन संस्कृति की अखंड धारा के जीवंत प्रतीक हैं। इनका संरक्षण केवल धार्मिक दायित्व नहीं, बल्कि हमारी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जिम्मेदारी भी है। जब तक इन तीर्थों की परंपरा जीवित रहेगी, तब तक वैदिक संस्कृति का प्रकाश भी आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करता रहेगा।

अध्याय–21

ऋषि परंपरा, आश्रम, यज्ञ और गुरुकुल

भाग-1 : कुरुक्षेत्र - वैदिक ऋषियों की तपोभूमि

कुरुक्षेत्र को सामान्यतः महाभारत के युद्ध से जोड़कर देखा जाता है, किन्तु इसका वास्तविक स्वरूप इससे कहीं अधिक व्यापक और प्राचीन है। वैदिक साहित्य, महाभारत तथा पुराणों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह भूमि हजारों वर्षों तक ऋषियों की तपोभूमि, यज्ञभूमि, आश्रम संस्कृति और गुरुकुल परंपरा का महान केंद्र रही। इसी कारण प्राचीन ग्रंथों में कुरुक्षेत्र को "धर्मक्षेत्र", "ब्रह्मक्षेत्र" तथा "ऋषियों की भूमि" जैसी सम्मानसूचक उपाधियाँ प्रदान की गई हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण तथा ब्रह्म पुराण में कुरुक्षेत्र की महिमा का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य स्थित यह क्षेत्र वैदिक ऋषियों के लिए साधना, यज्ञ और ज्ञान के प्रसार का सबसे उपयुक्त स्थान माना जाता था। यहाँ का शांत प्राकृतिक वातावरण, जलसंपन्नता और विस्तृत वन क्षेत्र आश्रम जीवन के लिए आदर्श थे।

वैदिक काल में ऋषि केवल धार्मिक गुरु नहीं थे, बल्कि वे समाज के मार्गदर्शक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, शिक्षक, चिकित्सक

और राष्ट्रचिंतक भी थे। उन्होंने वेदों का संरक्षण किया, यज्ञ परंपरा को व्यवस्थित किया, गुरुकुलों की स्थापना की और मानव जीवन के लिए धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के संतुलित मार्ग का उपदेश दिया। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यही रही कि ज्ञान का केंद्र राजमहल नहीं, बल्कि ऋषियों के आश्रम थे।

कुरुक्षेत्र क्षेत्र में अनेक महर्षियों के आश्रमों का उल्लेख मिलता है। महर्षि वेदव्यास, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि मार्कण्डेय, महर्षि दुर्वासा, महर्षि लोमश, महर्षि कपिल, महर्षि गौतम, महर्षि पराशर तथा महर्षि कण्व जैसे महान ऋषियों की तपस्या और प्रवास से जुड़ी परंपराएँ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक स्मृति का महत्वपूर्ण भाग हैं। यद्यपि प्रत्येक आश्रम का सटीक पुरातात्त्विक स्थान आज उपलब्ध नहीं है, फिर भी अनेक तीर्थ, कुंड और स्थानीय परंपराएँ इन ऋषियों की स्मृतियों को आज भी जीवित रखे हुए हैं।

प्राचीन भारत की आश्रम व्यवस्था केवल साधुओं के निवास का स्थान नहीं थी। आश्रम शिक्षा, अनुसंधान, कृषि, औषधि निर्माण, योग, आयुर्वेद, ज्योतिष, शास्त्रार्थ और चरित्र निर्माण के समग्र केंद्र थे। यहाँ राजाओं के पुत्र और सामान्य परिवारों के बालक समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु और शिष्य का संबंध केवल ज्ञान तक सीमित नहीं था, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र

में अनुशासन, सेवा, विनम्रता और आत्मनिर्भरता का प्रशिक्षण दिया जाता था।

मेरे द्वारा 48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान अनेक ऐसे तीर्थों, आश्रम स्थलों और प्राचीन क्षेत्रों का प्रत्यक्ष अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ, जहाँ स्थानीय परंपराएँ आज भी ऋषियों के निवास, तपस्या और यज्ञों की स्मृतियों को संजोए हुए हैं। यद्यपि समय के साथ इन स्थलों का स्वरूप परिवर्तित हो चुका है, फिर भी उनकी आध्यात्मिक महत्ता और सांस्कृतिक पहचान आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कुरुक्षेत्र केवल महाभारत के युद्ध का क्षेत्र नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-परंपरा, ऋषि संस्कृति, आश्रम व्यवस्था और गुरुकुल शिक्षा का भी एक महान केंद्र था। यही वह भूमि है जहाँ से धर्म, ज्ञान, तप और संस्कार की ऐसी धारा प्रवाहित हुई, जिसने भारतीय सभ्यता को विश्व में विशिष्ट पहचान प्रदान की।

भाग-2 : यज्ञ परंपरा, गुरुकुल शिक्षा और आश्रम व्यवस्था

वैदिक सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता ऋषि परंपरा, यज्ञ संस्कृति और गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था थी। इन तीनों ने मिलकर भारतीय समाज को ज्ञान, नैतिकता, आध्यात्मिकता और अनुशासन का आधार प्रदान किया। कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि इस महान परंपरा का प्रमुख केंद्र रही, जहाँ असंख्य

ऋषियों ने अपने आश्रम स्थापित किए और यज्ञों के माध्यम से धर्म तथा लोककल्याण का संदेश दिया।

यज्ञ वैदिक संस्कृति का मूल आधार था। वेदों में यज्ञ को केवल अग्नि में आहुति देने का कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि समर्पण, लोकमंगल, पर्यावरण संरक्षण और सामूहिक कल्याण का प्रतीक माना गया है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में विभिन्न प्रकार के यज्ञों का उल्लेख मिलता है। इन यज्ञों के माध्यम से समाज में सद्भाव, प्राकृतिक संतुलन और आध्यात्मिक चेतना को विकसित करने का प्रयास किया जाता था। प्राचीन काल में कुरुक्षेत्र के अनेक यज्ञस्थलों पर राजसूय, अश्वमेध, अग्निष्टोम तथा अन्य वैदिक अनुष्ठानों का आयोजन होने की परंपरा का उल्लेख पुराणों और महाभारत में मिलता है।

कुरुक्षेत्र को यज्ञभूमि भी कहा गया है। मान्यता है कि अनेक राजर्षियों, महर्षियों तथा देवताओं ने इस पावन भूमि पर यज्ञ सम्पन्न किए। ब्रह्मा द्वारा सृष्टि के आरंभ में यज्ञ, राजा कुरु की तपस्या, तथा विभिन्न ऋषियों के वैदिक अनुष्ठानों ने इस क्षेत्र को धर्म और यज्ञ की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि आज भी यहाँ अनेक यज्ञशालाएँ और वैदिक अनुष्ठान निरंतर आयोजित होते रहते हैं।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर रही है। गुरुकुलों में शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्या प्राप्त करना नहीं था, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मसंयम, सेवा, अनुशासन और

राष्ट्रधर्म की भावना का विकास करना भी था। विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। वहाँ राजकुमार और सामान्य परिवार का बालक बिना किसी भेदभाव के एक साथ अध्ययन करते थे। गुरु अपने शिष्यों को वेद, वेदांग, उपनिषद, व्याकरण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, योग, दर्शन तथा नीति का ज्ञान प्रदान करते थे।

आश्रमों का जीवन अत्यंत सरल, अनुशासित और आत्मनिर्भर होता था। प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठना, स्नान, संध्या-वंदन, यज्ञ, अध्ययन, गो-सेवा, वृक्षारोपण, कृषि कार्य, औषधीय पौधों का संरक्षण तथा गुरु की सेवा दैनिक जीवन का अभिन्न भाग थे। शिक्षा के साथ-साथ श्रम का सम्मान भी गुरुकुल व्यवस्था का महत्वपूर्ण सिद्धांत था। इसी प्रणाली ने भारत को ऐसे विद्वान, योद्धा, चिकित्सक, दार्शनिक और समाज सुधारक दिए, जिन्होंने भारतीय सभ्यता को विश्व में विशिष्ट स्थान दिलाया।

मेरे 48 कोस कुरुक्षेत्र के शोध-भ्रमण के दौरान अनेक ऐसे तीर्थों, प्राचीन स्थलों और आश्रम परंपरा से जुड़े क्षेत्रों का अध्ययन करने का अवसर मिला, जहाँ आज भी वैदिक यज्ञ, वेदपाठ, धार्मिक अनुष्ठान और संस्कृत शिक्षा की परंपरा जीवित है। यद्यपि प्राचीन गुरुकुलों का मूल स्वरूप समय के साथ परिवर्तित हो चुका है, फिर भी उनकी सांस्कृतिक विरासत आज

भी विभिन्न आश्रमों, मंदिरों और धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से संरक्षित है।

यह स्पष्ट है कि ऋषि परंपरा, यज्ञ संस्कृति और गुरुकुल शिक्षा ने भारतीय सभ्यता को केवल धार्मिक नहीं, बल्कि नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक रूप से भी समृद्ध बनाया। कुरुक्षेत्र की भूमि इस महान विरासत की साक्षी है, जहाँ ज्ञान और धर्म का प्रकाश सहस्राब्दियों से मानवता का मार्गदर्शन करता आया है।

भाग-3 : ऋषि परंपरा की निरंतरता, संरक्षण और भविष्य की दिशा

भारतीय सभ्यता का वास्तविक आधार राजमहलों में नहीं, बल्कि ऋषियों के आश्रमों में विकसित हुआ। वेदों की ऋचाएँ, उपनिषदों का ज्ञान, महाकाव्यों की रचना, आयुर्वेद, योग, दर्शन, ज्योतिष, व्याकरण तथा भारतीय जीवन-मूल्यों का विकास आश्रमों और गुरुकुलों की पावन भूमि पर ही हुआ। इसी महान परंपरा ने भारत को "विश्वगुरु" के रूप में प्रतिष्ठित किया। कुरुक्षेत्र इस गौरवशाली परंपरा का प्रमुख केंद्र रहा, जहाँ ज्ञान और तप की अखंड धारा सहस्राब्दियों तक प्रवाहित होती रही।

महर्षि वेदव्यास, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि दुर्वासा, महर्षि मार्कण्डेय, महर्षि पराशर, महर्षि कण्व तथा अनेक अन्य ऋषियों की परंपराएँ आज भी कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक स्मृतियों

में जीवित हैं। यद्यपि समय के साथ अधिकांश प्राचीन आश्रमों का मूल स्वरूप परिवर्तित हो गया है, फिर भी अनेक तीर्थ, सरोवर, कुंड, मंदिर और स्थानीय परंपराएँ आज भी उन ऋषियों की तपस्या और ज्ञान-साधना की स्मृति को सुरक्षित रखे हुए हैं।

मेरे द्वारा 48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान यह अनुभव हुआ कि आज भी अनेक आश्रमों, मंदिरों और धार्मिक संस्थानों में वैदिक परंपराएँ जीवित हैं। वेदपाठ, यज्ञ, गीता प्रवचन, संस्कृत अध्ययन, योग, गौ-सेवा तथा धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन निरंतर होता रहता है। यह देखकर संतोष होता है कि हजारों वर्षों पुरानी ऋषि परंपरा आज भी समाज को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दिशा प्रदान कर रही है।

इस शोध-यात्रा का एक महत्वपूर्ण अनुभव यह भी रहा कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों, आश्रमों और प्राचीन धार्मिक स्थलों के संरक्षण एवं विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है। तीर्थों का सौंदर्यीकरण, सूचना-पट्टों की स्थापना, तीर्थ मार्गों का विकास, स्वच्छता व्यवस्था तथा श्रद्धालुओं के लिए मूलभूत सुविधाओं का विस्तार यह दर्शाता है कि इस महान विरासत को सुरक्षित रखने के लिए गंभीर प्रयास किए जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ मुझे भ्रमण करने का अवसर मिला, वहाँ यह कार्य स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। यह केवल

पर्यटन का विकास नहीं, बल्कि भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण का महत्वपूर्ण अभियान है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि नई पीढ़ी केवल आधुनिक शिक्षा तक सीमित न रहे, बल्कि भारतीय ऋषियों के ज्ञान, गुरुकुल व्यवस्था, पर्यावरण संरक्षण, नैतिक मूल्यों और सेवा-भाव को भी समझे। यदि शिक्षा में भारतीय ज्ञान-परंपरा, संस्कृत, योग, वैदिक साहित्य और सांस्कृतिक इतिहास का समुचित समावेश किया जाए, तो युवा पीढ़ी अपनी जड़ों से अधिक सशक्त रूप से जुड़ सकेगी।

इस शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कुरुक्षेत्र की ऋषि परंपरा, आश्रम व्यवस्था, यज्ञ संस्कृति और गुरुकुल शिक्षा भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर हैं। इनका संरक्षण केवल धार्मिक दायित्व नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय जिम्मेदारी भी है। यदि हम अपने ऋषियों की इस महान विरासत का सम्मान करेंगे और उसे भावी पीढ़ियों तक पहुँचाएँगे, तभी सनातन संस्कृति का ज्ञान-प्रकाश युगों-युगों तक मानवता का मार्गदर्शन करता रहेगा।

प्रमुख संदर्भ

• ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद

• महाभारत (शल्यपर्व 53.13-14 सहित)

• वामन पुराण (22.33-34, 34.1-5 सहित) – राजा कुरु की कथा एवं सप्तवन वर्णन

• नारदीय पुराण (65.4-7), स्कन्द पुराण, ब्रह्म पुराण

• कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के आधिकारिक प्रकाशन एवं तीर्थ-विवरण

• लेखक का प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण एवं शोध (2026)

अध्याय–22

पिहोवा (पृथूदक तीर्थ) : पितृ-संस्कार, श्राद्ध और सनातन परम्परा

भाग-1 : पृथूदक तीर्थ का इतिहास, महात्म्य और प्रत्यक्ष यात्रा

हरियाणा के कुरुक्षेत्र जनपद में स्थित पिहोवा, जिसका प्राचीन नाम पृथूदक है, भारत के सबसे प्राचीन और पवित्र पितृ-तीर्थों में से एक माना जाता है। वैदिक साहित्य, महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में इस तीर्थ की महिमा का वर्णन मिलता है। सनातन परम्परा में यह विश्वास है कि यहाँ श्रद्धापूर्वक किए गए श्राद्ध, तर्पण और पिण्डदान से पितरों को तृप्ति प्राप्त होती है तथा वंशजों को उनका आशीर्वाद मिलता है। इसी कारण पृथूदक तीर्थ को भारत के प्रमुख पितृ-तीर्थों में विशेष स्थान प्राप्त है।

'पृथूदक' नाम का संबंध प्राचीन परम्परा के अनुसार राजा पृथु से माना जाता है। कहा जाता है कि राजा पृथु ने इस पावन क्षेत्र में अपने पितरों के निमित्त तर्पण और धार्मिक अनुष्ठान किए थे। कालान्तर में पृथूदक का नाम परिवर्तित होकर पिहोवा प्रचलित हो गया, किन्तु इसकी धार्मिक प्रतिष्ठा और आध्यात्मिक महिमा आज भी पूर्ववत बनी हुई है।

पिहोवा का महत्व केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ से प्राप्त पिहोवा अभिलेख (Pehowa Inscription) प्रारम्भिक मध्यकालीन उत्तर भारत के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। यह अभिलेख तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है और सिद्ध करता है कि पिहोवा प्राचीन काल से ही एक प्रतिष्ठित तीर्थ एवं सांस्कृतिक केंद्र रहा है।

पिहोवा का संबंध सरस्वती नदी से भी जुड़ा हुआ है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णन मिलता है कि सरस्वती के पवित्र तट पर अनेक ऋषियों ने तपस्या की और यज्ञ सम्पन्न किए। इसी कारण पृथूदक तीर्थ वैदिक संस्कृति, पितृ-संस्कार और ऋषि परम्परा का एक अद्वितीय संगम बन गया। आज भी देश के विभिन्न राज्यों से श्रद्धालु अपने पितरों के निमित्त यहाँ आकर श्राद्ध, तर्पण और पिण्डदान करते हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की अपनी शोध-यात्रा के दौरान मुझे इस पवित्र तीर्थ पर अनेक बार आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, मेरे पोते भावेश स्वामी तथा दिव्यांशी स्वामी के साथ मैंने पृथूदक तीर्थ, सरस्वती तट, प्राचीन मंदिरों और धार्मिक स्थलों का प्रत्यक्ष दर्शन एवं अध्ययन किया। प्रत्येक यात्रा में यह अनुभव हुआ कि पिहोवा केवल एक तीर्थ नहीं, बल्कि हजारों वर्षों से जीवित सनातन संस्कृति का

एक महान केंद्र है। यहाँ श्रद्धालुओं की आस्था, वैदिक परम्पराओं का पालन और धार्मिक वातावरण इस पवित्र भूमि की ऐतिहासिक गरिमा को आज भी अक्षुण्ण बनाए हुए है।

मेरे शोध का उद्देश्य केवल पौराणिक कथाओं का उल्लेख करना नहीं, बल्कि उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों, स्थानीय परम्पराओं तथा प्रत्यक्ष यात्रा के आधार पर पिहोवा के वास्तविक स्वरूप को समझना और पाठकों तक पहुँचाना है। पृथूदक तीर्थ का महत्व इस बात में भी निहित है कि यहाँ धर्म, इतिहास, पुरातत्त्व और लोकआस्था एक-दूसरे के साथ समन्वित रूप में दिखाई देते हैं।

इस प्रकार पिहोवा (पृथूदक) केवल एक तीर्थ नहीं, बल्कि भारतीय पितृ-संस्कार, वैदिक परम्परा, सरस्वती सभ्यता और सनातन संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, जिसका महत्व आज भी उतना ही है जितना प्राचीन काल में था।

भाग-2 : श्राद्ध, तर्पण, सरस्वती तट और पिहोवा की जीवित परम्परा

पिहोवा (प्राचीन पृथूदक) का सबसे बड़ा महत्व पितृ-संस्कारों के कारण है। सनातन धर्म में यह विश्वास है कि मनुष्य केवल अपने वर्तमान जीवन से ही नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों की परम्परा से भी जुड़ा होता है। इसलिए वेद, स्मृतियों और पुराणों में पितरों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए श्राद्ध, तर्पण

और पिण्डदान का विधान बताया गया है। भारत के जिन प्रमुख पितृ-तीर्थों का विशेष महत्व है, उनमें पिहोवा का स्थान अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है।

महाभारत और पुराणों में वर्णित है कि कुरुक्षेत्र क्षेत्र में किए गए धार्मिक अनुष्ठानों का विशेष पुण्य प्राप्त होता है। पिहोवा में श्रद्धालु अपने पितरों की स्मृति में विधिपूर्वक तर्पण करते हैं और उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करते हैं। विशेष रूप से अमावस्या, पितृपक्ष, सोमवती अमावस्या, सूर्यग्रहण और अन्य शुभ अवसरों पर देश के विभिन्न राज्यों से हजारों श्रद्धालु यहाँ पहुँचते हैं। यह परम्परा सदियों से निरंतर चली आ रही है।

पिहोवा का धार्मिक जीवन सरस्वती नदी की प्राचीन परम्परा से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। यद्यपि सरस्वती का प्राचीन प्रवाह आज प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता, फिर भी इस क्षेत्र की सांस्कृतिक स्मृति और धार्मिक परम्पराएँ उसी वैदिक धारा को जीवित रखे हुए हैं। सरस्वती तट पर स्थित अनेक मंदिर, घाट और धार्मिक स्थल इस बात के प्रमाण हैं कि यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही वैदिक यज्ञों, ऋषियों की तपस्या और धार्मिक अनुष्ठानों का प्रमुख केंद्र रहा है।

पिहोवा नगर में स्थित प्राचीन मंदिर, सरोवर, घाट और धर्मशालाएँ आज भी तीर्थयात्रियों की सेवा में समर्पित हैं। यहाँ अनेक पुरोहित परिवार पीढ़ियों से वंशावलियों का संरक्षण कर

रहे हैं। भारत के विभिन्न प्रदेशों से आने वाले परिवार अपने पूर्वजों का विवरण इन वंशावली अभिलेखों में दर्ज करवाते रहे हैं। इतिहास और समाजशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से ये अभिलेख अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं, क्योंकि वे अनेक परिवारों की पीढ़ियों का क्रमबद्ध विवरण सुरक्षित रखते हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान मुझे पिहोवा आने का अनेक बार अवसर मिला। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, मेरे पोते भावेश स्वामी तथा दिव्यांशी स्वामी के साथ मैंने सरस्वती तट, घाटों, मंदिरों और धार्मिक स्थलों का प्रत्यक्ष अवलोकन किया। प्रत्येक यात्रा में श्रद्धालुओं की अटूट आस्था, पुरोहितों द्वारा विधिपूर्वक सम्पन्न कराए जा रहे संस्कार तथा तीर्थ की शांत आध्यात्मिक गरिमा ने यह अनुभव कराया कि पृथूदक केवल इतिहास का विषय नहीं, बल्कि आज भी जीवंत सनातन परम्परा का केंद्र है।

मेरे अध्ययन के दौरान यह भी स्पष्ट हुआ कि पिहोवा का महत्व केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है। यह नगर भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति और सामाजिक परम्पराओं के अध्ययन का भी एक महत्वपूर्ण केंद्र है। यहाँ की धार्मिक परम्पराएँ, वंशावली लेखन की प्राचीन व्यवस्था और सरस्वती से जुड़ी मान्यताएँ भारतीय सभ्यता की निरंतरता का सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

इस प्रकार पिहोवा (पृथूदक) श्रद्धा, इतिहास, संस्कृति और वैदिक परम्परा का अद्भुत संगम है। यहाँ आज भी अतीत और वर्तमान एक साथ दिखाई देते हैं। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है, जो इसे 48 कोस कुरुक्षेत्र के सबसे महत्वपूर्ण तीर्थों में स्थान प्रदान करती है।

भाग-3 : ऐतिहासिक महत्व, शोध-यात्रा और निष्कर्ष

पिहोवा (प्राचीन पृथूदक) केवल एक पवित्र तीर्थ ही नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व और सनातन संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। यहाँ प्राप्त पिहोवा अभिलेख (लगभग 9वीं शताब्दी ईस्वी), जिसे गुर्जर-प्रतिहार सम्राट महेंद्रपाल प्रथम के शासनकाल का माना जाता है, उत्तर भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इस अभिलेख से तत्कालीन शासन व्यवस्था, धार्मिक जीवन, तीर्थ-परम्परा और सामाजिक संरचना के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यही कारण है कि इतिहासकार और पुरातत्त्वविद् पृथूदक को भारत के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों में सम्मिलित करते हैं।

पिहोवा की एक अन्य विशिष्ट पहचान यहाँ की वंशावली परम्परा है। अनेक पुरोहित परिवार सदियों से तीर्थयात्रियों के कुल, गोत्र और पारिवारिक विवरणों का संरक्षण करते आ रहे हैं। ये वंशावली अभिलेख भारतीय समाज, संस्कृति और पारिवारिक इतिहास के अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज़ हैं और आज भी यह परम्परा निरंतर जारी है।

48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान मुझे कई बार पृथूदक तीर्थ आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस यात्रा में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, मेरे पोते भावेश स्वामी तथा दिव्यांशी स्वामी भी मेरे साथ रहे। हमने सरस्वती तट, पवित्र घाटों, प्राचीन मंदिरों, धार्मिक स्थलों तथा तीर्थ क्षेत्र का पैदल भ्रमण कर प्रत्यक्ष अध्ययन किया। श्रद्धालुओं द्वारा श्रद्धापूर्वक किए जा रहे श्राद्ध, तर्पण और पिण्डदान के संस्कारों को निकट से देखने का अवसर मिला। तीर्थ का शांत वातावरण, वैदिक मंत्रों की ध्वनि और श्रद्धालुओं की अटूट आस्था ने इस यात्रा को अत्यंत प्रेरणादायक बना दिया।

एक शोधकर्ता के रूप में मेरा उद्देश्य केवल धार्मिक मान्यताओं का वर्णन करना नहीं था, बल्कि इस तीर्थ की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत को प्रत्यक्ष रूप से समझना भी था। इस यात्रा के दौरान स्थानीय लोगों, पुरोहितों और तीर्थ से जुड़े व्यक्तियों से संवाद कर अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुईं, जिन्होंने इस अध्याय को और अधिक प्रामाणिक बनाने में सहायता की।

मेरे अध्ययन के दौरान यह भी अनुभव हुआ कि समय के साथ नगर का स्वरूप बदला है, किन्तु पृथूदक की धार्मिक परम्परा आज भी पूरी श्रद्धा के साथ जीवित है। स्थानीय समाज, मंदिर समितियाँ, पुरोहित वर्ग तथा प्रशासन इस पवित्र धरोहर के संरक्षण में निरंतर योगदान दे रहे हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने पिहोवा सहित 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों के संरक्षण, सौंदर्यीकरण, सूचना-पट्टों की स्थापना, तीर्थ मार्गों के विकास तथा श्रद्धालुओं की सुविधाओं के विस्तार में सराहनीय कार्य किया है। मेरे प्रत्यक्ष भ्रमण के आधार पर यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि यह संस्था केवल पर्यटन ही नहीं, बल्कि भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए भी गंभीरता से कार्य कर रही है।

इस शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पिहोवा (पृथूदक) भारतीय पितृ-संस्कार, सरस्वती सभ्यता, वैदिक परम्परा और ऐतिहासिक चेतना का अद्वितीय संगम है। यह तीर्थ केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि आज भी जीवित सनातन संस्कृति का प्रेरणास्रोत है। इसके संरक्षण और संवर्धन की जिम्मेदारी हम सभी की है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस अमूल्य धरोहर से प्रेरणा प्राप्त करती रहें।

प्रमुख संदर्भ

• महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण

• पिहोवा अभिलेख – गुर्जर-प्रतिहार सम्राट महेंद्रपाल प्रथम के शासनकाल (लगभग 885–910 ई.), जिसमें तोमरवंशी गोग्ग व उनके भाइयों द्वारा सरस्वती तट पर विष्णु मंदिरों के निर्माण का उल्लेख है

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

• कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड — आधिकारिक तीर्थ-विवरण

• लेखक का प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण एवं शोध (2026) — सहयात्री: श्रीमती निर्मला वैष्णव, भावेश स्वामी, दिव्यांशी स्वामी

अध्याय–23

पिहोवा से थानेसर : पुरातात्त्विक साक्ष्य

भाग-1 : प्राचीन सभ्यता की सजीव धरोहर

कुरुक्षेत्र की पावन भूमि केवल धार्मिक आस्था का केंद्र ही नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता और इतिहास की एक समृद्ध पुरातात्त्विक धरोहर भी है। विशेष रूप से पिहोवा (प्राचीन पृथूदक) से थानेसर (प्राचीन स्थानेश्वर) तक का क्षेत्र हजारों वर्षों की सांस्कृतिक निरंतरता का साक्षी रहा है। इस क्षेत्र में प्राप्त अभिलेख, प्राचीन टीले, मूर्तियाँ, मंदिर अवशेष, ईंटों के ढाँचे, सिक्के, मिट्टी के पात्र तथा अन्य पुरातात्त्विक सामग्री यह प्रमाणित करती है कि यह भूभाग वैदिक काल, महाभारत काल, उत्तरवैदिक युग, गुप्तकाल, पुष्यभूति वंश तथा मध्यकाल तक निरंतर आबाद और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध रहा।

पिहोवा का प्राचीन नाम पृथूदक था। यह नगर सरस्वती नदी के तट पर स्थित एक प्रमुख तीर्थ और सांस्कृतिक केंद्र के रूप में प्रसिद्ध रहा। यहाँ प्राप्त पिहोवा अभिलेख (लगभग 9वीं शताब्दी ईस्वी), जिसे गुर्जर-प्रतिहार काल से संबंधित माना जाता है, उत्तर भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इस अभिलेख से तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था, भूमि दान, तीर्थ प्रशासन तथा सामाजिक जीवन के विषय में बहुमूल्य जानकारी

प्राप्त होती है। इतिहासकार इसे हरियाणा के प्रमुख अभिलेखीय साक्ष्यों में सम्मिलित करते हैं।

दूसरी ओर थानेसर, जिसका प्राचीन नाम स्थानेश्वर है, प्राचीन काल से धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण नगर रहा है। यह नगर विशेष रूप से पुष्यभूति (वर्धन) वंश की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हुआ। महाराज प्रभाकरवर्धन और सम्राट हर्षवर्धन के शासनकाल में थानेसर ज्ञान, धर्म, कला और प्रशासन का प्रमुख केंद्र बन गया। यहाँ से प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेष इस गौरवशाली इतिहास की पुष्टि करते हैं।

पिहोवा और थानेसर के मध्य स्थित क्षेत्र में समय-समय पर हुए पुरातात्त्विक सर्वेक्षणों और उत्खननों से पेंटेड ग्रे वेयर (PGW), नॉर्दर्न ब्लैक पॉलिश्ड वेयर (NBPW), प्राचीन ईंटें, मिट्टी के पात्र, ताम्र एवं लौह उपकरण, सिक्के, मूर्तियाँ और स्थापत्य अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि यह क्षेत्र महाभारतकालीन एवं उत्तरवैदिक सभ्यता के विकास से जुड़ा रहा है।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) तथा हरियाणा के पुरातात्त्विक अनुसंधानों ने भी इस क्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार किया है। विभिन्न शोधों से यह स्पष्ट होता है कि सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्र में मानव बसावट, कृषि, धार्मिक गतिविधियाँ और व्यापारिक मार्ग अत्यंत विकसित थे। यही

कारण है कि पिहोवा से थानेसर तक का क्षेत्र भारतीय इतिहास के अध्ययन में विशेष महत्व रखता है।

48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान मुझे इस सम्पूर्ण क्षेत्र का अनेक बार भ्रमण करने का अवसर मिला। पिहोवा, थानेसर तथा इनके मध्य स्थित अनेक प्राचीन स्थलों का प्रत्यक्ष अवलोकन करते हुए यह अनुभव हुआ कि यहाँ इतिहास केवल पुस्तकों में ही नहीं, बल्कि मंदिरों, प्राचीन टीलों, सरोवरों, अभिलेखों और स्थानीय जनश्रुतियों में आज भी जीवित है। यही इस क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता है।

इस प्रकार पिहोवा से थानेसर तक का क्षेत्र केवल धार्मिक तीर्थों की श्रृंखला नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, वैदिक संस्कृति, सरस्वती सभ्यता और प्राचीन इतिहास का एक जीवंत पुरातात्त्विक गलियारा (Archaeological Corridor) है, जिसका व्यवस्थित अध्ययन भारतीय इतिहास को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भाग-2 : अभिलेख, उत्खनन और ऐतिहासिक प्रमाण

पिहोवा से थानेसर तक का क्षेत्र भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यहाँ प्राप्त अभिलेख, प्राचीन टीले, मूर्तियाँ, सिक्के, मृद्भाण्ड (मिट्टी के पात्र), ईंटों के अवशेष तथा मंदिर स्थापत्य इस बात के प्रमाण हैं कि यह क्षेत्र हजारों वर्षों से निरंतर

मानव सभ्यता का केंद्र रहा है। पुरातात्त्विक अनुसंधान यह स्पष्ट करते हैं कि इस भूभाग का विकास केवल धार्मिक आधार पर नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध था।

पिहोवा अभिलेख इस क्षेत्र का सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य माना जाता है। यह अभिलेख लगभग 9वीं शताब्दी ईस्वी का है और गुर्जर-प्रतिहार सम्राट महेंद्रपाल प्रथम के शासनकाल से संबंधित माना जाता है। इसमें तत्कालीन शासकों, भूमि दान, मंदिर व्यवस्था, तीर्थ प्रशासन तथा धार्मिक संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। इतिहासकारों के अनुसार यह अभिलेख सिद्ध करता है कि उस समय पृथूदक (पिहोवा) उत्तर भारत का एक प्रतिष्ठित तीर्थ एवं सांस्कृतिक केंद्र था, जहाँ देश के विभिन्न भागों से श्रद्धालु आते थे।

थानेसर (स्थानेश्वर) में भी अनेक महत्वपूर्ण पुरातात्त्विक अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ के प्राचीन टीलों और उत्खननों से विभिन्न कालों के अवशेष मिले हैं, जिनमें पेंटेड ग्रे वेयर (PGW), नॉर्दर्न ब्लैक पॉलिश्ड वेयर (NBPW), लाल मृद्भाण्ड, प्राचीन ईंटें, ताम्र एवं लौह उपकरण, मुद्राएँ तथा मूर्तिकला के नमूने शामिल हैं। इन खोजों से स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र उत्तरवैदिक काल से लेकर प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग और मध्यकाल तक निरंतर आबाद रहा।

पुरातात्विक अनुसंधानों से यह भी संकेत मिलता है कि सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में विकसित बस्तियाँ कृषि, व्यापार और धार्मिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र थीं। नदी के किनारे बसे नगरों और तीर्थों के कारण यह क्षेत्र उत्तर भारत के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक मार्गों से जुड़ा हुआ था। तीर्थयात्री, विद्वान, व्यापारी और साधु-संत इस मार्ग से निरंतर आवागमन करते थे, जिससे यहाँ की सांस्कृतिक समृद्धि और अधिक बढ़ी।

थानेसर क्षेत्र में स्थित स्थानेश्वर महादेव, ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर तथा अन्य प्राचीन स्थलों के आसपास भी समय-समय पर प्राप्त पुरातात्विक सामग्री इस क्षेत्र की ऐतिहासिक निरंतरता को प्रमाणित करती है। यद्यपि इन स्थलों का धार्मिक महत्व सर्वविदित है, किन्तु इनके पुरातात्विक प्रमाण भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे प्राचीन भारतीय सभ्यता के विकास की निरंतरता को दर्शाते हैं।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) तथा हरियाणा के पुरातत्त्व विभाग द्वारा समय-समय पर किए गए सर्वेक्षणों ने इस क्षेत्र के महत्व को और अधिक प्रमाणित किया है। अनेक स्थलों को संरक्षित स्मारक घोषित किया गया है तथा उनके संरक्षण और वैज्ञानिक अध्ययन का कार्य निरंतर जारी है। इससे आने वाली पीढ़ियों के लिए इस अमूल्य विरासत को सुरक्षित रखने में सहायता मिल रही है।

48 कोस कुरुक्षेत्र की मेरी शोध-यात्रा के दौरान पिहोवा से थानेसर तक के अनेक प्राचीन स्थलों, मंदिरों, टीलों, सरोवरों और ऐतिहासिक क्षेत्रों का प्रत्यक्ष अध्ययन करने का अवसर मिला। स्थल निरीक्षण के दौरान यह अनुभव हुआ कि यहाँ का प्रत्येक स्थान किसी न किसी ऐतिहासिक, धार्मिक अथवा सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ा हुआ है। स्थानीय जनश्रुतियाँ, प्राचीन स्थापत्य और उपलब्ध पुरातात्त्विक साक्ष्य एक-दूसरे की पुष्टि करते हुए इस क्षेत्र के गौरवशाली अतीत का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार पिहोवा से थानेसर तक का पुरातात्त्विक क्षेत्र यह सिद्ध करता है कि कुरुक्षेत्र केवल आस्था का केंद्र नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, सरस्वती सभ्यता, वैदिक संस्कृति और प्राचीन नगर सभ्यता के अध्ययन की एक महत्वपूर्ण प्रयोगशाला भी है।

भाग-3 : शोध-यात्रा, संरक्षण और निष्कर्ष

पिहोवा से थानेसर तक का क्षेत्र भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व और सनातन संस्कृति का एक जीवंत साक्ष्य है। यहाँ उपलब्ध अभिलेख, प्राचीन टीले, मंदिर, सरोवर, मूर्तियाँ, पुरावशेष तथा स्थानीय जनश्रुतियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि यह क्षेत्र वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक निरंतर धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बना हुआ है। यही कारण

है कि देश-विदेश के इतिहासकार, पुरातत्त्वविद् और शोधार्थी इस क्षेत्र का निरंतर अध्ययन करते रहे हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की अपनी शोध-यात्रा के दौरान मुझे अनेक बार पिहोवा से थानेसर तक के ऐतिहासिक मार्ग का प्रत्यक्ष अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रा में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, मेरे पोते भावेश स्वामी तथा दिव्यांशी स्वामी भी मेरे साथ रहे। हमने पृथूदक (पिहोवा), सरस्वती तट, ब्रह्मयोनि तीर्थ, स्थानेश्वर महादेव, ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर तथा मार्ग में स्थित अनेक प्राचीन स्थलों का भ्रमण किया। प्रत्येक स्थान पर स्थानीय परम्पराओं, धार्मिक मान्यताओं और उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों का अध्ययन किया तथा स्थल का प्रत्यक्ष अवलोकन किया।

इस शोध-यात्रा के दौरान यह अनुभव हुआ कि इतिहास केवल पुस्तकों और अभिलेखों तक सीमित नहीं है, बल्कि आज भी इन तीर्थों, मंदिरों, सरोवरों और प्राचीन अवशेषों में जीवंत रूप से विद्यमान है। स्थानीय लोगों की आस्था, पुरोहितों की परम्पराएँ और तीर्थों की निरंतरता यह प्रमाणित करती है कि हजारों वर्षों पुरानी सांस्कृतिक धारा आज भी अविरल प्रवाहित हो रही है।

यह भी स्पष्ट रूप से देखने को मिला कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने 48 कोस कुरुक्षेत्र की इस ऐतिहासिक एवं धार्मिक विरासत के संरक्षण में उल्लेखनीय योगदान दिया है। अनेक तीर्थों पर

सूचना-पट्ट, स्वच्छता व्यवस्था, तीर्थ मार्गों का विकास, सरोवरों का सौंदर्यीकरण, प्रकाश व्यवस्था तथा श्रद्धालुओं के लिए मूलभूत सुविधाओं का विस्तार इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन धरोहरों को आधुनिक समय की आवश्यकताओं के अनुरूप सुरक्षित रखने का गंभीर प्रयास किया जा रहा है। मेरे प्रत्यक्ष भ्रमण के आधार पर यह कार्य अत्यंत सराहनीय प्रतीत हुआ।

पुरातात्त्विक दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि पिहोवा से थानेसर तक स्थित प्राचीन टीलों, अभिलेखों, मंदिरों और अन्य पुरास्थलों पर निरंतर वैज्ञानिक अनुसंधान किए जाएँ। आधुनिक तकनीकों, पुरातात्त्विक उत्खननों तथा अभिलेखीय अध्ययन से भविष्य में इस क्षेत्र के इतिहास के अनेक नए तथ्य सामने आ सकते हैं। साथ ही स्थानीय समाज की सहभागिता से इस विरासत का संरक्षण और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

इस शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पिहोवा से थानेसर तक का क्षेत्र केवल तीर्थयात्रा का मार्ग नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, सरस्वती संस्कृति, वैदिक परम्परा, महाभारतकालीन इतिहास और मध्यकालीन विरासत का एक अद्वितीय पुरातात्त्विक क्षेत्र है। यहाँ उपलब्ध साक्ष्य यह प्रमाणित करते हैं कि कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक यात्रा हजारों वर्षों से निरंतर चलती रही है। इस अमूल्य धरोहर का संरक्षण,

वैज्ञानिक अध्ययन और भावी पीढ़ियों तक इसका प्रामाणिक ज्ञान पहुँचाना हम सभी का सामूहिक दायित्व है।

प्रमुख संदर्भ

• पिहोवा अभिलेख – गुर्जर-प्रतिहार सम्राट महेंद्रपाल प्रथम काल (लगभग 885–910 ई.)

• पुष्यभूति (वर्धन) वंश — स्थानेश्वर (थानेसर) राजधानी, महाराज प्रभाकरवर्धन एवं सम्राट हर्षवर्धन का शासनकाल; ह्वेनसांग तथा बाणभट्ट-रचित हर्षचरित में वर्णित

• भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) एवं हरियाणा पुरातत्त्व विभाग के सर्वेक्षण

• लेखक का प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण एवं शोध (2026) — सहयात्री: श्रीमती निर्मला वैष्णव, भावेश स्वामी, दिव्यांशी स्वामी

अध्याय–24

कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिर और धार्मिक स्थापत्य

भाग-1 : सनातन आस्था और स्थापत्य की अमर विरासत

कुरुक्षेत्र केवल महाभारत की युद्धभूमि या भगवान श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश की भूमि ही नहीं है, बल्कि यह भारत की प्राचीन मंदिर परम्परा और धार्मिक स्थापत्य कला का भी एक महत्वपूर्ण केंद्र है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक इस पवित्र क्षेत्र में असंख्य मंदिर, देवालय, मठ, आश्रम, तीर्थ और सरोवर विकसित हुए, जिन्होंने सनातन संस्कृति की निरंतरता को जीवित रखा है। इन मंदिरों में केवल पूजा-अर्चना ही नहीं होती रही, बल्कि वे शिक्षा, धर्म, समाज सेवा, कला और संस्कृति के भी प्रमुख केंद्र रहे हैं।

कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिरों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। यद्यपि समय, प्राकृतिक परिवर्तनों और विदेशी आक्रमणों के कारण अनेक प्राचीन मंदिर नष्ट हो गए या उनका स्वरूप बदल गया, फिर भी इस क्षेत्र की धार्मिक परम्परा कभी समाप्त नहीं हुई। विभिन्न कालों में राजाओं, संतों, समाजसेवियों और श्रद्धालुओं ने इन मंदिरों का पुनर्निर्माण और संरक्षण किया, जिससे यह विरासत आज तक सुरक्षित बनी हुई है।

कुरुक्षेत्र के प्रमुख प्राचीन मंदिरों में स्थानेश्वर महादेव मंदिर, माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ, नाभिकमल तीर्थ, ब्रह्म सरोवर

परिसर के मंदिर, सन्निहित सरोवर के मंदिर, ज्योतिसर का श्रीकृष्ण-अर्जुन मंदिर, पिहोवा (पृथूदक) के प्राचीन मंदिर तथा 48 कोस क्षेत्र में स्थित अनेक शिव, विष्णु, शक्ति और सूर्य मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक मंदिर किसी न किसी पौराणिक, वैदिक अथवा ऐतिहासिक घटना से जुड़ा हुआ है।

भारतीय मंदिर स्थापत्य केवल धार्मिक भावना का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह प्राचीन भारत की वास्तुकला, मूर्तिकला, शिल्पकला और वैज्ञानिक ज्ञान का भी उत्कृष्ट उदाहरण है। मंदिरों के शिखर, गर्भगृह, मंडप, स्तंभ, तोरण, परिक्रमा पथ तथा मूर्तिकला भारतीय शिल्पियों की अद्भुत कला और तकनीकी दक्षता का परिचय देते हैं। अनेक मंदिरों में प्रयुक्त स्थापत्य शैली उत्तर भारतीय नागर शैली के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

कुरुक्षेत्र के मंदिरों की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ शैव, वैष्णव, शाक्त और वैदिक परम्पराएँ एक साथ विकसित हुईं। भगवान शिव, भगवान विष्णु, भगवान श्रीकृष्ण, माँ दुर्गा, सूर्यदेव, गणेश तथा अन्य देवी-देवताओं के मंदिर इस क्षेत्र की धार्मिक समन्वय की परम्परा को दर्शाते हैं। यही विविधता कुरुक्षेत्र को भारत के प्रमुख धार्मिक और सांस्कृतिक केंद्रों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा के दौरान मुझे इन प्राचीन मंदिरों का अनेक बार प्रत्यक्ष दर्शन और अध्ययन करने का

अवसर प्राप्त हुआ। विभिन्न मंदिरों की स्थापत्य शैली, धार्मिक परम्पराओं, स्थानीय मान्यताओं और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करने पर यह अनुभव हुआ कि प्रत्येक मंदिर अपने भीतर एक स्वतंत्र इतिहास और सांस्कृतिक विरासत को समेटे हुए है। इन मंदिरों में आज भी हजारों श्रद्धालु दर्शन, पूजा और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए पहुँचते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इनकी आध्यात्मिक महत्ता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिर केवल पूजा-अर्चना के स्थान नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सभ्यता, सनातन संस्कृति, प्राचीन स्थापत्य कला और धार्मिक समन्वय की अमूल्य धरोहर हैं। इनका संरक्षण और अध्ययन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

भाग-2 : प्रमुख मंदिर, स्थापत्य विशेषताएँ और सांस्कृतिक महत्व

कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिर केवल धार्मिक आस्था के केंद्र नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय स्थापत्य कला, मूर्तिकला और सांस्कृतिक इतिहास के उत्कृष्ट उदाहरण भी हैं। इन मंदिरों का निर्माण विभिन्न कालों में हुआ तथा समय-समय पर उनका जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण भी होता रहा। यही कारण है कि आज अनेक मंदिरों में प्राचीन और आधुनिक स्थापत्य शैलियों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।

स्थानेश्वर महादेव मंदिर कुरुक्षेत्र के सबसे प्राचीन और पूजनीय शिवालयों में से एक माना जाता है। धार्मिक परंपरा के अनुसार महाभारत युद्ध से पूर्व भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने यहाँ भगवान शिव की आराधना की थी। वर्तमान मंदिर का स्वरूप आधुनिक काल में विकसित हुआ है, किंतु इसकी प्राचीन धार्मिक परंपरा आज भी निरंतर चली आ रही है।

ब्रह्म सरोवर के चारों ओर स्थित मंदिर और घाट इस क्षेत्र की धार्मिक पहचान हैं। यहाँ प्रतिदिन पूजा-अर्चना, आरती, गीता-पाठ और धार्मिक अनुष्ठान होते हैं। विशेष अवसरों पर हजारों श्रद्धालु यहाँ स्नान और दर्शन के लिए पहुँचते हैं। सूर्यग्रहण, गीता जयंती और अन्य पर्वों पर यह क्षेत्र विशाल आध्यात्मिक केंद्र का रूप धारण कर लेता है।

सन्निहित सरोवर के आसपास स्थित मंदिरों का भी विशेष धार्मिक महत्व है। सनातन परंपरा के अनुसार अमावस्या तथा अन्य पवित्र अवसरों पर यहाँ स्नान, तर्पण और पितृ-श्राद्ध का विशेष फल माना गया है। यही कारण है कि यह क्षेत्र वर्षभर श्रद्धालुओं से आबाद रहता है।

ज्योतिसर का श्रीकृष्ण-अर्जुन मंदिर और अक्षय वट भारतीय आध्यात्मिक इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। यही वह स्थान माना जाता है, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश दिया। आज यहाँ विकसित

मंदिर परिसर, गीता स्मारक और धार्मिक वातावरण इस ऐतिहासिक परंपरा को जीवंत बनाए हुए हैं।

माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ, नाभिकमल तीर्थ, पिहोवा (पृथूदक) तथा 48 कोस कुरुक्षेत्र में स्थित अन्य प्राचीन मंदिर भी इस क्षेत्र की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग हैं। इन मंदिरों में शैव, वैष्णव, शाक्त और सूर्य उपासना की परंपराएँ आज भी श्रद्धापूर्वक निभाई जाती हैं।

स्थापत्य की दृष्टि से इन मंदिरों में मुख्य रूप से गर्भगृह, मंडप, शिखर, परिक्रमा पथ, ध्वज स्तंभ तथा अलंकृत प्रवेश द्वार जैसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। यद्यपि समय के साथ अनेक मंदिरों का पुनर्निर्माण हुआ है, फिर भी उनकी मूल धार्मिक परंपरा और सांस्कृतिक पहचान आज भी सुरक्षित है।

48 कोस कुरुक्षेत्र की मेरी शोध-यात्रा के दौरान इन प्रमुख मंदिरों का अनेक बार दर्शन और अध्ययन करने का अवसर मिला। मंदिरों की स्थापत्य शैली, मूर्तिकला, धार्मिक परंपराओं, स्थानीय मान्यताओं तथा श्रद्धालुओं की आस्था का प्रत्यक्ष अवलोकन किया। प्रत्येक मंदिर में यह अनुभव हुआ कि यहाँ केवल पूजा ही नहीं होती, बल्कि भारतीय संस्कृति, सेवा, संस्कार और सामाजिक एकता की परंपरा भी निरंतर जीवित है।

मेरे अध्ययन के अनुसार, कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिर भारतीय संस्कृति की उस अखंड परंपरा के प्रतीक हैं, जिसने अनेक

ऐतिहासिक उतार-चढ़ावों के बावजूद अपनी आध्यात्मिक पहचान को सुरक्षित रखा है। यही मंदिर आज भी लाखों श्रद्धालुओं, शोधकर्ताओं और पर्यटकों को समान रूप से आकर्षित करते हैं।

भाग-3 : शोध-यात्रा, संरक्षण और निष्कर्ष

कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिर केवल ईंट, पत्थर और शिल्पकला के स्मारक नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सनातन संस्कृति, आस्था, दर्शन और इतिहास की जीवंत विरासत हैं। हजारों वर्षों से इन मंदिरों में निरंतर पूजा-अर्चना, यज्ञ, आरती, धार्मिक अनुष्ठान और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होते रहे हैं। यही निरंतरता सिद्ध करती है कि कुरुक्षेत्र केवल इतिहास का विषय नहीं, बल्कि आज भी जीवित आध्यात्मिक चेतना का केंद्र है।

48 कोस कुरुक्षेत्र की अपनी शोध-यात्रा के दौरान मुझे इन प्राचीन मंदिरों का अनेक बार प्रत्यक्ष अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, मेरे पोते भावेश स्वामी तथा दिव्यांशी स्वामी भी इस यात्रा में मेरे साथ रहे। हमने स्थानेश्वर महादेव मंदिर, ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ, नाभिकमल तीर्थ, पिहोवा (पृथूदक) तथा 48 कोस क्षेत्र के अनेक प्राचीन मंदिरों और तीर्थस्थलों का प्रत्यक्ष दर्शन एवं अध्ययन किया।

प्रत्येक मंदिर में स्थानीय पुजारियों, श्रद्धालुओं और सेवकों से संवाद करने का अवसर मिला। मंदिरों की धार्मिक परंपराओं, स्थापत्य शैली, मूर्तिकला, प्राचीन मान्यताओं तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का गहन अध्ययन किया। यह अनुभव अत्यंत प्रेरणादायक रहा कि आधुनिक युग में भी इन मंदिरों में वैदिक मंत्रों की ध्वनि, आरती, भजन-कीर्तन और सनातन परंपराएँ उसी श्रद्धा के साथ जीवित हैं, जैसी सदियों पूर्व रही होंगी।

मेरी इस शोध-यात्रा के दौरान एक तथ्य विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने प्राचीन मंदिरों और तीर्थस्थलों के संरक्षण, विकास और सौंदर्यीकरण में उल्लेखनीय कार्य किया है। अनेक मंदिरों पर सूचना-पट्ट स्थापित किए गए हैं, तीर्थ मार्गों का विकास किया गया है, स्वच्छता व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया गया है तथा श्रद्धालुओं के लिए पेयजल, प्रकाश, विश्राम और अन्य आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं। मेरे प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस कार्य ने कुरुक्षेत्र की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को और अधिक सशक्त बनाया है।

हालाँकि, कुछ प्राचीन मंदिर और छोटे धार्मिक स्थल आज भी संरक्षण की दृष्टि से अधिक ध्यान की अपेक्षा रखते हैं। समय के प्रभाव, प्राकृतिक क्षरण और बढ़ते शहरीकरण के कारण अनेक प्राचीन संरचनाओं का मूल स्वरूप प्रभावित हुआ है। इसलिए आवश्यक है कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, हरियाणा

सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, स्थानीय धार्मिक संस्थाएँ और समाज मिलकर इस अमूल्य धरोहर के संरक्षण हेतु निरंतर कार्य करें।

एक शोधकर्ता के रूप में मेरा यह भी अनुभव रहा कि कुरुक्षेत्र के मंदिर केवल धार्मिक आस्था के केंद्र नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय इतिहास, स्थापत्य कला, पुरातत्त्व, लोकपरंपरा और सामाजिक जीवन के अध्ययन के भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। प्रत्येक मंदिर अपने भीतर एक अलग ऐतिहासिक कथा, सांस्कृतिक परंपरा और आध्यात्मिक संदेश को संजोए हुए है।

इस शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि कुरुक्षेत्र के प्राचीन मंदिर भारतीय सनातन संस्कृति की आत्मा हैं। इन मंदिरों ने हजारों वर्षों से धर्म, ज्ञान, सेवा, संस्कृति और राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया है। इनका संरक्षण केवल सरकार या किसी संस्था का दायित्व नहीं, बल्कि प्रत्येक भारतीय का नैतिक कर्तव्य है। यदि हम अपनी इस महान विरासत को सुरक्षित रखेंगे, तो आने वाली पीढ़ियाँ भी कुरुक्षेत्र की इस अमर सांस्कृतिक धरोहर से प्रेरणा प्राप्त करती रहेंगी।

अध्याय-25

कुरुक्षेत्र के मेले, पर्व और जीवित परम्पराएँ

भाग-1 : आस्था, संस्कृति और लोकजीवन का महाकुंभ

कुरुक्षेत्र केवल महाभारत की धर्मभूमि और श्रीमद्भगवद्गीता की कर्मभूमि ही नहीं है, बल्कि यह सनातन संस्कृति के जीवंत उत्सवों, मेलों और धार्मिक परम्पराओं का भी एक महान केंद्र है। यहाँ वर्षभर विभिन्न धार्मिक पर्व, स्नान उत्सव, यज्ञ, गीता-पाठ, संत समागम, सांस्कृतिक आयोजन और विशाल मेले आयोजित होते हैं। इन आयोजनों में भारत के विभिन्न राज्यों के साथ-साथ विदेशों से भी श्रद्धालु, संत, विद्वान और पर्यटक बड़ी संख्या में पहुँचते हैं।

प्राचीन ग्रंथों में कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र और समन्तपंचक कहा गया है। महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण, नारदीय पुराण तथा अन्य ग्रंथों में यहाँ के पर्वों और तीर्थ-स्नान का विशेष महत्व बताया गया है। मान्यता है कि विशेष तिथियों पर कुरुक्षेत्र में स्नान, दान, जप, तप, यज्ञ और पूजा-अर्चना करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि हजारों वर्षों से यहाँ धार्मिक मेलों की परम्परा निरंतर चली आ रही है।

कुरुक्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध आयोजन अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव है। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष मास की शुक्ल एकादशी (गीता जयंती) को केंद्र में रखकर आयोजित होने वाला यह महोत्सव

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए श्रीमद्भगवद्गीता के अमर संदेश को विश्वभर तक पहुँचाने का माध्यम बन चुका है। इस अवसर पर गीता यज्ञ, गीता पाठ, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वैदिक अनुष्ठान, संत सम्मेलन, शिल्प मेले, पुस्तक प्रदर्शनी तथा भारतीय संस्कृति से जुड़े अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। देश-विदेश से हजारों श्रद्धालु और पर्यटक इसमें भाग लेते हैं।

सूर्यग्रहण स्नान का भी कुरुक्षेत्र में अत्यंत विशेष महत्व है। प्राचीन काल से ही यह विश्वास रहा है कि सूर्यग्रहण के समय ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर और अन्य पवित्र तीर्थों में स्नान करने से विशेष आध्यात्मिक फल प्राप्त होता है। ऐतिहासिक अभिलेखों और यात्रावृत्तों से भी ज्ञात होता है कि विभिन्न राजाओं, संतों और विदेशी यात्रियों ने इन अवसरों पर कुरुक्षेत्र में आयोजित विशाल मेलों का उल्लेख किया है।

इसी प्रकार अमावस्या, सोमवती अमावस्या, गीता जयंती, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, महाशिवरात्रि, नवरात्र, मकर संक्रांति, कार्तिक पूर्णिमा तथा पितृपक्ष जैसे अवसरों पर भी कुरुक्षेत्र के तीर्थों में बड़ी संख्या में श्रद्धालु पहुँचते हैं। इन पर्वों के दौरान मंदिरों, आश्रमों और सरोवरों में विशेष पूजा-अर्चना, यज्ञ, भजन-कीर्तन, सत्संग और धार्मिक अनुष्ठान आयोजित किए जाते हैं।

कुरुक्षेत्र के मेले केवल धार्मिक आयोजन नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय लोकसंस्कृति के भी सजीव केंद्र हैं। यहाँ हरियाणा की

लोककलाएँ, लोकसंगीत, पारम्परिक हस्तशिल्प, ग्रामीण संस्कृति, वैदिक परम्पराएँ तथा भारतीय खान-पान की विविध झलक देखने को मिलती है। इस प्रकार ये मेले सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय भावना को भी सुदृढ़ करते हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की मेरी शोध-यात्रा के दौरान यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि यहाँ की धार्मिक परम्पराएँ आज भी पूरी श्रद्धा और गरिमा के साथ जीवित हैं। प्राचीन तीर्थों पर आने वाले श्रद्धालुओं की आस्था, संतों का सान्निध्य, मंदिरों की नियमित पूजा-पद्धति तथा स्थानीय समाज की सक्रिय भागीदारी यह सिद्ध करती है कि कुरुक्षेत्र आज भी सनातन संस्कृति का एक जीवंत केंद्र है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र के मेले, पर्व और धार्मिक परम्पराएँ केवल उत्सव नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सभ्यता, सनातन संस्कृति और सामाजिक एकता की सतत प्रवाहित धारा हैं, जो अतीत और वर्तमान के बीच एक सशक्त सेतु का कार्य करती हैं।

भाग-2 : प्रमुख धार्मिक मेले, गीता महोत्सव और सांस्कृतिक चेतना

कुरुक्षेत्र के मेले और पर्व केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि वे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा, सामाजिक एकता और आध्यात्मिक चेतना के जीवंत प्रतीक हैं। वर्ष भर यहाँ विभिन्न अवसरों पर लाखों श्रद्धालु एकत्रित होते हैं। इन आयोजनों में

धर्म, संस्कृति, लोकजीवन, शिक्षा, कला और सेवा का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव आज कुरुक्षेत्र की सबसे बड़ी सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान बन चुका है। प्रत्येक वर्ष मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (गीता जयंती) के अवसर पर आयोजित यह महोत्सव भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए श्रीमद्भगवद्गीता के अमर संदेश को विश्वभर में पहुँचाने का कार्य करता है। इस अवसर पर विशाल गीता यज्ञ, सामूहिक गीता-पाठ, संत सम्मेलन, वैदिक मंत्रोच्चार, सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ, पारंपरिक लोकनृत्य, शास्त्रीय संगीत, आध्यात्मिक व्याख्यान, पुस्तक प्रदर्शनियाँ और हस्तशिल्प मेले आयोजित किए जाते हैं। अनेक देशों के प्रतिनिधि, विद्वान और पर्यटक भी इसमें भाग लेते हैं, जिससे कुरुक्षेत्र की पहचान एक अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक केंद्र के रूप में और अधिक सुदृढ़ हुई है।

सूर्यग्रहण स्नान का महत्व भी कुरुक्षेत्र में अत्यंत प्राचीन है। ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर और अन्य पवित्र तीर्थों पर सूर्यग्रहण के अवसर पर लाखों श्रद्धालु स्नान, दान, जप और पूजा-अर्चना करते हैं। प्राचीन ग्रंथों तथा ऐतिहासिक विवरणों में भी सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में विशाल धार्मिक मेलों का उल्लेख मिलता है। आज भी यह परंपरा उसी श्रद्धा और उत्साह के साथ निभाई जा रही है।

इसी प्रकार महाशिवरात्रि पर स्थानेश्वर महादेव मंदिर, चैत्र और शारदीय नवरात्र में माँ भद्रकाली देवीकूप शक्तिपीठ, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर ज्योतिसर तथा अन्य श्रीकृष्ण मंदिरों में विशेष धार्मिक आयोजन होते हैं। अमावस्या, सोमवती अमावस्या, कार्तिक पूर्णिमा, मकर संक्रांति, गंगा दशहरा और पितृपक्ष के अवसर पर भी ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर और पिहोवा (पृथूदक) में बड़ी संख्या में श्रद्धालु स्नान, तर्पण और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए पहुँचते हैं।

कुरुक्षेत्र के इन मेलों की विशेषता यह है कि इनमें केवल धार्मिक गतिविधियाँ ही नहीं होतीं, बल्कि भारतीय लोकसंस्कृति भी पूरी गरिमा के साथ दिखाई देती है। हरियाणा की लोककलाएँ, लोकगीत, पारंपरिक वेशभूषा, हस्तशिल्प, ग्रामीण जीवन, पारंपरिक व्यंजन और सामाजिक समरसता का सुंदर स्वरूप इन आयोजनों में देखने को मिलता है। इस प्रकार ये मेले भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

मेरे 48 कोस कुरुक्षेत्र के शोध-भ्रमण के दौरान विभिन्न तीर्थों पर आने वाले श्रद्धालुओं, साधु-संतों, स्थानीय नागरिकों तथा तीर्थ-सेवकों से संवाद करने का अवसर मिला। इससे यह अनुभव हुआ कि इन मेलों और पर्वों ने केवल धार्मिक आस्था को ही नहीं, बल्कि स्थानीय अर्थव्यवस्था, पर्यटन, हस्तशिल्प, लघु व्यापार तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को भी नई ऊर्जा

प्रदान की है। अनेक परिवारों की आजीविका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इन धार्मिक आयोजनों से जुड़ी हुई है।

मेरे अध्ययन में यह भी स्पष्ट हुआ कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड इन पर्वों और मेलों के सफल आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तीर्थों की स्वच्छता, यातायात व्यवस्था, सुरक्षा, सूचना केंद्र, प्रकाश व्यवस्था, पेयजल, चिकित्सा सहायता तथा श्रद्धालुओं की सुविधाओं का समुचित प्रबंध इन आयोजनों को सुव्यवस्थित और सफल बनाता है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र के मेले और पर्व केवल धार्मिक उत्सव नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय संस्कृति, सामाजिक समरसता, आध्यात्मिक जागरण और राष्ट्रीय एकता के सशक्त माध्यम हैं। यही जीवित परम्पराएँ कुरुक्षेत्र को आज भी विश्व के महानतम तीर्थों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं।

भाग-3 : प्रत्यक्ष शोध-यात्रा, जीवित संस्कृति और निष्कर्ष

कुरुक्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ की धार्मिक परम्पराएँ केवल इतिहास के ग्रंथों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि आज भी जनजीवन का अभिन्न अंग हैं। हजारों वर्षों पूर्व जिन तीर्थों, सरोवरों और मंदिरों में ऋषि, मुनि, संत और श्रद्धालु धर्मकर्म करते थे, उन्हीं स्थानों पर आज भी वैदिक मंत्रों की ध्वनि, आरती, यज्ञ, भजन-कीर्तन और धार्मिक अनुष्ठान निरंतर

होते रहते हैं। यही जीवंत परम्पराएँ कुरुक्षेत्र को विश्व के महानतम तीर्थों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की अपनी शोध-यात्रा के दौरान मुझे इन धार्मिक परम्पराओं को प्रत्यक्ष रूप से देखने और समझने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस यात्रा में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, मेरे पोते भावेश स्वामी तथा दिव्यांशी स्वामी भी अनेक अवसरों पर मेरे साथ रहे। हमने ब्रहम सरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, स्थानेश्वर महादेव, माँ भद्रकाली शक्तिपीठ, पिहोवा (पृथूदक) तथा 48 कोस क्षेत्र के अनेक तीर्थों और मंदिरों का दर्शन किया। प्रत्येक स्थान पर श्रद्धालुओं की अटूट आस्था, संतों का सान्निध्य, धार्मिक अनुशासन और सेवा-भाव ने गहरा प्रभाव छोड़ा।

मेरे अध्ययन के दौरान यह अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र में आयोजित होने वाले मेले केवल धार्मिक आयोजन नहीं हैं, बल्कि समाज को जोड़ने वाले सांस्कृतिक उत्सव भी हैं। यहाँ विभिन्न राज्यों से आने वाले श्रद्धालु, संत, विद्वान, विद्यार्थी और पर्यटक एक-दूसरे की संस्कृति, परम्पराओं और विचारों से परिचित होते हैं। इस प्रकार कुरुक्षेत्र भारत की "विविधता में एकता" की भावना का सजीव उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मेरे प्रत्यक्ष भ्रमण में यह भी स्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इस महान विरासत के संरक्षण और विकास में अत्यंत सराहनीय कार्य किया है। तीर्थों का

सौंदर्यीकरण, स्वच्छता, प्रकाश व्यवस्था, सूचना-पट्ट, यात्री सुविधाएँ, पार्किंग, पेयजल, हरित विकास तथा धार्मिक आयोजनों का सुव्यवस्थित संचालन यह दर्शाता है कि प्राचीन धरोहर को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप सुरक्षित रखने के लिए गंभीर प्रयास किए जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ मुझे भ्रमण करने का अवसर मिला, वहाँ यह सकारात्मक परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई दिया।

फिर भी, समय के साथ बदलती जीवनशैली, बढ़ते शहरीकरण और आधुनिक व्यस्तता के कारण कुछ पारंपरिक लोकरीतियाँ धीरे-धीरे कम होती दिखाई देती हैं। इसलिए आवश्यकता है कि नई पीढ़ी को इन मेलों, पर्वों और धार्मिक परम्पराओं के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व से परिचित कराया जाए। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों तथा सामाजिक संगठनों को भी इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए, जिससे यह अमूल्य विरासत आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुँच सके।

इस शोध के आधार पर मेरा निष्कर्ष है कि कुरुक्षेत्र के मेले, पर्व और जीवित परम्पराएँ केवल धार्मिक आयोजन नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सभ्यता की सतत प्रवाहित सांस्कृतिक धारा हैं। ये परम्पराएँ हमें अपनी जड़ों से जोड़ती हैं, समाज में एकता और सद्भाव को सुदृढ़ करती हैं तथा सनातन संस्कृति के शाश्वत मूल्यों का संरक्षण करती हैं। कुरुक्षेत्र की यह जीवंत विरासत

सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा का स्रोत है और इसका संरक्षण हम सभी का साझा दायित्व है।

प्रमुख संदर्भ

• महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण, नारदीय पुराण

• गीता जयंती / अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव – मार्गशीर्ष मास, शुक्ल पक्ष एकादशी (हिंदू पंचांग आधारित)

• कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड — आधिकारिक कार्यक्रम-विवरण

• लेखक का प्रत्यक्ष स्थल-भ्रमण एवं शोध (2026) — सहयात्री: श्रीमती निर्मला वैष्णव, भावेश स्वामी, दिव्यांशी स्वामी

अध्याय–26

कृष्ण संग्रहालय, कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं आधुनिक विरासत संरक्षण

भाग-1 : इतिहास, संस्कृति और आधुनिक प्रस्तुतीकरण

कुरुक्षेत्र केवल प्राचीन तीर्थों और धार्मिक स्थलों के कारण ही विश्वविख्यात नहीं है, बल्कि आधुनिक युग में यहाँ स्थापित कृष्ण संग्रहालय (Krishna Museum) तथा कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र (Kurukshetra Panorama & Science Centre) ने इस पावन भूमि के इतिहास, संस्कृति और आध्यात्मिक विरासत को नई पीढ़ी तक प्रभावशाली ढंग से पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन संस्थानों ने आधुनिक तकनीक और संग्रहालय विज्ञान के माध्यम से महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता तथा भगवान श्रीकृष्ण के जीवन और संदेश को आकर्षक एवं शोधपरक रूप में प्रस्तुत किया है।

श्रीकृष्ण संग्रहालय, कुरुक्षेत्र का भव्य भवन – प्रवेश द्वार पर उत्कीर्ण महाभारत के दृश्य

कृष्ण संग्रहालय की स्थापना भगवान श्रीकृष्ण के बहुआयामी व्यक्तित्व, महाभारतकालीन संस्कृति और भारतीय कला परंपरा के संरक्षण एवं प्रचार के उद्देश्य से की गई। यहाँ विभिन्न

कालखंडों की दुर्लभ मूर्तियाँ, चित्रकला, पांडुलिपियों की प्रतिकृतियाँ, धातु प्रतिमाएँ, लकड़ी की कलाकृतियाँ, टेराकोटा शिल्प, सिक्के तथा देश के विभिन्न राज्यों की लोककलाओं में अंकित श्रीकृष्ण के विविध स्वरूप प्रदर्शित किए गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भगवान श्रीकृष्ण केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक नहीं, बल्कि भारतीय कला, साहित्य, दर्शन और संस्कृति के भी शाश्वत प्रेरणास्रोत हैं।

श्रीकृष्ण संग्रहालय का आधिकारिक सूचना-पट्ट – विश्व का एकमात्र संग्रहालय जो श्रीकृष्ण, महाभारत एवं कुरुक्षेत्र विषय पर केंद्रित है

संग्रहालय की दीर्घाओं में श्रीकृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसंग – बाल्यकाल, गोवर्धन धारण, कालिय नाग दमन, रासलीला, मथुरा और द्वारका की घटनाएँ तथा महाभारत में उनकी भूमिका – को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह संग्रहालय शोधार्थियों, विद्यार्थियों और सामान्य दर्शकों को भारतीय सांस्कृतिक विरासत को समझने का उत्कृष्ट अवसर प्रदान करता है।

इसी प्रकार कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र आधुनिक तकनीक का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ महाभारत युद्ध के दृश्य, भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश, युद्धनीति तथा उस युग की सामाजिक और

सांस्कृतिक परिस्थितियों को त्रिआयामी (3D) मॉडल, प्रकाश एवं ध्वनि प्रभावों तथा आधुनिक प्रदर्शनी तकनीकों के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित किया गया है। इससे दर्शकों को ऐसा अनुभव होता है मानो वे स्वयं महाभारतकालीन घटनाओं के साक्षी हों।

इन संस्थानों का महत्व केवल पर्यटन तक सीमित नहीं है। वे भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, धर्म, दर्शन और संस्कृति के अध्ययन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। देश-विदेश से आने वाले विद्यार्थी, शोधकर्ता, इतिहासकार और पर्यटक यहाँ से प्राचीन भारतीय सभ्यता के अनेक आयामों को समझने का अवसर प्राप्त करते हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र की मेरी शोध-यात्रा के दौरान मुझे कृष्ण संग्रहालय और कुरुक्षेत्र पैनोरमा का भी प्रत्यक्ष अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन दोनों संस्थानों में संरक्षित सामग्री, प्रदर्शित ऐतिहासिक प्रसंग, कलात्मक प्रस्तुतियाँ तथा वैज्ञानिक ढंग से विकसित प्रदर्शन प्रणाली को देखकर यह अनुभव हुआ कि आधुनिक तकनीक के माध्यम से भी भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को प्रभावशाली और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह प्रयास नई पीढ़ी को अपने इतिहास और संस्कृति से जोड़ने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

इस प्रकार कृष्ण संग्रहालय और कुरुक्षेत्र पैनोरमा आधुनिक भारत के ऐसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र हैं, जिन्होंने प्राचीन विरासत को आधुनिक प्रस्तुतीकरण के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का सराहनीय कार्य किया है।

भाग-2 : प्रमुख दीर्घाएँ, शैक्षिक महत्व और सांस्कृतिक संरक्षण

कृष्ण संग्रहालय और कुरुक्षेत्र पैनोरमा केवल दर्शनीय स्थल नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय इतिहास, धर्म, संस्कृति और शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र हैं। इन संस्थानों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे प्राचीन भारतीय ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत को आधुनिक तकनीक तथा वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाते हैं। इससे विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं, श्रद्धालुओं और पर्यटकों को इतिहास को समझने का एक नया और प्रभावशाली माध्यम प्राप्त होता है।

कृष्ण संग्रहालय की विभिन्न दीर्घाओं में भगवान श्रीकृष्ण के जीवन से जुड़े अनेक प्रसंग अत्यंत सुंदर ढंग से प्रदर्शित किए गए हैं। यहाँ बालकृष्ण की लीलाएँ, वृंदावन का जीवन, गोवर्धन धारण, कालिय नाग दमन, कंस वध, मथुरा और द्वारका की घटनाएँ तथा महाभारत में श्रीकृष्ण की भूमिका को चित्रकला, मूर्तिकला, धातु प्रतिमाओं, टेराकोटा कला, लकड़ी की नक्काशी और अन्य पारंपरिक कलाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। भारत के विभिन्न राज्यों की कला-शैलियों में निर्मित श्रीकृष्ण की प्रतिमाएँ इस संग्रहालय की विशेष आकर्षण हैं।

संग्रहालय में प्रदर्शित 'भगवान विष्णु के दशावतार' — तमिलनाडु की काष्ठ-शिल्प कला (लगभग 20वीं शताब्दी ईस्वी) की दुर्लभ कलाकृति

संग्रहालय में सुरक्षित अनेक कलाकृतियाँ यह भी दर्शाती हैं कि भगवान श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि उन्होंने भारतीय साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला और लोकसंस्कृति को भी गहराई से प्रभावित किया है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के सबसे व्यापक और प्रेरणादायक व्यक्तित्वों में गिने जाते हैं।

कुरुक्षेत्र पैनोरमा एवं विज्ञान केंद्र में महाभारत युद्ध और श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश को आधुनिक तकनीक के माध्यम से जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है। त्रिआयामी (3D) मॉडल, प्रकाश एवं ध्वनि प्रभाव, चलित प्रदर्शन, वैज्ञानिक मॉडल और दृश्य-श्रव्य तकनीकों के कारण दर्शकों को महाभारतकालीन घटनाओं का सजीव अनुभव प्राप्त होता है। विशेष रूप से भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश, युद्ध की रणनीति तथा उस समय की सामाजिक परिस्थितियों का प्रस्तुतीकरण अत्यंत प्रभावशाली है।

इन संस्थानों का शैक्षिक महत्व भी अत्यधिक है। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी नियमित रूप

से यहाँ अध्ययन भ्रमण के लिए आते हैं। इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति, दर्शन, ललित कला और धार्मिक अध्ययन से जुड़े शोधार्थियों के लिए भी यह संग्रहालय अत्यंत उपयोगी है। यहाँ उपलब्ध सामग्री भारतीय सभ्यता के विविध आयामों को समझने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है।

श्रीकृष्ण संग्रहालय परिसर में लेखक – पृष्ठभूमि में कालिय नाग दमन की प्रतिमा एवं भगवान श्रीकृष्ण का भित्ति-चित्रण

48 कोस कुरुक्षेत्र की मेरी शोध-यात्रा के दौरान मुझे कृष्ण संग्रहालय और कुरुक्षेत्र पैनोरमा का गहन अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रदर्शित कलाकृतियों, ऐतिहासिक विवरणों, मूर्तियों और आधुनिक तकनीक के माध्यम से प्रस्तुत महाभारत के दृश्यों का मैंने सावधानीपूर्वक अवलोकन किया। यह अनुभव अत्यंत प्रेरणादायक रहा कि आधुनिक संग्रहालय विज्ञान के माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति को सरल, आकर्षक और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इससे विशेष रूप से युवा पीढ़ी अपने इतिहास और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अधिक जागरूक होती है।

मेरे अध्ययन के अनुसार, इन दोनों संस्थानों ने कुरुक्षेत्र को केवल एक धार्मिक तीर्थ ही नहीं, बल्कि शोध, शिक्षा और सांस्कृतिक जागरूकता के राष्ट्रीय केंद्र के रूप में भी स्थापित किया है। यहाँ आने वाला प्रत्येक व्यक्ति इतिहास, धर्म और

भारतीय संस्कृति के बारे में नई जानकारी प्राप्त करता है तथा अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति गर्व का अनुभव करता है।

भाग-3 : शोध-यात्रा, सहयोग, संरक्षण और निष्कर्ष

कुरुक्षेत्र की यात्रा मेरे लिए केवल एक तीर्थयात्रा नहीं थी, बल्कि यह एक शोध-यात्रा भी थी। मेरा उद्देश्य 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रत्येक प्रमुख तीर्थ, ऐतिहासिक स्थल, संग्रहालय, पुरातात्त्विक साक्ष्य और सांस्कृतिक विरासत का प्रत्यक्ष अध्ययन करना था, ताकि इस ग्रंथ में केवल पुस्तकीय जानकारी ही नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव भी सम्मिलित हो सके।

इस शोध-यात्रा के दौरान मुझे कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के अधिकारियों से भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। विशेष रूप से श्री उपेंद्र सिंघल जी (कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड) ने अत्यंत आत्मीयता और सहयोग की भावना से मेरी बात को धैर्यपूर्वक सुना। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं 48 कोस कुरुक्षेत्र पर एक विस्तृत शोधग्रंथ तैयार कर रहा हूँ, तो उन्होंने इस कार्य की सराहना करते हुए हर संभव सहयोग प्रदान किया।

श्री उपेंद्र सिंघल जी (कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड) को अपनी पुस्तकें भेंट करते हुए लेखक एवं शोध-यात्रा के सहयोगी साथी

श्री उपेंद्र सिंघल जी ने मुझे 48 कोस कुरुक्षेत्र से संबंधित महत्वपूर्ण प्रकाशन, संदर्भ सामग्री, हिंदी एवं अंग्रेज़ी भाषा के

आधिकारिक मानचित्र तथा अन्य उपयोगी दस्तावेज़ उपलब्ध कराए। ये सामग्री इस शोधग्रंथ के तथ्यात्मक अध्ययन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि यदि भविष्य में किसी भी प्रकार की शोध-सामग्री या जानकारी की आवश्यकता हो तो कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड यथासंभव सहयोग करेगा। एक शोधकर्ता के रूप में यह सहयोग मेरे लिए अत्यंत प्रेरणादायक रहा।

मेरी विशेष इच्छा कृष्ण संग्रहालय के भीतर प्रदर्शित दुर्लभ कलाकृतियों, दीर्घाओं और प्रदर्शनों का अध्ययन एवं छायांकन करने की थी। सामान्यतः संग्रहालयों में फोटोग्राफी के संबंध में निर्धारित नियम होते हैं, किंतु श्री उपेंद्र सिंघल जी ने मेरी शोध-आवश्यकता को समझते हुए संग्रहालय में अध्ययन हेतु आवश्यक सहयोग प्रदान किया। उन्होंने अपने सहयोगी श्री गुलाब सिंह जी से दूरभाष पर संपर्क कर स्पष्ट निर्देश दिए कि "श्री नरेश दास वैष्णव निम्बार्क शोध कार्य के लिए आए हैं। इन्हें अध्ययन के दौरान जिस भी प्रकार की जानकारी, सामग्री अथवा सहयोग की आवश्यकता हो, यथासंभव उपलब्ध कराया जाए।"

इसके उपरांत श्री गुलाब सिंह जी ने भी अत्यंत विनम्रता और सहयोगपूर्ण व्यवहार करते हुए संग्रहालय की विभिन्न दीर्घाओं का अवलोकन करने में सहायता की। उन्होंने प्रदर्शित सामग्री की जानकारी उपलब्ध कराई तथा शोध की दृष्टि से उपयोगी

स्थलों का अवलोकन कराने में सहयोग दिया। इस आत्मीय व्यवहार ने मेरी शोध-यात्रा को और अधिक सार्थक बना दिया।

मेरे लिए यह अनुभव केवल प्रशासनिक सहयोग नहीं था, बल्कि यह इस बात का प्रमाण भी था कि जब कोई शोधकर्ता निष्पक्ष और प्रामाणिक अध्ययन के उद्देश्य से कार्य करता है, तब सरकारी संस्थाएँ भी उसके कार्य में सकारात्मक सहयोग प्रदान करती हैं। इस सहयोग के कारण मुझे अनेक तथ्यों का प्रत्यक्ष अध्ययन करने तथा इस ग्रंथ को अधिक प्रामाणिक बनाने में सहायता मिली।

मेरे प्रत्यक्ष भ्रमण के आधार पर यह भी अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों, संग्रहालयों, सरोवरों, मंदिरों और ऐतिहासिक स्थलों के संरक्षण एवं विकास में उल्लेखनीय कार्य किया है। स्वच्छता, सूचना-पट्ट, आधुनिक सुविधाएँ, मार्गदर्शन, प्रकाश व्यवस्था, हरित वातावरण तथा सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण की दिशा में किए गए प्रयास वास्तव में प्रशंसनीय हैं। इससे देश-विदेश से आने वाले श्रद्धालुओं, पर्यटकों और शोधार्थियों को अत्यधिक सुविधा प्राप्त होती है।

इस शोध के आधार पर मेरा निष्कर्ष है कि कृष्ण संग्रहालय और कुरुक्षेत्र पैनोरमा केवल संग्रहालय नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, श्रीमद्भगवद्गीता के संदेश और सनातन संस्कृति के सशक्त ज्ञान-केंद्र हैं। साथ ही, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा किए

जा रहे संरक्षण और शोध-सहयोग के प्रयास इस महान धरोहर को आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुँचाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इस शोध-ग्रंथ की तैयारी के दौरान प्राप्त सहयोग के लिए मैं कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, विशेष रूप से श्री उपेंद्र सिंघल जी तथा श्री गुलाब सिंह जी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

अध्याय–27

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय : आधुनिक शोध और ज्ञान परम्परा

भाग-1 : एक शोधकर्ता की विश्वविद्यालय यात्रा

कुरुक्षेत्र केवल प्राचीन ऋषियों, आश्रमों और तीर्थों की भूमि ही नहीं है, बल्कि आधुनिक युग में यह शोध, उच्च शिक्षा और भारतीय ज्ञान-परम्परा का भी एक महत्वपूर्ण केंद्र बन चुका है। इस दिशा में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय है। सन् 1956 में स्थापित यह विश्वविद्यालय आज भारत के प्रमुख शिक्षण एवं शोध संस्थानों में गिना जाता है। इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृत, भारतीय दर्शन, धर्म अध्ययन तथा सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में यहाँ निरंतर उच्चस्तरीय शोध कार्य हो रहे हैं।

48 कोस कुरुक्षेत्र पर अपना शोध-ग्रंथ "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" तैयार करते समय मैंने यह अनुभव किया कि केवल पुस्तकों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। शोध को प्रामाणिक बनाने के लिए विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं से प्रत्यक्ष संवाद भी आवश्यक है। इसी उद्देश्य से मुझे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय जाने का अवसर प्राप्त हुआ।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, इतिहास विभाग का 'Honor Board' — विभागाध्यक्षों की सूची, जिसमें वर्तमान अध्यक्ष डॉ. धरमबीर जी (13.06.2025 से) का नाम अंकित है

विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में पहुँचकर मैंने विभागाध्यक्ष (चेयरमैन) महोदय से भेंट की। मैंने उन्हें अपने शोध-कार्य का उद्देश्य बताया कि मैं 48 कोस कुरुक्षेत्र के इतिहास, सरस्वती सभ्यता, महाभारतकालीन तीर्थों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों और सनातन संस्कृति पर आधारित एक व्यापक शोध-ग्रंथ तैयार कर रहा हूँ।

मेरी बात सुनने के बाद उन्होंने अत्यंत आत्मीयता और सम्मान के साथ मेरा स्वागत किया। उन्होंने मुझे अपने सामने बैठाकर विस्तार से मेरे शोध-कार्य के बारे में जानकारी ली। उन्होंने कहा कि कुरुक्षेत्र जैसे महान विषय पर किया जा रहा प्रामाणिक शोध भविष्य के शोधार्थियों और समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। उन्होंने आश्वासन दिया कि विश्वविद्यालय स्तर पर जहाँ तक संभव होगा, वे मेरे शोध-कार्य में सहयोग करने का प्रयास करेंगे।

इस अवसर पर मैंने अपनी प्रकाशित पुस्तक "स्वर्णप्रस्थ की गाथा" तथा "महंत बने महाराजा" उन्हें सादर भेंट की। उन्होंने दोनों पुस्तकों को रुचिपूर्वक देखा और मेरे शोध एवं लेखन कार्य की सराहना की। एक लेखक और शोधकर्ता के लिए यह क्षण अत्यंत प्रेरणादायक था। किसी विश्वविद्यालय के वरिष्ठ

शिक्षाविद् द्वारा अपने शोध-कार्य को सम्मान मिलना आगे के कार्य के लिए नई ऊर्जा प्रदान करता है।

इस भेंट ने मुझे यह विश्वास दिलाया कि जब शोध का उद्देश्य निष्पक्षता, प्रामाणिकता और समाजहित हो, तब शैक्षणिक संस्थान भी ऐसे प्रयासों को प्रोत्साहित करते हैं। विश्वविद्यालयों और स्वतंत्र शोधकर्ताओं के बीच ऐसा सहयोग भारतीय इतिहास और संस्कृति के गहन अध्ययन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

मेरे लिए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की यह यात्रा केवल एक औपचारिक भेंट नहीं थी, बल्कि यह ज्ञान, शोध और प्रेरणा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी। इसने इस शोध-ग्रंथ को और अधिक प्रामाणिक, संतुलित तथा तथ्यपरक बनाने की दिशा में मेरा उत्साह और भी बढ़ा दिया।

भाग–2 : इतिहास विभाग, शोध वातावरण और शैक्षणिक सहयोग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का इतिहास विभाग उत्तर भारत के प्रमुख शोध केंद्रों में से एक माना जाता है। यहाँ प्राचीन भारत, वैदिक सभ्यता, महाभारतकालीन इतिहास, सरस्वती नदी, पुरातत्त्व, मध्यकालीन इतिहास तथा हरियाणा की सांस्कृतिक विरासत पर निरंतर शोध कार्य किए जाते हैं। देश के विभिन्न राज्यों से विद्यार्थी और शोधार्थी यहाँ उच्च शिक्षा एवं शोध के

लिए आते हैं। इस प्रकार विश्वविद्यालय ने भारतीय इतिहास के अध्ययन और संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मेरी विश्वविद्यालय यात्रा के दौरान इतिहास विभाग का वातावरण अत्यंत शांत, अनुशासित और शोध के अनुकूल दिखाई दिया। विभाग में इतिहास विषय से संबंधित अनेक शोध-प्रबंध, संदर्भ ग्रंथ तथा विद्वानों के अध्ययन उपलब्ध हैं। यह देखकर स्पष्ट अनुभव हुआ कि विश्वविद्यालय केवल शिक्षा प्रदान करने का केंद्र नहीं, बल्कि नए ज्ञान के सृजन का भी महत्वपूर्ण संस्थान है।

इतिहास विभाग के चेयरमैन महोदय से हुई चर्चा के दौरान मैंने अपने शोध की रूपरेखा विस्तार से प्रस्तुत की। मैंने उन्हें बताया कि यह ग्रंथ केवल धार्मिक आस्था पर आधारित नहीं है, बल्कि इसमें वेद, पुराण, महाभारत, पुरातात्त्विक साक्ष्य, अभिलेख, सरकारी प्रकाशन, प्रत्यक्ष तीर्थ-भ्रमण तथा स्थानीय परंपराओं के आधार पर तथ्य संकलित किए जा रहे हैं। उन्होंने इस कार्य को गंभीर शोध की दृष्टि से सराहनीय बताया और कहा कि इस प्रकार के प्रामाणिक शोध से भविष्य के शोधार्थियों को भी लाभ मिलेगा।

उन्होंने यह भी कहा कि शोध का सबसे महत्वपूर्ण आधार निष्पक्षता, प्रामाणिक स्रोत और प्रत्यक्ष अध्ययन होता है। यही किसी भी शोध-ग्रंथ की सबसे बड़ी शक्ति होती है। उनके इन

विचारों ने मुझे अपने कार्य को और अधिक सावधानी तथा प्रामाणिकता के साथ आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी।

इस अवसर पर मैंने उन्हें अपनी दो प्रकाशित पुस्तकें – "स्वर्णप्रस्थ की गाथा" तथा "महंत बने महाराजा" – सादर भेंट की। उन्होंने पुस्तकों का अवलोकन करते हुए मेरे लेखन और शोध-कार्य की प्रशंसा की तथा भविष्य में भी इसी प्रकार इतिहास और संस्कृति पर कार्य करते रहने के लिए उत्साहित किया। एक स्वतंत्र शोधकर्ता के रूप में यह सम्मान मेरे लिए अत्यंत प्रेरणादायक रहा।

मेरे अनुभव में विश्वविद्यालय और स्वतंत्र शोधकर्ताओं के बीच निरंतर संवाद होना अत्यंत आवश्यक है। विश्वविद्यालयों के पास शैक्षणिक संसाधन, विशेषज्ञता और शोध का अनुभव होता है, जबकि स्वतंत्र शोधकर्ता अनेक बार प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन और स्थानीय स्रोतों तक पहुँच रखते हैं। जब दोनों मिलकर कार्य करते हैं, तब इतिहास और संस्कृति का अधिक व्यापक एवं संतुलित चित्र सामने आता है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की इस यात्रा ने मेरे शोध-कार्य को नई दिशा प्रदान की। यहाँ प्राप्त मार्गदर्शन और सम्मान ने मुझे यह विश्वास दिलाया कि यदि शोध ईमानदारी, परिश्रम और प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर किया जाए, तो उसे शैक्षणिक जगत में भी सम्मान प्राप्त होता है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय केवल एक शिक्षण संस्थान नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास, संस्कृति और सनातन ज्ञान-परम्परा के संरक्षण, अध्ययन और प्रसार का एक महत्वपूर्ण केंद्र है। यहाँ का शोध वातावरण आने वाली पीढ़ियों के लिए ज्ञान और प्रेरणा का अमूल्य स्रोत बना हुआ है।

भाग-3 : शोध-यात्रा के अनुभव, शैक्षणिक प्रेरणा और निष्कर्ष

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की मेरी यह यात्रा इस शोध-ग्रंथ की सबसे महत्वपूर्ण शोध-यात्राओं में से एक रही। मेरा उद्देश्य केवल औपचारिक भेंट करना नहीं था, बल्कि इस महान विषय पर कार्य कर रहे एक स्वतंत्र शोधकर्ता के रूप में विश्वविद्यालय के विद्वानों से मार्गदर्शन प्राप्त करना और अपने शोध को अधिक प्रामाणिक बनाना था। इस यात्रा ने मुझे यह अनुभव कराया कि भारतीय विश्वविद्यालय आज भी ज्ञान, शोध और संस्कृति के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

इस शोध-यात्रा के दौरान मुझे इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर (डॉ.) धरमबीर जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" विषय पर एक विस्तृत शोध-ग्रंथ तैयार कर रहा हूँ, तो उन्होंने अत्यंत आत्मीयता और सम्मान के साथ मेरा स्वागत किया। उन्होंने

मुझे अपने सामने बैठाया, पूरे शोध-कार्य की रूपरेखा ध्यानपूर्वक सुनी और इस प्रयास की मुक्तकंठ से सराहना की।

डॉ. धरमबीर जी ने कहा कि "कुरुक्षेत्र जैसे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विषय पर प्रामाणिक शोध समाज और आने वाली पीढ़ियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहाँ तक संभव होगा, इतिहास विभाग की ओर से आपको हर प्रकार का शैक्षणिक सहयोग प्रदान किया जाएगा।" उनके ये प्रेरणादायक शब्द मेरे लिए किसी सम्मान से कम नहीं थे और उन्होंने इस शोध-कार्य को नई ऊर्जा प्रदान की।

इस अवसर पर मैंने अपनी प्रकाशित पुस्तकें "स्वर्णप्रस्थ की गाथा" तथा "महंत बने महाराजा" उन्हें सादर भेंट की। उन्होंने दोनों पुस्तकों का अवलोकन किया, मेरे शोध एवं लेखन कार्य की सराहना की तथा भविष्य में भी भारतीय इतिहास, सनातन संस्कृति और कुरुक्षेत्र की विरासत पर निरंतर शोध करते रहने के लिए शुभकामनाएँ दीं। एक स्वतंत्र शोधकर्ता के रूप में विश्वविद्यालय के इतिहास विभागाध्यक्ष से प्राप्त यह सम्मान मेरे लिए जीवन की अविस्मरणीय उपलब्धियों में से एक रहेगा।

इतिहास विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में डॉ. धरमबीर जी को अपनी पुस्तक 'महंत बने महाराजा' भेंट करते हुए लेखक

नरेश दास वैष्णव निम्बार्क, साथ में मास्टर जगबीर वैष्णव एवं दिनेश स्वामी

मेरे अनुभव में किसी भी शोध-ग्रंथ की गुणवत्ता केवल पुस्तकों के अध्ययन से नहीं बढ़ती, बल्कि विश्वविद्यालयों, विद्वानों, पुस्तकालयों, पुरातत्त्वविदों और प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन के समन्वय से वह अधिक प्रामाणिक बनती है। यही कारण है कि इस ग्रंथ में वेद, पुराण, महाभारत, पुरातात्त्विक साक्ष्य, सरकारी प्रकाशनों तथा मेरी प्रत्यक्ष 48 कोस कुरुक्षेत्र यात्रा – इन सभी स्रोतों का संतुलित उपयोग किया गया है।

इस शोध के आधार पर मेरा निष्कर्ष है कि कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय आधुनिक भारत में भारतीय इतिहास, सरस्वती सभ्यता, महाभारत अध्ययन और सनातन ज्ञान-परम्परा के संरक्षण का एक प्रमुख केंद्र है। यहाँ का शैक्षणिक वातावरण तथा विद्वानों का सहयोग शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणास्रोत है। मैं इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर (डॉ.) धरमबीर जी के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिनके सम्मान, मार्गदर्शन और उत्साहवर्धन ने इस शोध-ग्रंथ की यात्रा को और अधिक सार्थक बनाया।

अध्याय–28

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड : संरक्षण, विकास और तीर्थ-प्रबंधन

भाग-1 : 48 कोस कुरुक्षेत्र की धरोहर के संरक्षक

कुरुक्षेत्र भारत की उन पवित्र भूमियों में से एक है, जहाँ धर्म, इतिहास, संस्कृति और आस्था का अद्वितीय संगम देखने को मिलता है। यह केवल महाभारत की धर्मभूमि या श्रीमद्भगवद्गीता की जन्मस्थली ही नहीं, बल्कि वैदिक सभ्यता, सरस्वती संस्कृति और सनातन परम्परा का एक अमूल्य केंद्र भी है। इतनी विशाल सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का संरक्षण, विकास और सुव्यवस्थित प्रबंधन एक अत्यंत महत्वपूर्ण दायित्व है। इस उद्देश्य की पूर्ति में कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड (Kurukshetra Development Board) की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय रही है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का मुख्य कार्यालय भवन एवं आधिकारिक सूचना-पट्ट

बोर्ड के अपने आधिकारिक सूचना-पट्ट के अनुसार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की स्थापना हरियाणा सरकार द्वारा 1 अगस्त 1968 को की गई, जिसके संस्थापक अध्यक्ष भारत रत्न स्वर्गीय श्री गुलज़ारीलाल नंदा जी थे। सन् 1967 में कैथल क्षेत्र

के तत्कालीन सांसद स्वर्गीय श्री गुलज़ारीलाल नंदा जी की कुरुक्षेत्र यात्रा के दौरान यह अनुभव हुआ कि प्राचीन तीर्थों की स्थिति संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत चिंताजनक है, जिसके फलस्वरूप इस बोर्ड की स्थापना की गई। बोर्ड का मुख्य उद्देश्य 48 कोस कुरुक्षेत्र क्षेत्र के समग्र विकास, ऐतिहासिक भवनों एवं सरोवरों के जीर्णोद्धार तथा तीर्थयात्रियों को नागरिक सुविधाएँ उपलब्ध कराना निर्धारित किया गया था।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का मुख्य उद्देश्य 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों, मंदिरों, सरोवरों, ऐतिहासिक स्थलों, धार्मिक परम्पराओं तथा सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण, विकास और समुचित प्रबंधन करना है। बोर्ड द्वारा समय-समय पर अनेक विकास योजनाएँ संचालित की गई हैं, जिनके परिणामस्वरूप आज कुरुक्षेत्र देश और विदेश से आने वाले श्रद्धालुओं, पर्यटकों तथा शोधकर्ताओं के लिए अधिक सुव्यवस्थित और सुविधाजनक तीर्थक्षेत्र बन चुका है।

बोर्ड ने ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, स्थानेश्वर महादेव, माँ भद्रकाली शक्तिपीठ, पिहोवा (पृथूदक) तथा 48 कोस क्षेत्र के अनेक अन्य तीर्थों के संरक्षण और सौंदर्यीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। तीर्थस्थलों पर स्वच्छता, पेयजल, प्रकाश व्यवस्था, हरित विकास, सूचना-पट्ट, यात्री सुविधाएँ, मार्गदर्शन, पार्किंग तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाओं

के कारण श्रद्धालुओं को आज पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधा प्राप्त हो रही है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड केवल भौतिक विकास तक सीमित नहीं है। यह संस्था अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों, तीर्थयात्राओं, विरासत संरक्षण, प्रकाशनों तथा सांस्कृतिक जागरूकता के माध्यम से भी सनातन संस्कृति के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। बोर्ड द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाएँ, मानचित्र और शोध-सामग्री शोधकर्ताओं तथा विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती हैं।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का आधिकारिक परिचय-पट्ट – 'Kurukshetra at a Glance' एवं बोर्ड के गठन व उद्देश्यों का विवरण

48 कोस कुरुक्षेत्र पर इस शोध-ग्रंथ की तैयारी के दौरान मुझे भी कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का आत्मीय सहयोग प्राप्त हुआ। बोर्ड के अधिकारियों ने मेरे शोध-कार्य को गंभीरता से समझा और आवश्यक जानकारी, संदर्भ सामग्री तथा आधिकारिक मानचित्र उपलब्ध कराए। इससे इस ग्रंथ को अधिक प्रामाणिक और व्यवस्थित रूप देने में अत्यंत सहायता मिली। एक स्वतंत्र शोधकर्ता के रूप में मैं इस सहयोग को सदैव स्मरण रखूँगा।

मैं अपनी ओर से कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति हार्दिक आभार और कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। विशेष रूप से उन अधिकारियों का, जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को केवल एक व्यक्तिगत प्रयास न मानकर सनातन संस्कृति और कुरुक्षेत्र की अमूल्य विरासत के संरक्षण का एक विनम्र प्रयास समझा तथा हरसंभव सहयोग प्रदान किया। उनका यह सहयोग इस शोध-ग्रंथ की प्रामाणिकता और गुणवत्ता को समृद्ध बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड केवल एक प्रशासनिक संस्था नहीं, बल्कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक धरोहर का समर्पित संरक्षक है। इसके संरक्षण और विकास कार्यों ने कुरुक्षेत्र की गौरवशाली पहचान को राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी नई प्रतिष्ठा प्रदान की है।

भाग-2 : विकास कार्य, शोध-सहयोग और तीर्थ व्यवस्था

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने पिछले कई वर्षों में 48 कोस कुरुक्षेत्र की धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। इन कार्यों का उद्देश्य केवल तीर्थस्थलों का विकास करना नहीं, बल्कि उनकी मूल पहचान, ऐतिहासिक गरिमा और धार्मिक पवित्रता को सुरक्षित रखते हुए उन्हें भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करना भी है।

बोर्ड द्वारा ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, स्थानेश्वर महादेव, माँ भद्रकाली शक्तिपीठ, नाभिकमल तीर्थ, पिहोवा (पृथूदक), बाणगंगा, भीष्म कुंड, अभिमन्युपुर, कर्ण से जुड़े तीर्थों तथा 48 कोस क्षेत्र के अनेक अन्य स्थलों पर विकास कार्य किए गए हैं। घाटों का निर्माण एवं मरम्मत, सरोवरों का संरक्षण, सड़कों का विकास, संकेतक बोर्ड, प्रकाश व्यवस्था, पेयजल, स्वच्छता, विश्राम स्थल, उद्यान तथा यात्री सुविधाओं का विस्तार इन कार्यों की प्रमुख उपलब्धियाँ हैं।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए 48 कोस कुरुक्षेत्र के मानचित्र, तीर्थ-परिचय पुस्तिकाएँ तथा विभिन्न धार्मिक और ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी भी उपलब्ध कराई है। सन् 1999 में बोर्ड द्वारा एक विस्तृत सर्वेक्षण एवं दस्तावेजीकरण के पश्चात हिंदी में "48 कोस कुरुक्षेत्र भूमि की परिक्रमा" नामक पुस्तक प्रकाशित की गई थी, जो आज भी इस क्षेत्र के तीर्थों की प्रामाणिक जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इससे श्रद्धालुओं, पर्यटकों और शोधार्थियों को तीर्थों तक पहुँचने तथा उनके इतिहास को समझने में अत्यंत सुविधा मिलती है।

मेरी 48 कोस कुरुक्षेत्र शोध-यात्रा के दौरान मुझे कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का अत्यंत आत्मीय सहयोग प्राप्त हुआ। विशेष रूप से श्री उपेंद्र सिंघल जी ने पूरे मनोयोग से मेरी बात सुनी। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती

और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" नामक शोध-ग्रंथ तैयार कर रहा हूँ, तो उन्होंने इसे एक गंभीर शोध-कार्य मानते हुए हरसंभव सहयोग प्रदान किया।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड कार्यालय में श्री उपेंद्र सिंघल जी को अपनी पुस्तक 'महंत बने महाराजा' भेंट करते हुए लेखक नरेश दास वैष्णव निम्बार्क एवं शोध-यात्रा के सहयोगी साथी

उन्होंने मुझे 48 कोस कुरुक्षेत्र की आधिकारिक पुस्तक, हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा के आधिकारिक मानचित्र, संदर्भ सामग्री तथा अन्य उपयोगी जानकारी उपलब्ध कराई। इतना ही नहीं, उन्होंने कृष्ण संग्रहालय में अपने सहयोगी श्री गुलाब सिंह जी को दूरभाष पर सूचित करते हुए कहा कि "श्री नरेश दास वैष्णव निम्बार्क शोध कार्य के लिए आए हैं। इन्हें जिस भी प्रकार की जानकारी या सहयोग की आवश्यकता हो, यथासंभव उपलब्ध कराया जाए।" इस आत्मीय सहयोग के कारण मुझे संग्रहालय का गहन अध्ययन करने, प्रदर्शित सामग्री को समझने तथा शोध की दृष्टि से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में अत्यंत सुविधा हुई।

मेरे प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह कहना उचित होगा कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड केवल प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन नहीं कर रहा, बल्कि शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों और तीर्थयात्रियों को भी सकारात्मक सहयोग प्रदान कर रहा है। यही कारण है

कि आज 48 कोस कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक और धार्मिक विरासत अधिक व्यवस्थित रूप से देश और विश्व के सामने प्रस्तुत हो रही है।

एक शोधकर्ता के रूप में मैं अनुभव करता हूँ कि यदि प्रत्येक ऐतिहासिक और धार्मिक क्षेत्र में इसी प्रकार का संरक्षण, शोध-सहयोग और दूरदर्शी प्रबंधन अपनाया जाए, तो भारत की सांस्कृतिक धरोहर आने वाली पीढ़ियों के लिए और अधिक सुरक्षित एवं सुलभ बन सकती है।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने विकास, संरक्षण, शोध-सहयोग और तीर्थ-प्रबंधन के माध्यम से 48 कोस कुरुक्षेत्र की गौरवशाली परम्परा को नई ऊर्जा प्रदान की है। यह संस्था वास्तव में सनातन सांस्कृतिक विरासत की एक समर्पित संरक्षक के रूप में कार्य कर रही है।

भाग-3 : एक शोधकर्ता का अनुभव, आभार और निष्कर्ष

48 कोस कुरुक्षेत्र पर यह शोध-ग्रंथ तैयार करना मेरे लिए केवल एक लेखन-कार्य नहीं, बल्कि एक दीर्घकालीन साधना, शोध-यात्रा और सनातन संस्कृति की सेवा का विनम्र प्रयास रहा है। इस कार्य के दौरान मैंने अनेक तीर्थों, मंदिरों, आश्रमों, सरोवरों, संग्रहालयों तथा ऐतिहासिक स्थलों का प्रत्यक्ष भ्रमण किया। प्रत्येक स्थान पर मुझे यह अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र

केवल इतिहास की स्मृति नहीं, बल्कि आज भी जीवंत आस्था और संस्कृति का केंद्र है।

इस संपूर्ण शोध-यात्रा में कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का सहयोग मेरे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। विशेष रूप से बोर्ड के अधिकारी श्री उपेंद्र सिंघल जी ने जिस आत्मीयता, सरलता और विद्वत्तापूर्ण दृष्टि से मेरे शोध-कार्य को समझा, वह सदैव स्मरणीय रहेगा। उन्होंने न केवल मेरे शोध के उद्देश्य को गंभीरता से सुना, बल्कि 48 कोस कुरुक्षेत्र से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण संदर्भ-सामग्री, आधिकारिक प्रकाशन तथा हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा के मानचित्र भी उपलब्ध कराए, जिससे इस शोध-ग्रंथ को अधिक प्रामाणिक स्वरूप देने में महत्वपूर्ण सहायता मिली।

श्री उपेंद्र सिंघल जी ने कृष्ण संग्रहालय में अपने सहयोगी श्री गुलाब सिंह जी से दूरभाष पर बात कर मेरे शोध-कार्य की जानकारी दी तथा उनसे अनुरोध किया कि शोध के दौरान मुझे आवश्यक सहयोग प्रदान किया जाए। इसके उपरांत श्री गुलाब सिंह जी ने भी अत्यंत आत्मीयता से मेरा मार्गदर्शन किया। उन्होंने संग्रहालय की विभिन्न दीर्घाओं, प्रदर्शित सामग्री और शोधोपयोगी तथ्यों को समझने में सहयोग दिया तथा अध्ययन के लिए आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराई। यह सहयोग किसी भी स्वतंत्र शोधकर्ता के लिए अत्यंत प्रेरणादायक है।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड कार्यालय के प्रवेश द्वार पर लेखक एवं शोध-यात्रा के सहयोगी साथी

मेरे प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने 48 कोस कुरुक्षेत्र की धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण में उल्लेखनीय कार्य किया है। जहाँ-जहाँ मुझे भ्रमण करने का अवसर मिला, वहाँ स्वच्छता, सुव्यवस्थित तीर्थ-मार्ग, सूचना-पट्ट, हरित वातावरण, यात्री सुविधाएँ तथा विरासत संरक्षण के प्रति गंभीर प्रयास स्पष्ट रूप से दिखाई दिए। इन कार्यों के कारण आज देश-विदेश से आने वाले श्रद्धालुओं, पर्यटकों और शोधकर्ताओं को अत्यधिक सुविधा प्राप्त हो रही है।

एक लेखक और शोधकर्ता के रूप में मैं अपनी ओर से कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, विशेष रूप से श्री उपेंद्र सिंघल जी, श्री गुलाब सिंह जी तथा बोर्ड के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके सहयोग, मार्गदर्शन और सद्भावना के बिना इस शोध-ग्रंथ के अनेक पक्षों को इतनी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करना संभव नहीं होता। मैं उनके उज्ज्वल स्वास्थ्य, दीर्घायु और निरंतर सफल सेवाकार्य के लिए ईश्वर से मंगलकामना करता हूँ।

मेरा विश्वास है कि आने वाले वर्षों में भी कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड इसी समर्पण के साथ 48 कोस कुरुक्षेत्र की अमूल्य धरोहर का

संरक्षण करता रहेगा और आधुनिक तकनीक, शोध तथा जनसहभागिता के माध्यम से इस महान विरासत को विश्व के सामने और अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करेगा।

इस शोध के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड केवल एक प्रशासनिक संस्था नहीं, बल्कि धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक आत्मा का एक सजग संरक्षक है। इसके संरक्षण, विकास और शोध-सहयोग के प्रयासों ने कुरुक्षेत्र की प्राचीन गौरव-परम्परा को नई ऊर्जा प्रदान की है। यह संस्था आने वाली पीढ़ियों के लिए सनातन संस्कृति की इस अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखने में ऐतिहासिक भूमिका निभा रही है।

प्रमुख संदर्भ

• कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड – आधिकारिक परिचय-पट्ट एवं प्रकाशन (कार्यालय, कुरुक्षेत्र)

• "48 Kos Kurukshetra Bhumi Ki Parikrama" (हिंदी, 1999) — कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित

• लेखक का प्रत्यक्ष भ्रमण एवं शोध-सहयोग (2026) — श्री उपेंद्र सिंघल जी एवं श्री गुलाब सिंह जी, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड

खंड–3

48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा और शोध

प्रत्यक्ष अध्ययन • ऐतिहासिक साक्ष्य • पुरातात्त्विक शोध

48 कोस कुरुक्षेत्र केवल एक तीर्थ-परिक्रमा नहीं, बल्कि भारत की वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना की एक जीवंत यात्रा है। इस खंड में लेखक द्वारा किए गए प्रत्यक्ष तीर्थ-भ्रमण, पुरातात्त्विक अध्ययन, ऐतिहासिक स्रोतों, सरकारी अभिलेखों तथा स्थानीय परम्पराओं के आधार पर कुरुक्षेत्र की अमूल्य विरासत का शोधपरक एवं प्रमाणिक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस खंड का उद्देश्य केवल तीर्थों का परिचय देना नहीं, बल्कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की उस सनातन सांस्कृतिक धरोहर को प्रमाणिक रूप से प्रस्तुत करना है, जिसने हजारों वर्षों से भारतीय सभ्यता, धर्म और अध्यात्म को दिशा प्रदान की है।

"प्रत्यक्ष यात्रा, प्रमाणिक शोध और सनातन संस्कृति के प्रति समर्पण–यही इस ग्रंथ की आत्मा है।"

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

–नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

सेवानिवृत्त मानद नायब सूबेदार, भारतीय सेना | इतिहासकार | शोधकर्ता | लेखक

अध्याय–29

48 कोस कुरुक्षेत्र : तीर्थयात्रा की परम्परा

भाग-1 : सनातन धर्म की महान परिक्रमा

48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा भारत की सबसे प्राचीन और गौरवशाली धार्मिक यात्राओं में से एक मानी जाती है। यह केवल एक भौगोलिक परिक्रमा नहीं, बल्कि वैदिक संस्कृति, महाभारतकालीन इतिहास, ऋषि-परम्परा, सरस्वती सभ्यता तथा भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य संदेश से जुड़ी एक जीवंत आध्यात्मिक यात्रा है। हजारों वर्षों से साधु-संत, आचार्य, विद्वान, गृहस्थ और श्रद्धालु इस पवित्र भूमि की परिक्रमा करते रहे हैं। आज भी यह परम्परा श्रद्धा और विश्वास के साथ निरंतर जारी है।

प्राचीन ग्रंथों – विशेषकर महाभारत, वामन पुराण, स्कन्द पुराण, नारदीय पुराण तथा अन्य पुराणों – में कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र, ब्रह्मक्षेत्र और समन्तपञ्चक के नाम से वर्णित किया गया है। इन ग्रंथों के अनुसार 48 कोस की इस पवित्र भूमि में असंख्य तीर्थ, सरोवर, कुंड, आश्रम, वन, यज्ञस्थल और तपोभूमियाँ स्थित थीं, जहाँ देवताओं, ऋषियों और महापुरुषों ने तप, यज्ञ और धर्मकार्य संपन्न किए।

परम्परागत रूप से एक कोस की दूरी लगभग तीन किलोमीटर मानी जाती है। इस प्रकार 48 कोस का क्षेत्र लगभग 140–150 किलोमीटर के विस्तृत सांस्कृतिक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। वर्तमान में यह क्षेत्र हरियाणा के कुरुक्षेत्र, कैथल, करनाल, पानीपत और जींद जिलों के अनेक गाँवों, कस्बों और तीर्थस्थलों तक विस्तृत है। समय के साथ प्रशासनिक सीमाएँ बदली हैं, परंतु 48 कोस कुरुक्षेत्र की धार्मिक अवधारणा आज भी सनातन परम्परा में अक्षुण्ण है।

कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा का उद्देश्य केवल मंदिर-दर्शन या स्नान करना नहीं है। यह यात्रा श्रद्धालु को भारत की प्राचीन सभ्यता, वैदिक ज्ञान, महाभारत के इतिहास, सरस्वती नदी की स्मृतियों और ऋषि-मुनियों की तपोभूमियों से जोड़ती है। इस यात्रा के माध्यम से श्रद्धालु धर्म, इतिहास और संस्कृति के उस अद्भुत समन्वय का अनुभव करता है, जिसने हजारों वर्षों से भारत की आध्यात्मिक चेतना को दिशा दी है।

48 कोस कुरुक्षेत्र में ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, स्थानेश्वर महादेव, माँ भद्रकाली शक्तिपीठ, नाभिकमल तीर्थ, पिहोवा (पृथूदक), भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर, कर्ण से जुड़े तीर्थ, प्राचीन आश्रम, सप्तवन तथा अनेक अन्य पवित्र स्थल इस यात्रा के प्रमुख पड़ाव हैं। प्रत्येक तीर्थ का अपना अलग इतिहास, धार्मिक महत्व और सांस्कृतिक संदेश है।

मेरे इस शोध-ग्रंथ की तैयारी के दौरान मुझे स्वयं 48 कोस कुरुक्षेत्र की प्रत्यक्ष यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने विभिन्न तीर्थों, मंदिरों, सरोवरों, संग्रहालयों, पुरातात्त्विक स्थलों और ऐतिहासिक स्थानों का स्थल-निरीक्षण किया। इस प्रत्यक्ष अध्ययन ने मुझे यह अनुभव कराया कि कुरुक्षेत्र की वास्तविक पहचान केवल ग्रंथों में नहीं, बल्कि आज भी यहाँ की जीवित परम्पराओं, श्रद्धालुओं की आस्था और संरक्षित धरोहरों में विद्यमान है।

इस प्रकार 48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, सनातन संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक चेतना की एक अखंड यात्रा है। यह यात्रा प्रत्येक श्रद्धालु को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ती है और भारत की अमर विरासत का साक्षात्कार कराती है।

भाग-2 : परिक्रमा का स्वरूप, ऐतिहासिक विकास और आधुनिक व्यवस्था

48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा भारत की उन प्राचीन धार्मिक परम्पराओं में से है, जिनका आधार केवल आस्था नहीं, बल्कि वैदिक साहित्य, पुराणों, महाभारत तथा शताब्दियों से चली आ रही तीर्थ-परम्परा में निहित है। इस पवित्र परिक्रमा का उद्देश्य केवल विभिन्न तीर्थों का दर्शन करना नहीं, बल्कि धर्म, तप, यज्ञ, ज्ञान और भारतीय सांस्कृतिक विरासत का प्रत्यक्ष अनुभव करना है।

प्राचीन काल में तीर्थयात्री पैदल, बैलगाड़ियों अथवा घोड़ों के माध्यम से इस परिक्रमा को पूर्ण करते थे। यात्रा कई दिनों तक चलती थी। श्रद्धालु मार्ग में स्थित आश्रमों, धर्मशालाओं और मंदिरों में रात्रि विश्राम करते तथा सरोवरों, कुंडों और पवित्र नदियों में स्नान कर धार्मिक अनुष्ठान संपन्न करते थे। यह यात्रा सामाजिक समरसता, धार्मिक एकता और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का भी माध्यम रही है।

समय के साथ यातायात, संचार और तीर्थ-व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन आए हैं। वर्तमान में सड़क मार्ग, रेलवे तथा अन्य सुविधाओं के कारण श्रद्धालु अल्प समय में अनेक तीर्थों के दर्शन कर सकते हैं। फिर भी अनेक श्रद्धालु आज भी पारंपरिक भावना के साथ क्रमबद्ध रूप से 48 कोस की परिक्रमा करने का प्रयास करते हैं।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इस परम्परा को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए 48 कोस क्षेत्र के 182 प्रमुख तीर्थों का प्रलेखन, मानचित्रण तथा संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य किया है। विभिन्न तीर्थों पर सूचना-पट्ट, मार्गदर्शक संकेतक, यात्री सुविधाएँ, प्रकाश व्यवस्था तथा स्वच्छता जैसी व्यवस्थाओं ने इस परिक्रमा को अधिक सुगम और व्यवस्थित बनाया है। शोधार्थियों और श्रद्धालुओं के लिए प्रकाशित मानचित्र तथा संदर्भ सामग्री भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है।

मेरे शोध के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा का धार्मिक क्षेत्र और महाभारतकालीन कुरु राज्य का राजनीतिक विस्तार एक समान नहीं थे। महाभारतकालीन कुरु राज्य का विस्तार वर्तमान हरियाणा से आगे दिल्ली तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अनेक क्षेत्रों तक माना जाता है, जबकि 48 कोस की परिक्रमा एक विशिष्ट धार्मिक एवं तीर्थ-परम्परा के रूप में विकसित हुई। इसलिए इस ग्रंथ में इन दोनों अवधारणाओं को पृथक-पृथक समझने का प्रयास किया गया है।

मेरी प्रत्यक्ष शोध-यात्रा के दौरान मैंने अनुभव किया कि आज भी 48 कोस कुरुक्षेत्र की यात्रा केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति और अध्यात्म को एक साथ समझने का अद्भुत अवसर प्रदान करती है। प्रत्येक तीर्थ अपने भीतर एक स्वतंत्र ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्याय समेटे हुए है।

इस प्रकार 48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा अतीत और वर्तमान के बीच एक सशक्त सेतु है। यह परम्परा भारतीय सभ्यता की निरंतरता, सनातन संस्कृति की जीवंतता तथा धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र की अमर महिमा का साक्षात् प्रमाण प्रस्तुत करती है।

भाग-3 : मेरी शोध-यात्रा, अनुभव और निष्कर्ष

"सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" की रचना के लिए मैंने केवल प्राचीन ग्रंथों का

अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि स्वयं 48 कोस कुरुक्षेत्र के अनेक प्रमुख तीर्थों, सरोवरों, मंदिरों, आश्रमों, संग्रहालयों और ऐतिहासिक स्थलों का प्रत्यक्ष भ्रमण भी किया। मेरा विश्वास है कि किसी भी शोध-ग्रंथ की वास्तविक शक्ति केवल पुस्तकीय ज्ञान में नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अध्ययन और प्रामाणिक साक्ष्यों में निहित होती है।

इस शोध-यात्रा के दौरान मैंने ब्रह्म सरोवर, ज्योतिसर, सन्निहित सरोवर, स्थानेश्वर महादेव, नाभिकमल तीर्थ, माँ भद्रकाली शक्तिपीठ, आदित्य तीर्थ (अभिमन्युपुर), भीष्म कुंड, बाणगंगा, कर्ण से जुड़े तीर्थ, पिहोवा (पृथूदक), कृष्ण संग्रहालय तथा 48 कोस क्षेत्र के अनेक अन्य ऐतिहासिक स्थलों का प्रत्यक्ष अध्ययन किया। प्रत्येक स्थान पर वहाँ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, धार्मिक परम्परा, स्थापत्य, पुरातात्त्विक महत्त्व तथा वर्तमान स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन किया गया।

इस शोध-यात्रा के दौरान कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड तथा विभिन्न विद्वानों, महंतों, पुजारियों और स्थानीय जानकारों से भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई। जहाँ कहीं प्रामाणिक दस्तावेज़, सरकारी प्रकाशन अथवा पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध थे, उन्हें प्राथमिकता दी गई। इस ग्रंथ में यथासंभव उन्हीं तथ्यों को स्थान दिया गया है, जिनका आधार प्रामाणिक स्रोत हैं। केवल जनश्रुतियों पर आधारित विवरणों को इतिहास के रूप में प्रस्तुत करने से जानबूझकर परहेज़ किया गया है, क्योंकि इस

ग्रंथ का उद्देश्य एक शोधपरक और तथ्याधारित संदर्भ-ग्रंथ तैयार करना है।

मेरे प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि 48 कोस कुरुक्षेत्र आज भी भारत की सबसे समृद्ध सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासतों में से एक है। यदि इस क्षेत्र के शेष प्राचीन स्थलों का भी व्यवस्थित पुरातात्त्विक सर्वेक्षण, वैज्ञानिक अध्ययन और संरक्षण किया जाए, तो भारतीय इतिहास के अनेक नए तथ्य भविष्य में प्रकाश में आ सकते हैं। यह क्षेत्र अभी भी शोध की अपार संभावनाएँ अपने भीतर समेटे हुए है।

मैं अपनी इस शोध-यात्रा को केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं मानता, बल्कि सनातन संस्कृति, भारतीय इतिहास और आने वाली पीढ़ियों के प्रति अपना एक विनम्र दायित्व मानता हूँ। यदि यह ग्रंथ शोधार्थियों, विद्यार्थियों, इतिहासकारों, तीर्थयात्रियों और सामान्य पाठकों को कुरुक्षेत्र की वास्तविक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्ता समझने में सहायक सिद्ध होता है, तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा।

इस अध्याय के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थयात्रा केवल धार्मिक आस्था की यात्रा नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, वैदिक परम्परा, महाभारतकालीन इतिहास, सरस्वती संस्कृति और सनातन ज्ञान-परम्परा की एक जीवंत शोध-यात्रा है। यह परिक्रमा हमें अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ती है और यह प्रेरणा देती है कि हम अपनी प्राचीन

धरोहर का संरक्षण, अध्ययन और संवर्धन उसी श्रद्धा और उत्तरदायित्व के साथ करें, जिसके कारण यह विरासत हजारों वर्षों से आज तक सुरक्षित चली आ रही है।

अध्याय–30

48 कोस कुरुक्षेत्र के 182 तीर्थ : संक्षिप्त परिचय

48 कोस कुरुक्षेत्र के अंतर्गत आने वाले प्रत्येक तीर्थ का अपना विशिष्ट धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है। प्रस्तुत संक्षिप्त परिचय कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड की आधिकारिक तीर्थ-सूची, उपलब्ध प्राचीन ग्रंथों तथा लेखक के शोध-अध्ययन पर आधारित है।

जिला कुरुक्षेत्र (तीर्थ क्रमांक 1–46)

1. रन्तुक यक्ष (बीड़ पिपली) — यक्ष तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र का प्रवेशद्वार माना जाने वाला यह प्राचीन यक्ष तीर्थ धर्मक्षेत्र की प्राचीन सीमाओं का स्मरण कराता है। यक्ष-परम्परा से इसका विशेष संबंध माना जाता है।

2. माँ भद्रकाली मंदिर (कुरुक्षेत्र) — देव तीर्थ

हरियाणा के प्रमुख शक्तिपीठों में से एक। महाभारत परम्परा में पाण्डवों द्वारा विजय-प्रार्थना से जुड़ा यह मंदिर आज भी लाखों श्रद्धालुओं की आस्था का केन्द्र है।

3. स्थाण्वीश्वर महादेव मंदिर (थानेसर) — देव तीर्थ

कुरुक्षेत्र का प्राचीन शिवालय। मान्यता है कि भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने महाभारत युद्ध से पूर्व यहाँ भगवान शिव की आराधना की थी।

4. श्री कालेश्वर तीर्थ (थानेसर) — देव तीर्थ

भगवान शिव को समर्पित यह प्राचीन तीर्थ कुरुक्षेत्र की शैव परम्परा का महत्वपूर्ण केन्द्र है और स्थानीय धार्मिक जीवन में विशेष स्थान रखता है।

5. नाभिकमल तीर्थ (थानेसर) — देव तीर्थ

पौराणिक परम्परा में इसे ब्रह्माजी के प्राकट्य से सम्बद्ध माना जाता है। सृष्टि-चिन्तन की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण तीर्थ है।

6. बदरपाचन तीर्थ (थानेसर) — ऋषि तीर्थ

ऋषियों की तपस्या और वैदिक साधना से सम्बद्ध यह स्थल प्राचीन आश्रम-परम्परा की स्मृति को सुरक्षित रखता है।

7. कुबेर तीर्थ (थानेसर) — देव तीर्थ

धन के अधिष्ठाता देवता कुबेर को समर्पित यह तीर्थ समृद्धि और मंगलकामना का प्रतीक माना जाता है।

8. राम तीर्थ (थानेसर) — देव तीर्थ

भगवान श्रीराम की स्मृतियों से सम्बद्ध यह पवित्र तीर्थ सनातन परम्परा में श्रद्धापूर्वक पूजित है।

9. सन्निहित सरोवर (कुरुक्षेत्र) — मोक्ष तीर्थ

कुरुक्षेत्र का अत्यंत पवित्र सरोवर, जहाँ अमावस्या और सूर्यग्रहण के अवसर पर स्नान का विशेष महत्व माना गया है। पितृ-तर्पण और श्राद्ध के लिए भी यह प्रसिद्ध है।

10. ब्रह्म सरोवर (कुरुक्षेत्र) — देव तीर्थ

कुरुक्षेत्र का सबसे विशाल और प्रसिद्ध तीर्थ। परम्परा के अनुसार यहीं ब्रह्माजी ने सृष्टि-रचना का शुभारम्भ किया था।

11. बाणगंगा तीर्थ (दयालपुर) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

महाभारत के अनुसार भीष्म पितामह की प्यास बुझाने के लिए अर्जुन द्वारा बाण से जलधारा प्रकट करने की स्मृति से जुड़ा यह पवित्र स्थल आज भी श्रद्धा का केन्द्र है।

12. भीष्म कुण्ड (नरकातारी) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

भीष्म पितामह की शरशय्या से सम्बद्ध यह तीर्थ महाभारत के महान प्रसंगों का जीवंत स्मारक माना जाता है।

13. गीता जन्मस्थली (ज्योतिसर) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

यहीं भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश दिया। यह सम्पूर्ण विश्व के लिए धर्म, कर्म और ज्ञान का अमर संदेश-स्थल है।

14. सरस्वती घाट (खेड़ी मारकण्डा) — नित्य तीर्थ

सरस्वती नदी की प्राचीन परम्परा से जुड़ा यह स्थल वैदिक सभ्यता की स्मृतियों को संजोए हुए है।

15. त्रिपुरारि तीर्थ (तिगरी) — देव तीर्थ

भगवान शिव के त्रिपुरान्तक स्वरूप से सम्बद्ध यह तीर्थ शैव उपासना की प्राचीन परम्परा का प्रतीक है।

16. कुलोत्तारण तीर्थ (किरमिच) — मोक्ष तीर्थ

परम्परा के अनुसार यहाँ स्नान, दान और धार्मिक अनुष्ठानों से कुल की उन्नति एवं पितरों की शांति की कामना की जाती है।

17. अदिति तीर्थ (अभिमन्युपुर) — देव तीर्थ

देवमाता अदिति की तपस्थली के रूप में प्रसिद्ध यह तीर्थ वैदिक परम्परा और महाभारतकालीन इतिहास दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

18. सोम तीर्थ (अभिमन्युपुर) — देव तीर्थ

चन्द्रदेव (सोम) से सम्बद्ध यह प्राचीन तीर्थ वैदिक देव-उपासना की परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

19. अम्बा तीर्थ (अभिमन्युपुर) — देव तीर्थ

देवी-आराधना से सम्बद्ध यह तीर्थ शक्ति-परम्परा का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।

20. कौशिकी तीर्थ (अभिमन्युपुर) — मोक्ष तीर्थ

कौशिकी परम्परा से जुड़ा यह तीर्थ आध्यात्मिक साधना, स्नान और पुण्य-प्राप्ति के लिए प्राचीन काल से श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है।

21. ओजस तीर्थ (समशीपुर) — देव तीर्थ

वैदिक परम्परा में 'ओज' अर्थात् तेज, बल और आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रतीक माना गया है। यह तीर्थ साधना और आत्मबल की भावना से जुड़ा है।

22. आपगा तीर्थ (दयालपुर) — मोक्ष तीर्थ

प्राचीन आपगा नदी की स्मृतियों से सम्बद्ध यह तीर्थ स्नान, दान और पितृ-तर्पण के लिए प्रसिद्ध माना जाता है।

23. कर्ण का टीला (मिर्जापुर) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

यह स्थल महाभारत के महान दानवीर कर्ण की स्मृति से जुड़ा माना जाता है। यहाँ प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेष भी इसके ऐतिहासिक महत्व की ओर संकेत करते हैं।

24. काम्यक तीर्थ (कमौदा) — देव तीर्थ

वामन पुराण में वर्णित प्राचीन सप्तवनों में काम्यक वन का विशेष महत्व है। यह क्षेत्र ऋषियों की तपस्या और साधना से जुड़ा माना जाता है।

25. नृसिंह तीर्थ (बारवा) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु के नृसिंह अवतार को समर्पित यह तीर्थ धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश का प्रतीक है।

26. बरणावती तीर्थ (बारणा) — नित्य तीर्थ

यह प्राचीन तीर्थ क्षेत्रीय धार्मिक परम्पराओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है और नित्य तीर्थ के रूप में सूचीबद्ध है।

27. बाला सुन्दरी तीर्थ (हथीरा) — देव तीर्थ

माँ शक्ति के स्वरूप बाला सुन्दरी को समर्पित यह तीर्थ स्थानीय श्रद्धा और भक्ति का प्रमुख केन्द्र है।

28. विष्णुपद तीर्थ (घराड़सी) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु के चरणचिह्नों की परम्परा से जुड़ा यह तीर्थ वैष्णव उपासना का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।

29. यम कुण्ड (भैंसी माजरा) — देव तीर्थ

धर्मराज यम से सम्बद्ध यह तीर्थ कर्म, धर्म और मोक्ष की सनातन अवधारणा का प्रतीक माना जाता है।

30. लोमश तीर्थ (लोहार माजरा) — ऋषि तीर्थ

महर्षि लोमश की तपस्या और वैदिक ज्ञान-परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल प्राचीन ऋषि संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।

31. भूरिश्रवा तीर्थ (भौर सैयदां) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

महाभारत के वीर योद्धा भूरिश्रवा की स्मृति से सम्बद्ध यह स्थल युद्धकालीन घटनाओं का महत्वपूर्ण साक्षी माना जाता है।

32. शालिहोत्र तीर्थ (सारसा) — यक्ष तीर्थ

प्राचीन परम्परा में यह तीर्थ विशेष धार्मिक महत्व रखता है तथा आधिकारिक सूची में यक्ष तीर्थ के रूप में अंकित है।

33. मणिपूरक तीर्थ (मुर्तजापुर) — नित्य तीर्थ

यह तीर्थ प्राचीन धार्मिक आस्था और सतत तीर्थ-परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

34. अरुणाय तीर्थ (अरणाय) — देव तीर्थ

अरुण देव से सम्बद्ध माना जाने वाला यह तीर्थ वैदिक देव-परम्परा का एक प्राचीन केन्द्र है।

35. प्राची तीर्थ (पिहोवा) — मोक्ष तीर्थ

पिहोवा क्षेत्र का यह तीर्थ प्राचीन काल से श्राद्ध, तर्पण और मोक्ष परम्परा से जुड़ा हुआ है।

36. सरस्वती तीर्थ (पिहोवा) — मोक्ष तीर्थ

सरस्वती नदी की वैदिक परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ पितृ-संस्कार और धार्मिक अनुष्ठानों का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

37. ब्रहमयोनि तीर्थ (पिहोवा) — देव तीर्थ

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

सृष्टि और ब्रह्मा की पौराणिक परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ सनातन धर्म के प्राचीन दर्शन का प्रतीक है।

38. पृथूदक तीर्थ (पिहोवा) — मोक्ष तीर्थ

पितृ-श्राद्ध और तर्पण के लिए भारत के प्रमुख तीर्थों में से एक। इसकी महिमा अनेक प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है।

39. रेणुका तीर्थ (अरणैचा) — ऋषि तीर्थ

माता रेणुका और ऋषि परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ भारतीय तप और मातृ-श्रद्धा की स्मृति को जीवित रखता है।

40. सोम तीर्थ (गुमथला गढ़ू) — देव तीर्थ

सोमदेव को समर्पित यह तीर्थ वैदिक देव-पूजा की निरन्तर परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

41. ब्रह्म तीर्थ (थानेसर) — देव तीर्थ

ब्रह्मा से सम्बद्ध यह तीर्थ सृष्टि, यज्ञ और वैदिक परम्पराओं की स्मृति को संरक्षित किए हुए है।

42. सप्तसारस्वत तीर्थ (मांगना) — ऋषि तीर्थ

सप्त सरस्वती परम्परा तथा वैदिक ऋषियों की साधना से सम्बद्ध यह तीर्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

43. गालव तीर्थ (गुलडैहरा) — ऋषि तीर्थ

महर्षि गालव की तपस्या और ज्ञान-परम्परा से जुड़ा यह स्थल ऋषि संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

44. शुक्र तीर्थ (सतौड़ा) — ऋषि तीर्थ

महर्षि शुक्राचार्य की परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ प्राचीन भारतीय ज्ञान और नीति परम्परा का प्रतीक है।

45. सोम तीर्थ (सैंसा) — देव तीर्थ

चन्द्रदेव की उपासना से सम्बद्ध यह तीर्थ वैदिक देव-परम्परा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है।

46. त्रिसंध्या तीर्थ (संघोली) — देव तीर्थ

प्रातः, मध्यान्ह और सायं — तीनों संध्याओं की उपासना से जुड़ा यह तीर्थ वैदिक संध्यावंदन परम्परा का प्रतीक माना जाता है।

जिला कैथल (तीर्थ क्रमांक 47–119)

47. ग्यारह रुद्री तीर्थ (कैथल) — देव तीर्थ

भगवान शिव के रुद्र स्वरूपों की उपासना से सम्बद्ध यह प्राचीन तीर्थ शैव परम्परा का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।

48. वृद्धकेदार तीर्थ (कैथल) — ग्रह तीर्थ

प्राचीन धार्मिक परम्परा में यह तीर्थ आध्यात्मिक साधना एवं ग्रह-शांति से सम्बद्ध माना गया है।

49. सूर्य कुण्ड (कैथल) — ग्रह तीर्थ

सूर्योपासना का प्रमुख केन्द्र। यहाँ स्नान एवं अर्घ्यदान की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है।

50. बुद्ध कुण्ड (कैथल) — ग्रह तीर्थ

बुध ग्रह की शांति एवं ज्ञान की कामना से सम्बद्ध यह पवित्र कुण्ड धार्मिक महत्व रखता है।

51. बृहस्पति कुण्ड (कैथल) — ग्रह तीर्थ

देवगुरु बृहस्पति की आराधना से जुड़ा यह तीर्थ विद्या, धर्म और सद्बुद्धि का प्रतीक माना जाता है।

52. शुक्र कुण्ड (कैथल) — देव तीर्थ

शुक्राचार्य की परम्परा तथा धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बद्ध यह तीर्थ श्रद्धालुओं के लिए महत्वपूर्ण है।

53. शनि कुण्ड (देवीगढ़) — देव तीर्थ

शनिदेव की उपासना के लिए प्रसिद्ध यह स्थल कर्म और न्याय की भावना का संदेश देता है।

54. नवदुर्गा तीर्थ (कलशी) — देव तीर्थ

माँ दुर्गा के नौ स्वरूपों की आराधना से सम्बद्ध यह शक्ति-तीर्थ स्थानीय आस्था का प्रमुख केन्द्र है।

55. देवी तीर्थ (कलसी) — देव तीर्थ

देवी उपासना की प्राचीन परम्परा को आगे बढ़ाने वाला यह तीर्थ श्रद्धा और भक्ति का पवित्र स्थान है।

56. सरक तीर्थ (प्यौदा) — देव तीर्थ

यह प्राचीन देव-तीर्थ धार्मिक अनुष्ठानों और स्थानीय परम्पराओं के कारण महत्वपूर्ण माना जाता है।

57. शुद्धास्पद तीर्थ (ड्योढ़खेड़ी) — नित्य तीर्थ

शुद्धि, पवित्रता और धार्मिक आचरण का प्रतीक यह तीर्थ नित्य तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है।

58. अन्यजन्म तीर्थ (काकौत) — देव तीर्थ

यह तीर्थ आत्मचिंतन और आध्यात्मिक उन्नति की भावना से जुड़ा हुआ माना जाता है।

59. कुकृत्यनाशन तीर्थ (सौंगल) — देव तीर्थ

पापों के प्रायश्चित और सदाचार की प्रेरणा देने वाला यह तीर्थ सनातन परम्परा में विशेष स्थान रखता है।

60. वामन तीर्थ (सौंगल) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु के वामन अवतार को समर्पित यह तीर्थ धर्म और विनम्रता का संदेश देता है।

61. श्रीतीर्थ (जाखौली) — यक्ष तीर्थ

प्राचीन यक्ष परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

62. रसमंगल तीर्थ (जाखौली) — यक्ष तीर्थ

शुभता, मंगल और धार्मिक आस्था का प्रतीक यह प्राचीन यक्ष तीर्थ स्थानीय परम्पराओं में प्रतिष्ठित है।

63. हव्य तीर्थ (करोड़ा) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

यज्ञ एवं वैदिक आहुति की परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल महाभारतकालीन स्मृतियों से भी जुड़ा माना जाता है।

64. कव्य तीर्थ (सिसला) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

पितृ-तर्पण और वैदिक कर्मकाण्ड की परम्परा से सम्बन्धित यह तीर्थ विशेष धार्मिक महत्व रखता है।

65. वीर बर्बरीक श्याम तीर्थ (सेरहदा) — ऋषि तीर्थ

महाभारत के महान वीर बर्बरीक की स्मृति से जुड़ा यह स्थल श्रद्धा और वीरता का प्रतीक माना जाता है।

66. चक्र तीर्थ (हजवाना) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु के सुदर्शन चक्र की परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ वैष्णव आस्था का प्रमुख केन्द्र है।

67. जुहोमि तीर्थ (बरसाना) — देव तीर्थ

यज्ञीय परम्पराओं और वैदिक अनुष्ठानों से सम्बन्धित यह तीर्थ धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है।

68. विष्णुपद तीर्थ (हाबड़ी) — ऋषि तीर्थ

भगवान विष्णु की चरण-परम्परा से जुड़ा यह तीर्थ वैष्णव साधना का पवित्र स्थल है।

69. सूर्यकुण्ड (डीग) — मोक्ष तीर्थ

सूर्योपासना, स्नान और पुण्य-कर्म के लिए प्रसिद्ध यह तीर्थ मोक्षदायी स्थलों में गिना जाता है।

70. कण्व ऋषि आश्रम (रसीना) — देव तीर्थ

महर्षि कण्व की तपस्या, वैदिक शिक्षा और आश्रम-परम्परा से सम्बद्ध यह स्थान भारतीय ऋषि संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

71. ऋणमोचन तीर्थ (पूण्डरी) — देव तीर्थ

मान्यता है कि यहाँ श्रद्धापूर्वक स्नान, दान और पूजा-अर्चना करने से मनुष्य अपने ऋणों तथा पापकर्मों से मुक्ति की कामना करता है। यह तीर्थ धर्म और कर्तव्य पालन का संदेश देता है।

72. पुण्डरीक तीर्थ (मोहना) — देव तीर्थ

प्राचीन पूण्डरीक क्षेत्र से सम्बद्ध यह तीर्थ वैष्णव एवं वैदिक परम्पराओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। धार्मिक अनुष्ठानों के लिए यह प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है।

73. देवी तीर्थ (ट्योंठा) — ऋषि तीर्थ

शक्ति उपासना तथा ऋषियों की साधना से सम्बद्ध यह स्थल स्थानीय श्रद्धा और प्राचीन धार्मिक परम्पराओं का केन्द्र है।

74. त्रिविष्टप तीर्थ (मुन्दड़ी) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

'त्रिविष्टप' का अर्थ स्वर्गलोक से माना जाता है। यह तीर्थ महाभारतकालीन धार्मिक परम्पराओं से जुड़ा हुआ माना जाता है।

75. लव-कुश तीर्थ (गियोंग) — ऋषि तीर्थ

भगवान श्रीराम के पुत्र लव और कुश की स्मृतियों से सम्बद्ध यह तीर्थ भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का महत्वपूर्ण प्रतीक है।

76. यज्ञसंग तीर्थ (फरल) — देव तीर्थ

प्राचीन यज्ञ-परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करने वाला यह तीर्थ वैदिक संस्कृति और अग्निहोत्र परम्परा की स्मृति को सुरक्षित रखता है।

77. फल्गु तीर्थ (फरल) — देव तीर्थ

धार्मिक अनुष्ठानों और पुण्यकर्मों के लिए प्रसिद्ध यह तीर्थ क्षेत्रीय धार्मिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग है।

78. पवनेश्वर तीर्थ (धेरडू) — देव तीर्थ

भगवान शिव के पवनेश्वर स्वरूप को समर्पित यह तीर्थ शैव परम्परा की प्राचीन धरोहर माना जाता है।

79. ध्रुव कुण्ड (साकरा) — मोक्ष तीर्थ

ध्रुव की अटल भक्ति की स्मृति से प्रेरित यह तीर्थ श्रद्धा, धैर्य और ईश्वर-निष्ठा का संदेश देता है।

80. अलेपक तीर्थ (कौल) — ऋषि तीर्थ

ऋषि-मुनियों की तपस्या से सम्बद्ध यह तीर्थ वैदिक ज्ञान-परम्परा का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।

81. कुलोत्तारण तीर्थ (कौल) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

धार्मिक मान्यता के अनुसार यहाँ किए गए पुण्यकर्म कुल के कल्याण और पितरों की शांति के लिए फलदायी माने जाते हैं।

82. कपिलमुनि तीर्थ (पबनावा) — देव तीर्थ

महर्षि कपिल के नाम से प्रसिद्ध यह तीर्थ भारतीय दर्शन और तपस्या की महान परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

83. गढ़रथेश्वर तीर्थ (बरोट) — ऋषि तीर्थ

प्राचीन शिव-उपासना और ऋषि संस्कृति से सम्बद्ध यह स्थल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

84. पवनह्रद तीर्थ (क्योड़क) — नित्य तीर्थ

पवित्र जलाशय के रूप में प्रसिद्ध यह तीर्थ नित्य धार्मिक अनुष्ठानों का केन्द्र माना जाता है।

85. बंटेश्वर तीर्थ (बलवन्ती) — देव तीर्थ

भगवान शिव को समर्पित यह प्राचीन तीर्थ स्थानीय आस्था का प्रमुख केन्द्र है।

86. कोटिकूट तीर्थ (नौच) — ऋषि तीर्थ

ऋषियों की तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध यह स्थल वैदिक साधना और आध्यात्मिक जीवन का प्रतीक है।

87. वेदवती तीर्थ (बानपुरा) — देव तीर्थ

वेदवती की तपस्या से सम्बद्ध यह तीर्थ सनातन धर्म की तप, त्याग और साधना परम्परा का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।

88. नैमिष तीर्थ (रसूलपुर) — देव तीर्थ

प्रसिद्ध नैमिषारण्य की स्मृति से जुड़ा यह तीर्थ वैदिक अध्ययन और धार्मिक अनुष्ठानों की परम्परा को दर्शाता है।

89. श्रीकुंज तीर्थ (सीवन) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु एवं श्रीकृष्ण की भक्ति-परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ श्रद्धा का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

90. मातृ तीर्थ (सोथा) — नित्य तीर्थ

मातृ-श्रद्धा और पारिवारिक संस्कारों का प्रतीक यह तीर्थ भारतीय संस्कृति में माता के सर्वोच्च स्थान का स्मरण कराता है।

91. स्वर्गद्वार तीर्थ (पोलड़) — नित्य तीर्थ

धार्मिक परम्परा में इसे पुण्यलोक की प्राप्ति का प्रतीक माना गया है। श्रद्धालु यहाँ पुण्यकर्म और स्मरण के लिए आते हैं।

92. सुतीर्थ (गोहराखेड़ी) — देव तीर्थ

यह प्राचीन देव-तीर्थ धार्मिक अनुष्ठानों और स्थानीय श्रद्धा का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

93. इक्षुमति तीर्थ (प्रभावत) — देव तीर्थ

प्राचीन इक्षुमती नदी की स्मृति से जुड़ा यह तीर्थ वैदिक जल-परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

94. गन्धर्व तीर्थ (गोरखेड़ी) — देव तीर्थ

गन्धर्व परम्परा और देव-संस्कृति से सम्बद्ध यह तीर्थ भारतीय पौराणिक विरासत का महत्वपूर्ण अंग है।

95. ब्रह्मावर्त तीर्थ (प्रभावत) — देव तीर्थ

ब्रह्मा और वैदिक सृष्टि-चिन्तन की परम्परा से जुड़ा यह तीर्थ प्राचीन धार्मिक महत्व का स्थल माना जाता है।

96. अरन्तुक यक्ष (बेहरजक्ष) — यक्ष तीर्थ

प्राचीन यक्ष-परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ धर्मक्षेत्र की सांस्कृतिक विविधता का परिचायक है। यक्ष उपासना की स्मृति आज भी इस स्थल से जुड़ी हुई है।

97. शृंगी ऋषि तीर्थ (सांघन) — ऋषि तीर्थ

महर्षि शृंगी की तपस्या और वैदिक ज्ञान-परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल ऋषि संस्कृति की अमूल्य धरोहर माना जाता है।

98. गोभवन तीर्थ (गुहना) — नित्य तीर्थ

गौ-संरक्षण और ग्रामीण धार्मिक जीवन से जुड़ा यह तीर्थ सनातन संस्कृति में गौ-सेवा की परम्परा का प्रतीक है।

99. सूर्यकुण्ड (सजूमा) — देव तीर्थ

भगवान सूर्य की आराधना के लिए प्रसिद्ध यह प्राचीन तीर्थ धार्मिक स्नान एवं अर्घ्यदान का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

100. ब्रह्मोदुम्बर तीर्थ (शीलाखेड़ी) — देव तीर्थ

ब्रह्मा और उदुम्बर वृक्ष की पौराणिक परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ आध्यात्मिक साधना का पवित्र स्थल माना जाता है।

101. मानुष तीर्थ (मानस) — देव तीर्थ

मानव जीवन के धर्म, सदाचार और आत्मकल्याण का संदेश देने वाला यह प्राचीन तीर्थ श्रद्धालुओं के लिए प्रेरणास्रोत है।

102. आपगा तीर्थ (गादली) — मोक्ष तीर्थ

प्राचीन आपगा नदी की स्मृति से जुड़ा यह तीर्थ स्नान, तर्पण और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए प्रसिद्ध है।

103. कपिल मुनि तीर्थ (कलायत) — ऋषि तीर्थ

महर्षि कपिल की तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध यह स्थल भारतीय दर्शन और सांख्य परम्परा का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।

104. मुकुटेश्वर तीर्थ (मटोर) — ऋषि तीर्थ

शिवोपासना और ऋषियों की साधना से सम्बद्ध यह तीर्थ स्थानीय धार्मिक परम्पराओं में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

105. श्रीतीर्थ (मटोर) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु एवं श्रीहरि की उपासना से सम्बद्ध यह तीर्थ श्रद्धा और भक्ति का केन्द्र है।

106. खट्वांगेश्वर तीर्थ (खडालवा) — देव तीर्थ

भगवान शिव के खट्वांगेश्वर स्वरूप को समर्पित यह प्राचीन तीर्थ शैव परम्परा की धरोहर है।

107. वरणेसर तीर्थ (संगरौली) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

महाभारतकालीन परम्पराओं से जुड़ा यह तीर्थ धर्मक्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व को स्मरण कराता है।

108. पंचतीर्थी (संगरौली) — देव तीर्थ

पाँच पवित्र तीर्थों की संयुक्त परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

109. च्यवन ऋषि तीर्थ (सलीमपुर मदूद) — ऋषि तीर्थ

महर्षि च्यवन की तपस्या और आयुर्वेद परम्परा से जुड़ा यह तीर्थ भारतीय ऋषि परम्परा का गौरव है।

110. जमदग्नि कुण्ड (जाजनपुर) — ऋषि तीर्थ

महर्षि जमदग्नि की स्मृति से सम्बद्ध यह पवित्र स्थल वैदिक तप और ज्ञान का प्रतीक माना जाता है।

111. विन्दुसर तीर्थ (बन्दराना) — देव तीर्थ

प्राचीन जल-परम्परा और धार्मिक स्नान से जुड़ा यह तीर्थ पुण्यदायक माना जाता है।

112. जड़भरत तीर्थ (जडौला) — ऋषि तीर्थ

महात्मा जड़भरत के वैराग्य, आत्मज्ञान और आध्यात्मिक जीवन की स्मृति से जुड़ा यह स्थल अत्यंत प्रेरणादायक है।

113. अमरह्रद तीर्थ (चन्दलाना) — देव तीर्थ

पवित्र सरोवर के रूप में प्रसिद्ध यह तीर्थ धार्मिक अनुष्ठानों और श्रद्धा का केन्द्र है।

114. बालखिल्य तीर्थ (बालू) — ऋषि तीर्थ

बालखिल्य ऋषियों की तपस्या से सम्बद्ध यह स्थल वैदिक ऋषि-परम्परा की प्राचीन धरोहर माना जाता है।

115. धर्मकुण्ड (पाई) — देव तीर्थ

धर्म, सत्य और पुण्यकर्म की प्रेरणा देने वाला यह पवित्र कुण्ड श्रद्धालुओं के लिए विशेष महत्व रखता है।

116. द्वादशराशि तीर्थ (म्यौली) — ऋषि तीर्थ

वैदिक ज्योतिष और कालगणना की परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ भारतीय ज्ञान-विज्ञान की स्मृति को संरक्षित करता है।

117. सर्वरोगहर तीर्थ (पिलनी) — नैमित्तिक तीर्थ

परम्परा में यह तीर्थ शारीरिक और मानसिक कल्याण की कामना से जुड़ा हुआ माना जाता है।

118. निराकार तीर्थ (पिलनी) — देव तीर्थ

निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना की भावना का प्रतीक यह तीर्थ आध्यात्मिक चिन्तन का केन्द्र माना जाता है।

119. कुलोत्तारण तीर्थ (कुलतारण) — मोक्ष तीर्थ

कुल की उन्नति, पितरों की शांति और मोक्ष की कामना से जुड़ा यह तीर्थ कैथल जनपद के प्रमुख मोक्ष तीर्थों में गिना जाता है।

जिला जींद (तीर्थ क्रमांक 120–141)

120. भूतेश्वर तीर्थ (जींद) — देव तीर्थ

भगवान शिव के भूतेश्वर स्वरूप को समर्पित यह प्राचीन तीर्थ जींद जनपद के प्रमुख धार्मिक स्थलों में से एक है।

121. एकहंस तीर्थ (इक्कस) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

महाभारतकालीन परम्पराओं से सम्बद्ध यह तीर्थ धर्मक्षेत्र की ऐतिहासिक स्मृतियों का महत्वपूर्ण अंग है।

122. रामह्रद तीर्थ (रामराय) — देव तीर्थ

भगवान श्रीराम की स्मृतियों से जुड़ा यह पवित्र जलाशय धार्मिक आस्था का केन्द्र है।

123. सन्निहित तीर्थ (रामराय) — मोक्ष तीर्थ

पितृ-तर्पण, स्नान और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए प्रसिद्ध यह तीर्थ मोक्षदायी स्थलों में गिना जाता है।

124. गोविन्द कुण्ड (राजपुरा) — मोक्ष तीर्थ

भगवान श्रीकृष्ण (गोविन्द) की स्मृति से सम्बद्ध यह कुण्ड वैष्णव श्रद्धालुओं के लिए विशेष महत्व रखता है।

125. पुष्कर तीर्थ / कपिल यक्ष (पोंकरी खेड़ी) — यक्ष तीर्थ

यक्ष-परम्परा तथा प्राचीन धार्मिक आस्थाओं से सम्बद्ध यह तीर्थ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है।

126. सोम तीर्थ (पाण्डु पिण्डारा) — देव तीर्थ

पाण्डु पिण्डारा प्राचीन काल से प्रसिद्ध धार्मिक क्षेत्र रहा है। सोम तीर्थ वैदिक देव-उपासना का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

127. वराह तीर्थ (बराह कलाँ) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु के वराह अवतार को समर्पित यह तीर्थ सनातन धर्म की अवतार-परम्परा का प्रतीक है।

128. अश्विनी कुमार तीर्थ (आसन) — देव तीर्थ

देववैद्य अश्विनी कुमारों की स्मृति से जुड़ा यह तीर्थ स्वास्थ्य और आरोग्य की मंगलकामना का प्रतीक माना जाता है।

129. जमदग्नि तीर्थ (जामनी) — ऋषि तीर्थ

महर्षि जमदग्नि की तपस्या और वैदिक ज्ञान परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल ऋषि संस्कृति की धरोहर है।

130. ययाति तीर्थ (कालवा) — नित्य तीर्थ

राजा ययाति की परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ भारतीय इतिहास और पुराणों की स्मृतियों को संजोए हुए है।

131. चौंसठ योगिनी तीर्थ (कलावती) — देव तीर्थ

शक्ति उपासना की प्राचीन परम्परा का यह महत्वपूर्ण केन्द्र तांत्रिक एवं शाक्त साधना से भी सम्बद्ध माना जाता है।

132. पंचनद तीर्थ / हटकेश्वर तीर्थ (हाट) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

पाँच पवित्र जलधाराओं की परम्परा तथा भगवान शिव की उपासना से जुड़ा यह तीर्थ विशेष महत्व रखता है।

133. सर्पदमन तीर्थ (सफीदों) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

नाग-परम्परा और महाभारतकालीन घटनाओं से सम्बद्ध यह तीर्थ प्राचीन धार्मिक आस्था का केन्द्र है।

134. सर्पदधि तीर्थ (सफीदों) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

सर्प परम्परा से जुड़ा यह तीर्थ धर्मक्षेत्र की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण अंग है।

135. वंशमूलक तीर्थ (बरसोला) — मोक्ष तीर्थ

पितृ-श्रद्धा और वंश की मंगलकामना से सम्बद्ध यह तीर्थ धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

136. कायशोधन तीर्थ (कसूहन) — नित्य तीर्थ

आत्मिक एवं शारीरिक शुद्धि की भावना से जुड़ा यह तीर्थ सनातन जीवन-दर्शन का परिचायक है।

137. रामसर तीर्थ (कुचराना कलाँ) — नित्य तीर्थ

प्राचीन सरोवर के रूप में प्रसिद्ध यह स्थल धार्मिक स्नान और पूजा-अर्चना का केन्द्र है।

138. लोकोद्धार तीर्थ (लोधार) — ऋषि तीर्थ

लोककल्याण और धर्म-प्रचार की भावना से सम्बद्ध यह तीर्थ ऋषि परम्परा की महान विरासत को दर्शाता है।

139. मल्लिकेश्वर तीर्थ (ढाटरथ) — देव तीर्थ

भगवान शिव के मल्लिकेश्वर स्वरूप को समर्पित यह प्राचीन तीर्थ स्थानीय श्रद्धा का प्रमुख केन्द्र है।

140. सोहम तीर्थ (साहनपुर) — ऋषि तीर्थ

'सोऽहम्' के वैदिक महावाक्य से प्रेरित यह तीर्थ आत्मज्ञान और आध्यात्मिक साधना का प्रतीक माना जाता है।

141. पराशर तीर्थ (पाजूकलाँ) — ऋषि तीर्थ

महर्षि पराशर की तपस्या और वैदिक परम्परा से जुड़ा यह स्थल भारतीय ऋषि संस्कृति का गौरव है।

जिला पानीपत (तीर्थ क्रमांक 142)

142. मचकुक यक्ष (सींक) — यक्ष तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र की आधिकारिक सूची में पानीपत जनपद का यह एकमात्र तीर्थ है। यक्ष-परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल दर्शाता है कि धर्मक्षेत्र की सांस्कृतिक सीमा वर्तमान प्रशासनिक सीमाओं से कहीं अधिक व्यापक रही है। यह तीर्थ 48 कोस कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक एकता का महत्वपूर्ण प्रतीक है।

जिला करनाल (तीर्थ क्रमांक 143–182)

143. मिश्रक तीर्थ (निसिंग) — ऋषि तीर्थ

प्राचीन ऋषियों की तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध यह तीर्थ वैदिक अध्ययन, यज्ञ और साधना की परम्परा का महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है।

144. दशरथ / राघवेन्द्र तीर्थ (औंगद) — नित्य तीर्थ

यह तीर्थ मर्यादा, धर्मपालन और राजधर्म की स्मृतियों से जुड़ा हुआ माना जाता है तथा स्थानीय धार्मिक आस्था का प्रमुख केन्द्र है।

145. दक्षेश्वर तीर्थ (डाचर) — देव तीर्थ

भगवान शिव के दक्षेश्वर स्वरूप को समर्पित यह प्राचीन तीर्थ शैव परम्परा का महत्वपूर्ण स्थल है।

146. गौतम ऋषि / गवेन्द्र तीर्थ (गोंदर) — ऋषि तीर्थ

महर्षि गौतम की तपस्या और वैदिक ज्ञान-परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल भारतीय ऋषि संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

147. जमदग्नि कुण्ड (जलमाणा) — ऋषि तीर्थ

महर्षि जमदग्नि के नाम से प्रसिद्ध यह कुण्ड तप, त्याग और वैदिक परम्परा का प्रतीक माना जाता है।

148. पंचदेव तीर्थ (पाढ़ा) — देव तीर्थ

पाँच प्रमुख देवताओं की उपासना से सम्बद्ध यह तीर्थ सनातन धर्म की समन्वयकारी परम्परा को दर्शाता है।

149. कोटि तीर्थ (कुरलन) — नित्य तीर्थ

धार्मिक मान्यता है कि यहाँ किया गया स्नान और दान अनेक तीर्थों के पुण्य के समान फलदायी माना जाता है।

150. दशाश्वमेध तीर्थ (सालवन) — नित्य तीर्थ

वैदिक यज्ञ-परम्परा की स्मृति से जुड़ा यह तीर्थ अश्वमेध यज्ञ की ऐतिहासिक परम्परा का प्रतीक माना जाता है।

151. ब्रह्म तीर्थ (रिसालवा) — देव तीर्थ

ब्रह्मा की आराधना और सृष्टि-चिन्तन से सम्बद्ध यह तीर्थ धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

152. फल्गु तीर्थ (फफड़ाना) — ऋषि तीर्थ

ऋषियों की साधना तथा वैदिक जीवन-पद्धति से सम्बद्ध यह तीर्थ प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा का परिचायक है।

153. धनक्षेत्र तीर्थ (असन्ध) — नित्य तीर्थ

धर्मसम्मत समृद्धि, परिश्रम और लोककल्याण की भावना से जुड़ा यह प्राचीन तीर्थ स्थानीय श्रद्धा का केन्द्र है।

154. जरासन्ध का टीला (असन्ध) — महाभारत सम्बद्ध तीर्थ

महाभारतकालीन परम्पराओं से जुड़ा यह ऐतिहासिक स्थल पुरातात्त्विक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। असन्ध क्षेत्र प्राचीन अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है।

155. जम्बूनद तीर्थ (जबाला) — नित्य तीर्थ

प्राचीन जलधारा और धार्मिक स्नान की परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ श्रद्धालुओं के लिए पवित्र माना जाता है।

156. पावन तीर्थ (उपलाना) — नित्य तीर्थ

नाम के अनुरूप यह तीर्थ आत्मशुद्धि, पुण्य और धार्मिक जीवन की प्रेरणा देता है।

157. चुच्चुकारण्डव तीर्थ (चोरकारसा) — नित्य तीर्थ

यह प्राचीन तीर्थ स्थानीय धार्मिक परम्पराओं तथा सनातन आस्था का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है।

158. त्रिगुणानन्द तीर्थ (गुनियाना) — ऋषि तीर्थ

सत्त्व, रज और तम — इन त्रिगुणों के आध्यात्मिक विवेचन की स्मृति से जुड़ा यह तीर्थ वैदिक दर्शन का प्रतीक माना जाता है।

159. व्यास-स्थली (बस्तली) — ऋषि तीर्थ

महर्षि वेदव्यास की तपस्या और महाभारत की परम्परा से सम्बद्ध यह स्थल भारतीय इतिहास और साहित्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

160. पृथ्वी तीर्थ (बालू) — नित्य तीर्थ

भूमाता के प्रति सम्मान, प्रकृति-संरक्षण और जीवन के आधार का संदेश देने वाला यह प्राचीन तीर्थ विशेष महत्व रखता है।

161. पराशर तीर्थ (बहलोलपुर) — ऋषि तीर्थ

महर्षि पराशर की तपस्या, वेद-विज्ञान और ऋषि-परम्परा से जुड़ा यह स्थल श्रद्धा का केन्द्र है।

162. विमलसर तीर्थ (सग्गा) — देव तीर्थ

पवित्र सरोवर के रूप में प्रसिद्ध यह तीर्थ धार्मिक स्नान, पूजा-अर्चना और आध्यात्मिक शांति के लिए जाना जाता है।

163. वेदवती तीर्थ (सीतामाई) — देव तीर्थ

यह तीर्थ देवी वेदवती की तपस्या और वैदिक परम्परा से सम्बद्ध माना जाता है। आज भी यह क्षेत्र श्रद्धा और आध्यात्मिक आस्था का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

164. कौशिकी तीर्थ (कोयर) — नित्य तीर्थ

प्राचीन कौशिकी परम्परा से जुड़ा यह तीर्थ धार्मिक अनुष्ठानों और पुण्य-स्नान के लिए प्रसिद्ध है।

165. सुदिन एवं नर्वदा तीर्थ (ओंकार का खेड़ा) — नित्य तीर्थ

यह तीर्थ शुभ कर्म, धार्मिक जीवन और जल-परम्परा का प्रतीक माना जाता है तथा स्थानीय श्रद्धालुओं में विशेष सम्मान रखता है।

166. आहन तीर्थ (निगदू) — नित्य तीर्थ

सनातन धार्मिक परम्पराओं में वर्णित यह तीर्थ आध्यात्मिक साधना और पुण्यकर्म का केन्द्र माना जाता है।

167. प्रोक्षणी / प्रणीता तीर्थ (पत्नपुरी) — नित्य तीर्थ

वैदिक यज्ञों में प्रयोग होने वाले पवित्र जल की परम्परा से सम्बद्ध यह तीर्थ शुद्धि और संस्कारों का प्रतीक है।

168. ब्रह्म तीर्थ (सावंत) — देव तीर्थ

ब्रह्मा की उपासना और सृष्टि-चिन्तन से सम्बद्ध यह प्राचीन तीर्थ धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

169. ज्येष्ठाश्रम तीर्थ (बोड़श्याम) — देव तीर्थ

ऋषियों के आश्रम और तपस्या की स्मृति को संजोए यह स्थल प्राचीन आश्रम संस्कृति का परिचायक है।

170. कोटि तीर्थ (बोड़श्याम) — देव तीर्थ

धार्मिक मान्यता के अनुसार इस तीर्थ का पुण्य अनेक तीर्थों के समान फलदायी माना जाता है।

171. सूर्य तीर्थ (बोड़श्याम) — देव तीर्थ

भगवान सूर्य की उपासना का यह प्रमुख केन्द्र वैदिक सूर्य-परम्परा की निरन्तरता का प्रतीक है।

172. विष्णुपद / वामनक तीर्थ (बोड़श्याम) — देव तीर्थ

भगवान विष्णु तथा वामन अवतार की स्मृतियों से सम्बद्ध यह तीर्थ वैष्णव परम्परा का महत्वपूर्ण स्थल है।

173. सोम तीर्थ (समाना बाहु) — देव तीर्थ

चन्द्रदेव (सोम) की उपासना से सम्बद्ध यह तीर्थ वैदिक देव-परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

174. अंजनी तीर्थ (अंजनथली) — देव तीर्थ

माता अंजनी की स्मृति से जुड़ा यह तीर्थ भगवान हनुमान की परम्परा से भी श्रद्धापूर्वक जोड़ा जाता है।

175. अक्षयवट तीर्थ (बड़थल) — नित्य तीर्थ

अक्षयवट सनातन धर्म में अमरत्व, निरन्तरता और आध्यात्मिक स्थिरता का प्रतीक माना जाता है।

176. ययाति तीर्थ (रायसन) — नित्य तीर्थ

राजा ययाति की स्मृतियों से सम्बद्ध यह तीर्थ प्राचीन भारतीय इतिहास और पुराण परम्परा का महत्वपूर्ण अंग है।

177. आरोग्य तीर्थ (बरास) — नैमित्तिक तीर्थ

धार्मिक मान्यता के अनुसार यह तीर्थ आरोग्य और कल्याण की कामना से जुड़ा हुआ माना जाता है।

178. मनोजव तीर्थ (बरास) — नैमित्तिक तीर्थ

यह तीर्थ मानसिक शक्ति, उत्साह और आध्यात्मिक उन्नति का प्रतीक माना जाता है।

179. दुण्डीराज तीर्थ (सौकड़ा) — देव तीर्थ

श्रीगणेश के दुण्डीराज स्वरूप से सम्बद्ध यह तीर्थ विघ्नों के निवारण और मंगलारम्भ का प्रतीक है।

180. शाकुम्बरी देवी तीर्थ (अलावला) — देव तीर्थ

माता शाकुम्बरी को समर्पित यह शक्तिस्थल देवी-भक्ति और लोकआस्था का प्रमुख केन्द्र है।

181. कुलोत्तारण तीर्थ (कारसा डोड) — देव तीर्थ

यह तीर्थ कुल-कल्याण, पितृ-स्मरण और धार्मिक अनुष्ठानों की प्राचीन परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

182. रामशरण तीर्थ (हथलाना) — मोक्ष तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र की आधिकारिक सूची का अंतिम तीर्थ। भगवान श्रीराम की शरणागति, धर्मनिष्ठा और मोक्ष की भावना से सम्बद्ध यह तीर्थ इस दिव्य तीर्थ-परिक्रमा का प्रेरणादायी समापन बिन्दु माना जाता है।

उपसंहार

48 कोस कुरुक्षेत्र के 182 तीर्थ केवल पूजा-अर्चना के स्थल नहीं हैं, बल्कि भारत की वैदिक सभ्यता, महाभारतकालीन इतिहास, ऋषि-परम्परा, यज्ञ-संस्कृति और सनातन जीवन-दर्शन के जीवंत साक्ष्य हैं। इन तीर्थों का संरक्षण केवल धार्मिक दायित्व नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण का भी महत्वपूर्ण कार्य है।

इस शोध-ग्रंथ में प्रस्तुत संक्षिप्त परिचय का उद्देश्य पाठकों, शोधार्थियों और तीर्थयात्रियों को इन सभी तीर्थों का एक प्रामाणिक एवं व्यवस्थित परिचय देना है। विस्तृत अध्ययन के लिए प्रत्येक तीर्थ पर पृथक शोध की आवश्यकता है।

मैं कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिसने 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों का व्यवस्थित सर्वेक्षण, दस्तावेजीकरण तथा मानचित्र तैयार कर इस महान सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। इस ग्रंथ के शोध के दौरान बोर्ड द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारी, मानचित्र तथा प्रकाशित सामग्री अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई।

अध्याय–31

48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों के वार्षिक मेले एवं धार्मिक आयोजन

भाग-1 : तीर्थ-मेलों की जीवंत परम्परा

48 कोस कुरुक्षेत्र की विशेषता केवल इसके 182 तीर्थों तक सीमित नहीं है, बल्कि इन तीर्थों में वर्षभर आयोजित होने वाले मेले, पर्व और धार्मिक अनुष्ठान भी इस पावन भूमि की जीवंत सांस्कृतिक परम्परा के साक्षी हैं। हिंदू पंचांग की विभिन्न तिथियों, अमावस्या, पूर्णिमा, ग्रहण, तथा प्रमुख पर्वों पर विशिष्ट तीर्थों पर श्रद्धालुओं का विशाल जनसमूह एकत्रित होता है। कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा संकलित एवं प्रकाशित यह मेला-सूची इस बात का प्रमाण है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थ-परंपरा आज भी धार्मिक पंचांग के अनुसार अनवरत जीवित है।

नीचे दी गई सारणी में हिंदू पंचांग के अनुसार प्रमुख तिथियों, पर्वों तथा उन पर आयोजित होने वाले मेलों के स्थलों का विवरण प्रस्तुत है। यह सूची कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के आधिकारिक प्रकाशन पर आधारित है।

मेला / पर्व	**मेला स्थल**

वसन्त नवरात्रि	भद्रकाली मन्दिर - कुरुक्षेत्र, बाला सुन्दरी मन्दिर – हथीरा (कुरुक्षेत्र), शाकुम्भरी देवी तीर्थ - अलावला (करनाल)
चैत्र कृष्ण सप्तमी	शुद्धास्पद तीर्थ - प्यौदा (कैथल)
चैत्र अमावस्या	सूर्य कुण्ड - कैथल
चैत्र शुक्ल अष्टमी	नव दुर्गा तीर्थ - देवीगढ़ (कैथल)
चैत्र शुक्ल नवमी	श्रीतीर्थ - कसान (कैथल)
चैत्र शुक्ल दशमी	पुण्डरीक तीर्थ - पुण्डरी (कैथल)
बैसाखी	बाण गंगा तीर्थ - दयालपुर, सप्त सारस्वत तीर्थ – मांगना (कुरुक्षेत्र)
चैत्र शुक्ल चतुर्दशी	बाला सुन्दरी मन्दिर - हथीरा (कुरुक्षेत्र), शाकुम्भरी देवी तीर्थ - अलावला, मनोजव तीर्थ - बरास (करनाल)
रविवारीय शुक्ल सप्तमी	काम्यक तीर्थ - कमोदा (कुरुक्षेत्र)
नृसिंह जयन्ती	नृसिंह तीर्थ - बारवा (कुरुक्षेत्र)
वैशाख पूर्णिमा	रामह्रद तीर्थ - रामराय (जींद)
ज्येष्ठ अमावस्या	शनि कुण्ड - कैथल

ज्येष्ठ पूर्णिमा	रसमंगल तीर्थ - जाखोली (कैथल)
आषाढ़ शुक्ल द्वादशी	वराह तीर्थ - बराह कलाँ (जींद)
श्रावण अष्टमी	गन्धर्व तीर्थ - गोहराँ खेड़ी (कैथल)
श्रावण शिवरात्रि	अरुणाय तीर्थ - पिहोवा, स्थाण्वीश्वर महादेव मंदिर, श्री कालेश्वर महादेव मन्दिर (कुरुक्षेत्र), श्रीतीर्थ - कसान, खट्वांगेश्वर तीर्थ – खडालवा, विन्दुसर तीर्थ - बन्दराना, ग्यारह रुद्री तीर्थ - कैथल, भूतेश्वर तीर्थ – जींद, कुलोत्तारण तीर्थ - कारसा डोड, गौतम ऋषि तीर्थ - गोंदर (करनाल)
श्रावण पूर्णमासी	कपिल मुनि तीर्थ - कलायत, लव-कुश तीर्थ - मुन्दड़ी, सर्वरोगहर तीर्थ - पिलनी (कैथल), रामह्रद तीर्थ - रामराय (जींद)
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	नाभिकमल तीर्थ (कुरुक्षेत्र), पवनह्रद तीर्थ - पबनावा, ऋणमोचन तीर्थ - रसीना (कैथल), मचकुक यक्ष - सींक (पानीपत), भूतेश्वर तीर्थ (जींद), कुलोत्तारण तीर्थ - कारसा डोड (करनाल)

भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी	आपगा तीर्थ - गादली (कैथल)
भाद्रपद शुक्ल षष्ठी	अदिति तीर्थ - अभिमन्युपुर (कुरुक्षेत्र), च्यवन ऋषि तीर्थ - सलीमपुर मदूद (कैथल)
वामन द्वादशी	सन्निहित सरोवर (कुरुक्षेत्र)
अश्विन शुक्ल दशमी	कण्व ऋषि आश्रम - डीग (कैथल), चौंसठ योगिनी तीर्थ – कलावती (जींद)
अश्विन शुक्ल चतुर्दशी	बाला सुन्दरी मन्दिर - हथीरा (कुरुक्षेत्र), शाकुम्भरी देवी तीर्थ - अलावला, मनोजव तीर्थ - बरास (करनाल)
कार्तिक अमावस्या	पृथ्वी तीर्थ - बालू (करनाल), बंटेश्वर तीर्थ - बरोट
सूर्यग्रहण	ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर (कुरुक्षेत्र), सन्निहित तीर्थ - रामराय (जींद)
कार्तिक पूजा	ब्रह्म सरोवर, कुरुक्षेत्र
कार्तिक पूर्णिमा	ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर (कुरुक्षेत्र), रामह्रद तीर्थ - रामराय, गोविंद कुण्ड - राजपुरा (जींद), कपिलमुनि तीर्थ - कलायत,

	चक्र तीर्थ – सेरधा, शुद्धास्पद तीर्थ - प्यौदा (कैथल)
गीता जयन्ती	ब्रह्म सरोवर (कुरुक्षेत्र)
सरस्वती महोत्सव	सरस्वती तीर्थ - पिहोवा
मोक्ष द्वादशी	श्रीतीर्थ - कसान, श्रीतीर्थ - मटोर, धर्मकुण्ड – पाई (कैथल)
फाल्गुन शिवरात्रि	अरुणाय तीर्थ - अरणाय, त्रिपुरारि तीर्थ - तिगरी, स्थाण्वीश्वर महादेव मंदिर - थानेसर, कालेश्वर महादेव मंदिर - थानेसर (कुरुक्षेत्र), भूतेश्वर तीर्थ - जींद, श्रीतीर्थ - कसान, खट्वांगेश्वर तीर्थ - खडालवा, विन्दुसर तीर्थ - बन्दराना, ग्यारह रुद्री तीर्थ - कैथल, बृहस्पति कुण्ड - कैथल, गौतम ऋषि तीर्थ - गोंदर, कुलोत्तारण तीर्थ - कारसा डोड (करनाल)
सोमावती अमावस्या	ब्रह्म सरोवर, सन्निहित सरोवर (कुरुक्षेत्र), सोम तीर्थ - पाण्डु पिण्डारा, लोकोद्धार तीर्थ - लोधार (जींद), मचकुक यक्ष - सींक (पानीपत), सूर्य कुण्ड - हाबड़ी, रसमंगल तीर्थ - जाखोली (कैथल), फल्गु तीर्थ - फफड़ाना (करनाल)

फाल्गुन शुक्ल एकादशी	वीर बर्बरीक श्याम तीर्थ - सिसला (कैथल)
फाल्गुन शुक्ल द्वादशी	वराह तीर्थ - बराह कलाँ (जींद)
होली	विमलसर तीर्थ - सग्गा (करनाल)
चैत्र चौदस	सरस्वती तीर्थ - पिहोवा, सन्निहित सरोवर (कुरुक्षेत्र)

भाग-2 : कुरुक्षेत्र की अष्टकोशी परिक्रमा

48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थ-परंपरा में "अष्टकोशी परिक्रमा" का विशेष महत्व है। यह एक छोटी, किंतु अत्यंत पवित्र परिक्रमा है, जो कुरुक्षेत्र नगर के भीतर तथा उसके निकटवर्ती तीर्थों को जोड़ती है। यह परिक्रमा नाभिकमल तीर्थ से आरंभ होकर पुनः वहीं सम्पन्न होती है, तथा मार्ग में अनेक ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों का दर्शन कराती है।

परिक्रमा का मार्ग इस प्रकार है – नाभिकमल तीर्थ से प्रारंभ होकर ओजस घाट (कार्तिक मंदिर), स्थाण्वीश्वर महादेव मंदिर, कुबेर तीर्थ, क्षीर सागर, दधीचि कुण्ड, सरस्वती घाट (खेड़ी मारकण्डा), रन्तुक यक्ष (बीड़ पिपली), वृद्ध कन्या, विश्राम घाट, ओघटिया घाट/पावन तीर्थ (सुन्दरपुर), शिव मंदिर (पलवल), बाणगंगा तीर्थ (दयालपुर), आपगा तीर्थ (दयालपुर), भीष्म कुण्ड

(नरकातारी) होते हुए पुनः ओजस घाट (कार्तिक मंदिर) पहुँचकर अंततः नाभिकमल तीर्थ पर सम्पन्न होती है।

यह परिक्रमा दर्शाती है कि कुरुक्षेत्र की तीर्थ-यात्रा केवल 48 कोस के विस्तृत क्षेत्र तक सीमित नहीं, बल्कि नगर के भीतर भी एक सूक्ष्म एवं सुव्यवस्थित तीर्थ-मार्ग विद्यमान है, जिसे श्रद्धालु अल्प समय में सम्पन्न कर सकते हैं।

भाग-3 : निष्कर्ष

इन मेलों एवं धार्मिक आयोजनों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थ केवल स्थिर धार्मिक स्मारक नहीं हैं, बल्कि प्रत्येक तीर्थ का अपना एक जीवंत कैलेंडर है, जिसके अनुसार वर्षभर वहाँ श्रद्धा, स्नान, दान, तर्पण और सामूहिक आराधना की परंपरा चलती रहती है। शिवरात्रि, अमावस्या, पूर्णिमा, ग्रहण, गीता जयंती और नवरात्रि जैसे अवसरों पर विभिन्न तीर्थों पर उमड़ने वाली श्रद्धालुओं की भीड़ यह प्रमाणित करती है कि वैदिक और महाभारतकालीन परंपरा आज भी उतनी ही जीवंत है, जितनी सहस्राब्दियों पूर्व रही होगी।

मैं इस मूल्यवान मेला-सूची तथा अष्टकोशी परिक्रमा के विवरण के लिए कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के आधिकारिक प्रकाशन के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिसने इस अध्याय को प्रामाणिक स्रोत प्रदान किया।

प्रमुख संदर्भ

• कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड – "48 कोस कुरुक्षेत्र भूमि स्थित तीर्थों के मेले एवं पर्व" (आधिकारिक प्रकाशन)

• लेखक का प्रत्यक्ष अध्ययन एवं दस्तावेज़-सत्यापन (2026)

अध्याय–32

वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर (करनाल)

भाग-1 : 48 कोस कुरुक्षेत्र का रामायणकालीन तीर्थ

48 कोस कुरुक्षेत्र की पवित्र परिधि में स्थित वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर, करनाल जिले के सीतामाई ग्राम में अवस्थित एक अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक एवं ऐतिहासिक तीर्थ है। यह तीर्थ करनाल नगर से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर, पिहोवा मार्ग पर स्थित है। यह स्थान रामायण परम्परा, देवी वेदवती की तपस्या, माता सीता के जीवन तथा उनके पृथ्वी में समाने की लोकमान्यता से जुड़ा हुआ है। 48 कोस कुरुक्षेत्र की आधिकारिक तीर्थ सूची में भी "वेदवती, सीतामई" को एक मान्यता प्राप्त तीर्थ के रूप में सम्मिलित किया गया है।

पौराणिक परम्पराओं के अनुसार वेदवती राजा कुशध्वज की पुत्री थीं, जो भगवान विष्णु को पति रूप में प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या कर रही थीं। इसी दौरान शुम्भ नामक राक्षस ने उनके पिता का वध कर दिया, जिससे दुःखी होकर उनकी माता ने अग्नि में प्रवेश कर लिया। तत्पश्चात रावण ने वन में भ्रमण करते हुए तपस्यारत वेदवती को देखा और उनका अपमान करते हुए भगवान विष्णु की निंदा की। इस अपमान से आत्मग्लानि से भरकर वेदवती ने योगाग्नि में देह

त्यागते हुए संकल्प लिया कि वे अगले जन्म में रावण के विनाश का कारण बनेंगी। त्रेतायुग में वही वेदवती राजा जनक की पुत्री माता सीता के रूप में अवतरित हुईं। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड (17/38) में इस कथा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है – "एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत्कृते युगे। त्रेता युगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः। उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः॥" इस कारण सीतामाई का यह तीर्थ वेदवती और सीता – दोनों स्वरूपों की स्मृति का पवित्र संगम माना जाता है। यह परम्परा वामन पुराण सहित स्थानीय धार्मिक मान्यताओं में भी विस्तार से वर्णित मिलती है।

स्थानीय जनश्रुतियों के अनुसार यही वह स्थान है जहाँ माता सीता ने अपनी पवित्रता सिद्ध करने के उपरांत धरती माता से प्रार्थना की और पृथ्वी की गोद में समा गईं। इसी विश्वास के कारण यह स्थान श्रद्धालुओं के लिए अत्यंत पूजनीय है, और इसे "सम्पूर्ण भारत में इकलौता माता सीता जी का मंदिर" भी कहा जाता है। हरियाणा सरकार तथा जिला प्रशासन भी इसे माता सीता से संबंधित प्रमुख तीर्थ के रूप में मान्यता देते हैं। वामन पुराण (37/13) में इस तीर्थ के महात्म्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यहाँ स्नान करने से व्यक्ति कन्या-यज्ञ के फल को प्राप्त करता है तथा समस्त पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है – "तस्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा कन्यायज्ञफलं लभेत्। विमुक्तः कल्मषैः सर्वैः प्राप्नोति परमं पदम्॥"

सीतामाई मंदिर की एक विशेषता इसकी प्राचीन ईंट-निर्मित वास्तुकला है। मंदिर की दीवारों एवं ईंटों पर की गई कलात्मक नक्काशी इसकी प्राचीनता का परिचय देती है। मंदिर स्थल के निचले भाग की ढलाई-युक्त ईंटों की बनावट कैथल जिले के कलायत स्थित प्राचीन मंदिर से अत्यंत समानता रखती है, जिसके आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि यह मंदिर भी लगभग 7वीं-8वीं शताब्दी ईस्वी में निर्मित हुआ होगा। मंदिर के पश्चिम में "वेदेश्वर" नामक वेदवती सरोवर स्थित है, जिसमें कार्तिक पूर्णिमा, चैत्र मास की रामनवमी तथा फाल्गुन मास की अष्टमी को स्नान का विशेष महात्म्य माना जाता है। मंदिर परिसर में स्थित सरोवर, प्राचीन वृक्ष तथा धार्मिक संरचनाएँ इसकी आध्यात्मिक गरिमा को और अधिक बढ़ाती हैं।

धार्मिक दृष्टि से यह मंदिर एक और कारण से अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्थानीय परम्परा के अनुसार यह श्री रामानन्दाचार्य सम्प्रदाय के वैष्णव बैरागी (दिगम्बर अखाड़ा) की प्राचीन पीठ है। जनश्रुति के अनुसार विक्रम संवत 1545 में महंत श्री किशन दास बैरागी जयपुर की गलता गद्दी से यहाँ पधारे और मंदिर में नियमित पूजा, सेवा तथा गुरु-शिष्य परम्परा का शुभारम्भ किया। उनके पश्चात अनेक महंतों ने इस परम्परा को निरन्तर आगे बढ़ाया।

मंदिर की स्थानीय परम्परा के अनुसार महंतों का क्रम इस प्रकार स्मरण किया जाता है –

1. महंत श्री किशन दास बैरागी

2. महंत श्री खिलदास बैरागी

3. महंत श्री भीष्म दास बैरागी

4. महंत श्री रघुनन्दन दास बैरागी

5. महंत श्री रणछोड़ दास बैरागी

6. महंत श्री मनोहर दास बैरागी

7. महंत श्री लक्ष्मण दास बैरागी

8. महंत श्री अयोध्या दास बैरागी

9. महंत श्री नहरी दास बैरागी

10. महंत श्री सीताराम दास बैरागी

11. महंत श्री टीकम दास बैरागी

12. महंत श्री लाल दास बैरागी

13. महंत श्री भगवान दास बैरागी

14. महंत श्री प्रेमदास बैरागी (शिष्य)

15. महंत श्री बसेसर दास बैरागी

यह गुरु-शिष्य परम्परा इस तीर्थ की धार्मिक निरन्तरता और वैष्णव बैरागी परम्परा की जीवंत धरोहर का परिचय देती है।



महंत श्री प्रेमदास बैरागी की संगमरमर प्रतिमा – प्राचीन सीतामाई मंदिर परिसर

इस महंत-परम्परा में महंत श्री प्रेमदास बैरागी का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका जन्म दयालपुर ग्राम (कुरुक्षेत्र) में हुआ था — वही ग्राम जहाँ बाणगंगा तीर्थ एवं भीष्म कुंड स्थित हैं, तथा जिसकी वैष्णव बैरागी वंश-परम्परा का विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ के अध्याय-16 में प्रस्तुत किया जा चुका है। महंत प्रेमदास बैरागी सन् 1930 में सीतामाई पधारे और यहाँ के महंत नियुक्त हुए। उनके कार्यकाल में वेदवती तीर्थ एवं सीतामाई मंदिर का उल्लेखनीय विकास हुआ। उन्होंने वैष्णव बैरागी समाज को कुरुक्षेत्र में पिहोवा रोड पर एक एकड़ भूमि भी दान में दी, जहाँ आज भी उनकी एक अन्य प्रतिमा स्थापित है। उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष 13 मई को बैरागी धर्मशाला, कुरुक्षेत्र में उनका जन्मदिवस मनाया जाता है, जिस अवसर पर बैरागी समाज के विभिन्न गाँवों से अनाज एकत्रित किया जाता है, जो वर्षभर धर्मशाला के भंडारे में उपयोग होता है। इस प्रकार महंत प्रेमदास बैरागी दयालपुर की वंश-परम्परा (अध्याय-16) और सीतामाई की महंत-परम्परा (अध्याय-32) के बीच एक जीवंत ऐतिहासिक सेतु हैं।

भाग-2 : प्राचीन सीतामाई मंदिर, महंत परम्परा एवं वर्तमान स्वरूप

वेदवती तीर्थ के निकट स्थित प्राचीन सीतामाई मंदिर 48 कोस कुरुक्षेत्र की तीर्थ-परम्परा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक केंद्र है। यह मंदिर माता सीता को समर्पित भारत के विरले

प्राचीन मंदिरों में गिना जाता है। स्थानीय परम्परा, जनश्रुतियों तथा हरियाणा सरकार के अभिलेखों के अनुसार यही वह पावन स्थल माना जाता है जहाँ माता सीता ने पृथ्वी माता का आह्वान कर धरती में प्रवेश किया था। इसी कारण यह स्थान "सीतामई" तथा "वेदवती तीर्थ" – दोनों नामों से प्रसिद्ध है।

मंदिर की वर्तमान संरचना प्राचीन ईंटों से निर्मित है। इसकी दीवारों और आधार भाग में प्रयुक्त विशेष प्रकार की अलंकृत ईंटें तत्कालीन स्थापत्य कला की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करती हैं। मंदिर परिसर में स्थित विशाल पवित्र कुंड श्रद्धालुओं के लिए विशेष आस्था का केंद्र है। धार्मिक मान्यता है कि इस कुंड में स्नान एवं दर्शन करने से पुण्य की प्राप्ति होती है।



वेदवती कुंड (वेदेश्वर सरोवर) का विहंगम दृश्य – प्राचीन सीतामाई मंदिर परिसर

धार्मिक परम्परा के अनुसार यह मंदिर जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य सम्प्रदाय के वैष्णव बैरागी (दिगम्बर अखाड़ा) की प्राचीन पीठ है। मंदिर के संरक्षण एवं सुव्यवस्थित प्रबंधन के लिए 19 मई 2021 को उपायुक्त, करनाल के मार्गदर्शन में "प्राचीन सीतामाई मंदिर सेवा समिति (पंजीकृत)" का गठन किया गया। इस समिति का उद्देश्य मंदिर की प्राचीन धरोहर का संरक्षण, धार्मिक परम्पराओं का निर्वहन, तीर्थयात्रियों की सुविधाओं का विकास तथा मंदिर परिसर का सुव्यवस्थित संचालन है।

आज वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर न केवल धार्मिक आस्था का केंद्र है, बल्कि 48 कोस कुरुक्षेत्र की रामायणकालीन विरासत का एक महत्वपूर्ण अध्याय भी है। यहाँ प्रतिवर्ष हजारों श्रद्धालु दर्शन, पूजा-अर्चना तथा पवित्र कुंड में स्नान के लिए आते हैं। यह तीर्थ वेदवती की तपस्या, माता सीता की मर्यादा तथा वैष्णव बैरागी संत-परम्परा – इन तीनों की संयुक्त विरासत को आज भी जीवित रखे हुए है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि



वेदवती तीर्थ, सीतामाई का आधिकारिक सूचना-पट्ट – रामायण उत्तरकाण्ड (17/38) एवं वामन पुराण (37/13) के मूल श्लोकों सहित

भाग-3 : धार्मिक परम्पराएँ, मेले एवं तीर्थ का आध्यात्मिक महत्व

वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर प्राचीन काल से ही श्रद्धा, भक्ति और तपस्या का प्रमुख केंद्र रहा है। 48 कोस कुरुक्षेत्र के तीर्थों में इस स्थान का विशेष महत्व इसलिए भी है क्योंकि यहाँ रामायणकालीन परम्परा, वेदवती की तपस्या, माता सीता की स्मृति तथा वैष्णव बैरागी संत-परम्परा एक साथ देखने को मिलती है। वर्ष भर देश के विभिन्न राज्यों से श्रद्धालु यहाँ दर्शन, पूजा, स्नान तथा धार्मिक अनुष्ठानों के लिए आते हैं।

कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित 48 कोस कुरुक्षेत्र के आधिकारिक तीर्थ विवरण में वेदवती तीर्थ (सीतामई) को प्रमुख तीर्थों में सम्मिलित किया गया है। इस तीर्थ पर विशेष रूप से रामनवमी, सीता नवमी, नवरात्र, कार्तिक पूर्णिमा, सोमवती अमावस्या तथा अन्य धार्मिक अवसरों पर श्रद्धालुओं की बड़ी संख्या पहुँचती है। मंदिर के अपने सूचना-पट्ट के अनुसार विशेष रूप से कार्तिक पूर्णिमा, चैत्र रामनवमी तथा फाल्गुन अष्टमी को वेदेश्वर सरोवर में स्नान का सर्वाधिक महात्म्य

माना जाता है। इन पर्वों पर हवन, भजन-कीर्तन, कथा, सत्संग, भंडारा तथा सामूहिक पूजा-अर्चना का आयोजन किया जाता है।

मंदिर परिसर में स्थित वेदवती कुंड इस तीर्थ का प्रमुख आकर्षण है। श्रद्धालु इस पवित्र कुंड में स्नान कर माता सीता एवं देवी वेदवती के मंदिर में दर्शन करते हैं। स्थानीय मान्यता है कि श्रद्धापूर्वक स्नान एवं पूजा करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा परिवार में सुख, शांति और समृद्धि का आशीर्वाद प्राप्त होता है। यद्यपि यह धार्मिक विश्वास है, फिर भी इसी आस्था ने इस तीर्थ को सदियों से जीवंत बनाए रखा है।

यह मंदिर श्री रामानन्दाचार्य सम्प्रदाय के वैष्णव बैरागी (दिगम्बर अखाड़ा) की प्राचीन गद्दी होने के कारण संत-परम्परा का भी महत्वपूर्ण केंद्र है। यहाँ अनेक संत-महात्माओं का आगमन होता रहा है तथा धार्मिक प्रवचन, श्रीराम कथा, श्रीमद्भागवत कथा, संकीर्तन एवं वैदिक अनुष्ठान नियमित रूप से आयोजित किए जाते हैं। इससे यह तीर्थ केवल एक मंदिर न रहकर आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का केंद्र बन गया है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि



मंदिर के वयोवृद्ध संत का आशीर्वाद प्राप्त करते हुए लेखक – वैष्णव बैरागी संत-परम्परा का जीवंत दर्शन

लेखक ने दिसम्बर 2019, फरवरी 2024 तथा मार्च 2026 में इस तीर्थ का प्रत्यक्ष भ्रमण किया। इन यात्राओं के दौरान मंदिर की धार्मिक गतिविधियों, वेदवती कुंड, माता सीता मंदिर, संत-परम्परा तथा श्रद्धालुओं की आस्था का निकट से अध्ययन किया गया। प्रत्यक्ष अवलोकन से यह अनुभव हुआ कि यह तीर्थ आज भी अपनी प्राचीन परम्पराओं को जीवित रखते हुए आधुनिक सुविधाओं के साथ निरंतर विकसित हो रहा है।



माता सीता के गर्भगृह में दर्शन-पूजन करते हुए लेखक – प्राचीन सीतामाई मंदिर

इस प्रकार वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि रामायण परम्परा, वैष्णव बैरागी संत-परम्परा, लोकआस्था और 48 कोस कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक

विरासत का एक जीवंत केंद्र है। यही विशेषताएँ इसे हरियाणा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत के महत्वपूर्ण तीर्थों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं।

भाग-4 : संरक्षण, विकास एवं सेवा समिति

वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर की धार्मिक महत्ता को ध्यान में रखते हुए हरियाणा सरकार द्वारा इसके संरक्षण एवं विकास के लिए समय-समय पर महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। 48 कोस कुरुक्षेत्र तीर्थ विकास योजना के अंतर्गत तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मनोहर लाल खट्टर के कार्यकाल में इस तीर्थ के सौंदर्यीकरण एवं आधारभूत सुविधाओं के विकास के लिए लगभग ₹1.30 करोड़ की राशि स्वीकृत की गई। इस योजना के अंतर्गत मंदिर परिसर, पवित्र सरोवर, स्नान घाट, परिक्रमा मार्ग, प्रकाश व्यवस्था, सौंदर्यीकरण, चारदीवारी तथा श्रद्धालुओं की सुविधाओं का विकास किया गया।

मंदिर के प्रशासन एवं संरक्षण को सुव्यवस्थित बनाने के उद्देश्य से 19 मई 2021 को उपायुक्त (डी.सी.), करनाल के मार्गदर्शन में "प्राचीन सीतामाई मंदिर सेवा समिति (पंजीकृत)" का गठन किया गया। यह समिति पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के निर्देशों के अनुपालन में गठित की गई।

समिति के गठन के समय पदाधिकारी एवं सदस्य इस प्रकार थे –

1. चेयरमैन – महन्त राघव दास शास्त्री

2. प्रधान – महन्त रामस्वरूप दास शास्त्री

3. सचिव – ईशम वैष्णव बैरागी

4. कोषाध्यक्ष – सुगन चन्द बैरागी

5. सदस्य – मुकेश बैरागी

6. सदस्य – महन्त महादेव गिरी

7. सदस्य – रविन्द्र बैरागी

8. सदस्य – बजिदर बैरागी

9. सदस्य – दर्शन

10. सदस्य – रामफल

लेखक ने इस तीर्थ का केवल साहित्यिक अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि विभिन्न वर्षों में इसका प्रत्यक्ष स्थल-अध्ययन भी किया है। दिसम्बर 2019, फरवरी 2024 तथा मार्च 2026 में किए गए भ्रमण के दौरान मंदिर परिसर, वेदवती कुंड, माता सीता मंदिर, धार्मिक गतिविधियों तथा विकास कार्यों का तुलनात्मक अवलोकन किया गया। इन यात्राओं से स्पष्ट हुआ कि सरकारी संरक्षण तथा स्थानीय संत-समाज और श्रद्धालुओं के सहयोग से इस तीर्थ का स्वरूप अत्यंत विकसित हुआ है।

भाग-5 : निष्कर्ष एवं प्रमुख संदर्भ

वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर 48 कोस कुरुक्षेत्र के उन विरल तीर्थों में से एक है, जहाँ पुराण, रामायण परम्परा, लोकश्रुति, संत-परम्परा और वर्तमान धार्मिक आस्था एक साथ दिखाई देती है। यह तीर्थ केवल माता सीता की स्मृतियों से ही नहीं, बल्कि उनके पूर्वजन्म वेदवती की तपस्या और भगवान विष्णु के प्रति उनकी अखण्ड भक्ति से भी जुड़ा हुआ है। इस कारण यह स्थल सनातन धर्म की तप, त्याग, सतीत्व और धर्मनिष्ठा की अमूल्य धरोहर माना जाता है।

यह तीर्थ वैष्णव बैरागी संत-परम्परा की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। महंत श्री किशन दास बैरागी से प्रारम्भ हुई गुरु-शिष्य परम्परा ने इस तीर्थ की आध्यात्मिक गरिमा को निरंतर बनाए रखा है। वर्तमान में गठित प्राचीन सीतामाई मंदिर सेवा समिति (पंजीकृत) मंदिर के संरक्षण, विकास तथा तीर्थयात्रियों की सुविधाओं के लिए सक्रिय रूप से कार्य कर रही है।

वेदवती तीर्थ एवं प्राचीन सीतामाई मंदिर केवल हरियाणा या 48 कोस कुरुक्षेत्र की धरोहर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत की रामायण परम्परा, वैष्णव संत-परम्परा और सनातन संस्कृति का एक अमूल्य तीर्थ है। इस पवित्र स्थल का संरक्षण, संवर्धन और व्यापक प्रचार-प्रसार हमारी सांस्कृतिक जिम्मेदारी है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस गौरवशाली विरासत से प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

प्रमुख संदर्भ

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

1. कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड - 48 कोस कुरुक्षेत्र (आधिकारिक तीर्थ विवरण)।

2. जिला प्रशासन, करनाल – सीतामाई मंदिर (पर्यटन एवं ऐतिहासिक विवरण)।

3. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड 17/38 – वेदवती की पौराणिक कथा (मंदिर के सूचना-पट्ट पर उद्धृत)।

4. वामन पुराण 37/13 – वेदवती तीर्थ का महात्म्य (मंदिर के सूचना-पट्ट पर उद्धृत)।

5. प्राचीन सीतामाई मंदिर सेवा समिति (पंजीकृत), सीतामई, करनाल - स्थानीय अभिलेख एवं समिति का विवरण।

6. मंदिर के महंतों एवं स्थानीय परम्परा से प्राप्त मौखिक ऐतिहासिक जानकारी।

7. लेखक का प्रत्यक्ष तीर्थ-भ्रमण, स्थल-अध्ययन एवं दस्तावेज़ सत्यापन (दिसम्बर 2019, फरवरी 2024 एवं मार्च 2026)।

अध्याय 33

नरकातारी —— भीष्म पितामह की शरशय्या और वैष्णव साधना की परंपरा

भूमिका

कुरुक्षेत्र की पावन 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा में स्थित नरकातारी प्राचीन काल से एक अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक और ऐतिहासिक स्थल माना जाता है। यह स्थान मुख्यतः भीष्म कुण्ड के कारण प्रसिद्ध है। मान्यता है कि महाभारत युद्ध के दौरान जब भीष्म पितामह अर्जुन के बाणों से विद्ध होकर शरशय्या पर लेटे थे, तब उनकी प्यास बुझाने के लिए अर्जुन ने पृथ्वी में बाण चलाया और वहाँ से जलधारा फूट पड़ी। यही पवित्र जलाशय आज भीष्म कुण्ड के नाम से श्रद्धापूर्वक पूजित है। इस तीर्थ का उल्लेख महाभारत तथा वामन पुराण की परंपराओं से भी जोड़ा जाता है।

नरकातारी केवल महाभारत का स्मारक नहीं, बल्कि आज भी श्रद्धालुओं की आस्था का प्रमुख केंद्र है। हरियाणा सरकार और कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इसे 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों में सम्मिलित किया है तथा अष्टकोसी परिक्रमा के महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में मान्यता दी है।

समय के साथ इस क्षेत्र में विभिन्न वैष्णव परम्पराओं के संतों और साधुओं का आगमन हुआ। स्थानीय परंपराओं के अनुसार रामानंदी वैष्णव बैरागी संत भी यहाँ साधना, भजन और तीर्थ-सेवा से जुड़े रहे हैं। इस कारण नरकातारी वैष्णव साधना की एक जीवंत धारा का भी प्रतिनिधित्व करता है। इस संबंध में उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों का पृथक अध्ययन अपेक्षित है, अतः इसे स्थानीय परंपरा के रूप में ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

नरकातारी का प्राकृतिक वातावरण, सरस्वती क्षेत्र की सांस्कृतिक स्मृतियाँ तथा भीष्म पितामह के त्याग, धर्म और सत्यनिष्ठा की प्रेरणा इस स्थान को अद्वितीय बनाती हैं। आज भी हजारों श्रद्धालु यहाँ स्नान, दर्शन और पूजा-अर्चना कर धर्मलाभ प्राप्त करते हैं।

वैष्णव संत-परंपरा

नरकातारी के पावन तीर्थ-क्षेत्र में स्थित वैष्णव बैरागी परंपरा की गद्दी लंबे समय से संत-सेवा, धर्मप्रचार और साधना का केंद्र रही है। यहाँ आने वाले श्रद्धालु भीष्म कुण्ड के दर्शन के साथ-साथ संतों का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं और इस प्राचीन परंपरा से जुड़ने का अवसर पाते हैं। इस गद्दी में गुरु-शिष्य परंपरा के अनुसार धार्मिक गतिविधियों का संचालन होता रहा है।

लेखकीय टिप्पणी: इस गद्दी की महंत-परंपरा और वंशावली से संबंधित विस्तृत अभिलेख अभी व्यापक रूप से प्रकाशित उपलब्ध नहीं हैं। तदनुसार व्यक्तिगत नामों तथा उत्तराधिकार-क्रम का उल्लेख इस संस्करण में सम्मिलित नहीं किया गया है। भविष्य में गद्दी से प्राप्त प्रामाणिक अभिलेखों, वंशावली-पत्रों अथवा शिलालेखों के आधार पर इस अंश का विस्तार एवं सत्यापन किया जाएगा।

वर्तमान में गद्दी पर नियमित पूजा-अर्चना, आरती, रामायण-पाठ, भजन-कीर्तन तथा भंडारे जैसे धार्मिक आयोजनों का संचालन किया जाता है, जिनसे यह स्थान श्रद्धालुओं और संत-समाज के लिए आस्था का जीवंत केंद्र बना हुआ है।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व

नरकातारी की विशेषता यह है कि यहाँ महाभारतकालीन इतिहास और वैष्णव संत-परंपरा का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। एक ओर भीष्म पितामह के तप, त्याग और धर्मनिष्ठा की स्मृतियाँ इस भूमि को गौरव प्रदान करती हैं, वहीं दूसरी ओर वैष्णव बैरागी संतों की भक्ति, सेवा और साधना की परंपरा इस तीर्थ की आध्यात्मिक गरिमा को निरंतर बनाए रखती है। महाभारत की परंपरा के अनुसार यही वह पावन भूमि मानी जाती है जहाँ भीष्म पितामह ने शरशय्या पर रहते हुए धर्म, नीति और राजधर्म का उपदेश दिया।

आज भी देश के विभिन्न भागों से श्रद्धालु नरकातारी पहुँचकर भीष्म कुण्ड में श्रद्धापूर्वक दर्शन करते हैं तथा इस प्राचीन गद्दी में संतों का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। कुरुक्षेत्र की 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा में यह स्थल धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

लेखक का स्थल-भ्रमण एवं प्रत्यक्ष अवलोकन

लेखक को भी इस पवित्र तीर्थ के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्थल के प्रत्यक्ष अवलोकन से यह अनुभव हुआ कि नरकातारी केवल एक ऐतिहासिक स्मारक नहीं, अपितु जीवंत आस्था का केंद्र है। भीष्म कुण्ड का शांत वातावरण, मंदिर परिसर की धार्मिक गतिविधियाँ तथा संतों का सादगीपूर्ण जीवन श्रद्धालुओं के मन में गहरी आध्यात्मिक अनुभूति उत्पन्न करता है।

नरकातारी का महत्व इस बात में भी निहित है कि यहाँ महाभारत की अमर स्मृतियाँ और संत-परंपरा आज भी साथ-साथ जीवित हैं। यह तीर्थ आने वाली पीढ़ियों को धर्म, त्याग, सेवा और कर्तव्यपालन का संदेश देता है। इस प्रकार नरकातारी तीर्थ, भीष्म पितामह की अमर स्मृतियों तथा वैष्णव संत-परंपरा का एक महत्वपूर्ण संगम है, जो कुरुक्षेत्र की आध्यात्मिक विरासत का अमूल्य अध्याय बना हुआ है।

अध्याय 33

नरकातारी – भीष्म पितामह की शरशय्या और वैष्णव साधना की परंपरा

भूमिका

कुरुक्षेत्र की पावन 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा में स्थित नरकातारी प्राचीन काल से एक अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक और ऐतिहासिक स्थल माना जाता है। यह स्थान मुख्यतः भीष्म कुण्ड के कारण प्रसिद्ध है। मान्यता है कि महाभारत युद्ध के दौरान जब भीष्म पितामह अर्जुन के बाणों से विद्ध होकर शरशय्या पर लेटे थे, तब उनकी प्यास बुझाने के लिए अर्जुन ने पृथ्वी में बाण चलाया और वहाँ से जलधारा फूट पड़ी। यही पवित्र जलाशय आज भीष्म कुण्ड के नाम से श्रद्धापूर्वक पूजित है। इस तीर्थ का उल्लेख महाभारत तथा वामन पुराण की परंपराओं से भी जोड़ा जाता है।

नरकातारी केवल महाभारत का स्मारक नहीं, बल्कि आज भी श्रद्धालुओं की आस्था का प्रमुख केंद्र है। हरियाणा सरकार और कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने इसे 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख तीर्थों में सम्मिलित किया है तथा अष्टकोसी परिक्रमा के महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में मान्यता दी है।

समय के साथ इस क्षेत्र में विभिन्न वैष्णव परम्पराओं के संतों और साधुओं का आगमन हुआ। स्थानीय परंपराओं के अनुसार

रामानंदी वैष्णव बैरागी संत भी यहाँ साधना, भजन और तीर्थ-सेवा से जुड़े रहे हैं। इस कारण नरकातारी वैष्णव साधना की एक जीवंत धारा का भी प्रतिनिधित्व करता है। इस संबंध में उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों का पृथक अध्ययन अपेक्षित है, अतः इसे स्थानीय परंपरा के रूप में ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

नरकातारी का प्राकृतिक वातावरण, सरस्वती क्षेत्र की सांस्कृतिक स्मृतियाँ तथा भीष्म पितामह के त्याग, धर्म और सत्यनिष्ठा की प्रेरणा इस स्थान को अद्‌वितीय बनाती हैं। आज भी हजारों श्रद्‌धालु यहाँ स्नान, दर्शन और पूजा-अर्चना कर धर्मलाभ प्राप्त करते हैं।

वैष्णव संत-परंपरा

नरकातारी के पावन तीर्थ-क्षेत्र में स्थित वैष्णव बैरागी परंपरा की गद्‌दी लंबे समय से संत-सेवा, धर्मप्रचार और साधना का केंद्र रही है। यहाँ आने वाले श्रद्‌धालु भीष्म कुण्ड के दर्शन के साथ-साथ संतों का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं और इस प्राचीन परंपरा से जुड़ने का अवसर पाते हैं। इस गद्‌दी में गुरु-शिष्य परंपरा के अनुसार धार्मिक गतिविधियों का संचालन होता रहा है।

लेखकीय टिप्पणी: इस गद्‌दी की महंत-परंपरा और वंशावली से संबंधित विस्तृत अभिलेख अभी व्यापक रूप से प्रकाशित

उपलब्ध नहीं हैं। तदनुसार व्यक्तिगत नामों तथा उत्तराधिकार-क्रम का उल्लेख इस संस्करण में सम्मिलित नहीं किया गया है। भविष्य में गद्दी से प्राप्त प्रामाणिक अभिलेखों, वंशावली-पत्रों अथवा शिलालेखों के आधार पर इस अंश का विस्तार एवं सत्यापन किया जाएगा।

वर्तमान में गद्दी पर नियमित पूजा-अर्चना, आरती, रामायण-पाठ, भजन-कीर्तन तथा भंडारे जैसे धार्मिक आयोजनों का संचालन किया जाता है, जिनसे यह स्थान श्रद्धालुओं और संत-समाज के लिए आस्था का जीवंत केंद्र बना हुआ है।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व

नरकातारी की विशेषता यह है कि यहाँ महाभारतकालीन इतिहास और वैष्णव संत-परंपरा का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। एक ओर भीष्म पितामह के तप, त्याग और धर्मनिष्ठा की स्मृतियाँ इस भूमि को गौरव प्रदान करती हैं, वहीं दूसरी ओर वैष्णव बैरागी संतों की भक्ति, सेवा और साधना की परंपरा इस तीर्थ की आध्यात्मिक गरिमा को निरंतर बनाए रखती है। महाभारत की परंपरा के अनुसार यही वह पावन भूमि मानी जाती है जहाँ भीष्म पितामह ने शरशय्या पर रहते हुए धर्म, नीति और राजधर्म का उपदेश दिया।

आज भी देश के विभिन्न भागों से श्रद्धालु नरकातारी पहुँचकर भीष्म कुण्ड में श्रद्धापूर्वक दर्शन करते हैं तथा इस

प्राचीन गद्दी में संतों का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। कुरुक्षेत्र की 48 कोस तीर्थ-परिक्रमा में यह स्थल धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

लेखक का स्थल-भ्रमण एवं प्रत्यक्ष अवलोकन

लेखक को भी इस पवित्र तीर्थ के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्थल के प्रत्यक्ष अवलोकन से यह अनुभव हुआ कि नरकातारी केवल एक ऐतिहासिक स्मारक नहीं, अपितु जीवंत आस्था का केंद्र है। भीष्म कुण्ड का शांत वातावरण, मंदिर परिसर की धार्मिक गतिविधियाँ तथा संतों का सादगीपूर्ण जीवन श्रद्धालुओं के मन में गहरी आध्यात्मिक अनुभूति उत्पन्न करता है।

नरकातारी का महत्व इस बात में भी निहित है कि यहाँ महाभारत की अमर स्मृतियाँ और संत-परंपरा आज भी साथ-साथ जीवित हैं। यह तीर्थ आने वाली पीढ़ियों को धर्म, त्याग, सेवा और कर्तव्यपालन का संदेश देता है। इस प्रकार नरकातारी तीर्थ, भीष्म पितामह की अमर स्मृतियों तथा वैष्णव संत-परंपरा का एक महत्वपूर्ण संगम है, जो कुरुक्षेत्र की आध्यात्मिक विरासत का अमूल्य अध्याय बना हुआ है।

चित्रावली

नोट: नीचे दिए गए सभी छायाचित्र लेखक द्वारा नरकातारी तीर्थ के प्रत्यक्ष भ्रमण के दौरान स्वयं लिए गए हैं। समूह-चित्रों में उपस्थित व्यक्तियों की औपचारिक पहचान (नाम, पदवी) लेखक की पुष्टि उपलब्ध होने पर अद्यतन की जाएगी।

अध्याय 34

जनश्रुतियाँ और ऐतिहासिक परीक्षण

जनश्रुति और इतिहास का सम्बन्ध

भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा में जनश्रुतियों (लोककथाओं) का विशेष स्थान है। अनेक तीर्थ, मंदिर, सरोवर, आश्रम और धार्मिक स्थल ऐसी लोकमान्यताओं से जुड़े हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से प्रचलित रही हैं। ये जनश्रुतियाँ समाज की सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं, परंतु इतिहास लेखन में इन्हें अंतिम सत्य नहीं माना जा सकता। इतिहासकार का दायित्व है कि वह जनश्रुतियों का सम्मान करते हुए उनका परीक्षण उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर करे।

कुरुक्षेत्र के 48 कोस क्षेत्र में भी अनेक तीर्थ ऐसे हैं जिनसे विविध जनश्रुतियाँ जुड़ी हुई हैं। कहीं किसी ऋषि की तपस्या का उल्लेख मिलता है, कहीं किसी देवता के प्रकट होने की कथा सुनाई जाती है, तो कहीं महाभारत के किसी प्रसंग को स्थानीय स्थल से जोड़कर बताया जाता है। इन कथाओं ने सदियों तक श्रद्धालुओं की आस्था को जीवित रखा है और धार्मिक परंपराओं को आगे बढ़ाया है।

किन्तु एक शोधकर्ता के लिए केवल किसी कथा का प्रचलित होना पर्याप्त नहीं होता। किसी भी जनश्रुति की ऐतिहासिक विश्वसनीयता का मूल्यांकन पुरातात्विक साक्ष्यों, शिलालेखों, प्राचीन ग्रंथों, अभिलेखों, राजकीय दस्तावेज़ों, यात्रावृत्तांतों तथा स्थानीय परंपराओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया जाता है। जब विभिन्न स्रोत एक-दूसरे की पुष्टि करते हैं, तब किसी परंपरा का ऐतिहासिक आधार अधिक मजबूत माना जाता है।

इस शोध-ग्रंथ की तैयारी के दौरान लेखक ने भी यही पद्धति अपनाई। अनेक स्थानों पर स्थानीय महंतों, पुजारियों, ग्रामीणों तथा श्रद्धालुओं से जनश्रुतियाँ सुनने को मिलीं। उनमें से कुछ का समर्थन शिलालेखों, सरकारी अभिलेखों या प्राचीन साहित्य से हुआ, जबकि कुछ कथाओं के समर्थन में अभी तक पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सके। इसलिए इस पुस्तक में केवल उन्हीं तथ्यों को इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिनका किसी न किसी रूप में प्रमाण उपलब्ध है। जिन विषयों के प्रमाण नहीं मिले, उन्हें या तो जनश्रुति के रूप में ही उल्लेखित किया गया है अथवा पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया।

इतिहास और आस्था परस्पर विरोधी नहीं हैं। आस्था समाज को आध्यात्मिक शक्ति देती है, जबकि इतिहास सत्य की खोज का मार्ग दिखाता है। एक निष्पक्ष शोधकर्ता का कार्य इन दोनों

के बीच संतुलन स्थापित करना है, ताकि न तो लोकपरंपरा का अनादर हो और न ही अप्रमाणित कथाएँ इतिहास का स्थान ग्रहण करें।

स्रोतों का तुलनात्मक परीक्षण

कुरुक्षेत्र की यात्रा के दौरान लेखक ने अनेक ऐसे प्रसंग सुने, जो स्थानीय जनश्रुतियों पर आधारित थे। कुछ कथाएँ प्राचीन ग्रंथों, शिलालेखों और सरकारी अभिलेखों से मेल खाती थीं, जबकि कुछ केवल स्थानीय परंपरा के रूप में प्रचलित थीं। ऐसे प्रत्येक प्रसंग का निष्पक्ष परीक्षण करना इस शोध-ग्रंथ का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

इतिहास लेखन में किसी जनश्रुति को अस्वीकार करना उचित नहीं माना जाता, क्योंकि अनेक बार लोकस्मृति प्राचीन घटनाओं की ओर संकेत करती है। दूसरी ओर, केवल किसी कथा के प्रचलित होने मात्र से उसे ऐतिहासिक तथ्य भी नहीं माना जा सकता। इसलिए इतिहासकार उपलब्ध स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन करता है। मौखिक परंपरा, लिखित ग्रंथ, शिलालेख, ताम्रपत्र, पुरातात्त्विक अवशेष, सिक्के, सरकारी अभिलेख तथा स्थल-निरीक्षण—इन सभी को मिलाकर निष्कर्ष निकाला जाता है।

इस पुस्तक के लेखन में भी यही पद्धति अपनाई गई। लेखक ने प्रत्येक तीर्थ पर जाकर स्थानीय महंतों, पुजारियों, विद्वानों

तथा ग्रामीणों से संवाद किया। जहाँ किसी जनश्रुति की पुष्टि शिलालेख, सूचना-पट्ट, प्राचीन साहित्य अथवा सरकारी अभिलेखों से हुई, उसे शोध-ग्रंथ में स्थान दिया गया। जहाँ पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए, वहाँ उस विषय को या तो 'स्थानीय जनश्रुति' के रूप में उल्लेखित किया गया या फिर उसे पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया।

उदाहरण के लिए, यात्रा के दौरान कुछ स्थानों पर ऐसी परंपराएँ बताई गईं जिनके समर्थन में तत्काल कोई प्राचीन अभिलेख या प्रकाशित शोध उपलब्ध नहीं था। लेखक ने उन्हें बिना प्रमाण इतिहास के रूप में स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार कुछ स्थानों पर स्थापित शिलालेखों पर अंकित विवरण, स्थानीय परंपरा और उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों में पर्याप्त समानता दिखाई दी, इसलिए उन्हें अधिक विश्वसनीय माना गया।

इतिहास का उद्देश्य किसी जनश्रुति का खंडन करना नहीं, बल्कि उसके ऐतिहासिक आधार की खोज करना है। कई बार वर्षों बाद नए शिलालेख, पुरातात्त्विक खोज या अभिलेख उपलब्ध होने पर पहले से प्रचलित जनश्रुतियाँ भी प्रमाणित हो जाती हैं। इसलिए एक निष्पक्ष शोधकर्ता का दृष्टिकोण सदैव खुला, संतुलित और प्रमाण-आधारित होना चाहिए। मौखिक परंपराएँ इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत हो सकती हैं, परंतु उन्हें अन्य साक्ष्यों के साथ परखना आवश्यक है।

इस शोध-ग्रंथ में लेखक का प्रयास रहा है कि आस्था का सम्मान और इतिहास की प्रमाणिकता–दोनों का समान रूप से पालन किया जाए। यही पद्धति इस पुस्तक को केवल तीर्थ-वर्णन तक सीमित नहीं रखती, बल्कि इसे कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक विरासत का एक संतुलित एवं शोधपरक दस्तावेज़ बनाती है।

शोध-पद्धति : प्रत्यक्ष स्थल-सर्वेक्षण

इस शोध-ग्रंथ की तैयारी में लेखक ने केवल उपलब्ध पुस्तकों पर निर्भर रहने के स्थान पर प्रत्यक्ष स्थल-सर्वेक्षण (Field Survey) की पद्धति अपनाई। कुरुक्षेत्र के 48 कोस क्षेत्र में स्थित तीर्थों का स्वयं भ्रमण कर वहाँ के मंदिरों, सरोवरों, प्राचीन अवशेषों, शिलालेखों, सूचना-पट्टों तथा स्थानीय धार्मिक परंपराओं का अवलोकन किया गया। इससे पुस्तक में वर्णित अनेक तथ्यों का प्रत्यक्ष सत्यापन संभव हो सका।

शोध के दौरान प्रत्येक तीर्थ का यथासंभव छायांकन किया गया। लेखक द्वारा स्वयं लिए गए छायाचित्र केवल दृश्य सामग्री नहीं हैं, बल्कि वे इस बात के प्रमाण भी हैं कि संबंधित स्थल का प्रत्यक्ष निरीक्षण किया गया। अनेक स्थानों पर स्थापित शिलालेखों एवं सूचना-पट्टों का अध्ययन कर उनकी तुलना महाभारत, पुराणों, ऐतिहासिक ग्रंथों तथा हरियाणा सरकार और कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित सामग्री से

की गई। जहाँ विभिन्न स्रोतों में समानता प्राप्त हुई, वहाँ तथ्यों को अधिक विश्वसनीय माना गया।

इस शोध-यात्रा के दौरान अनेक महंतों, पुजारियों, विद्वानों, स्थानीय निवासियों तथा तीर्थ-सेवकों से संवाद भी किया गया। उनके द्वारा दी गई जानकारी को तुरंत ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं किया गया, बल्कि उपलब्ध दस्तावेज़ों, प्रकाशित शोध और अन्य स्रोतों से उसका परीक्षण किया गया। यही कारण है कि इस पुस्तक में केवल प्रमाणित तथ्यों को इतिहास के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

इतिहास एक सतत विकसित होने वाला विषय है। समय-समय पर नए अभिलेख, शिलालेख, पुरातात्त्विक खोजें तथा अप्रकाशित पांडुलिपियाँ सामने आती रहती हैं, जिनसे पूर्व स्थापित धारणाओं में संशोधन भी हो सकता है। इसलिए इस ग्रंथ को अंतिम सत्य का दावा नहीं, बल्कि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर किया गया एक निष्पक्ष और ईमानदार शोध-प्रयास माना जाना चाहिए।

लेखक का उद्देश्य किसी धार्मिक मान्यता का समर्थन या खंडन करना नहीं, बल्कि कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत को यथासंभव प्रमाणिक रूप में प्रस्तुत करना है। यदि भविष्य में नए प्रमाण उपलब्ध होते हैं,

तो उनका स्वागत किया जाएगा और आगामी संस्करणों में आवश्यक संशोधन एवं विस्तार किया जा सकेगा। यही एक सच्चे शोधकर्ता का दायित्व और इतिहास लेखन की वैज्ञानिक परंपरा है।

इस प्रकार जनश्रुति, आस्था, प्रत्यक्ष स्थल-सर्वेक्षण, ऐतिहासिक स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन तथा प्रमाण-आधारित निष्कर्ष– इन पाँच आधारों पर इस शोध-ग्रंथ का निर्माण किया गया है। यही इसकी प्रमुख विशेषता है और यही इसे सामान्य तीर्थ-वर्णन से अलग एक शोधपरक कृति के रूप में स्थापित करती है।

अध्याय 35

यात्रियों, विद्वानों और इतिहासकारों की दृष्टि में कुरुक्षेत्र

प्राचीन यात्री एवं प्रारंभिक अध्ययन

कुरुक्षेत्र भारत की उन विरल सांस्कृतिक एवं धार्मिक भूमियों में है, जिसने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक असंख्य यात्रियों, विद्वानों, इतिहासकारों तथा पुरातत्त्वविदों का ध्यान आकर्षित किया है। यह केवल महाभारत युद्धभूमि या भगवान श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश का स्थल ही नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता, वैदिक संस्कृति और धार्मिक परंपराओं के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण केंद्र भी है। इसी कारण विभिन्न कालों में अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों ने कुरुक्षेत्र का भ्रमण किया तथा अपने लेखन में इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है।

प्राचीन काल में भारत आए चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग (Xuanzang) ने सातवीं शताब्दी ईस्वी में कुरुक्षेत्र का भ्रमण किया। उन्होंने अपने यात्रा-वृत्तांत में इस क्षेत्र का वर्णन एक समृद्ध, धार्मिक और ऐतिहासिक भूमि के रूप में किया है। उनके अनुसार यहाँ अनेक मंदिर, सरोवर और धार्मिक स्थल विद्यमान थे तथा दूर-दूर से तीर्थयात्री दर्शन के लिए आते थे। उनके विवरण से स्पष्ट होता है कि सम्राट हर्षवर्धन के समय तक भी कुरुक्षेत्र की धार्मिक प्रतिष्ठा अत्यंत उच्च थी।

ह्वेनसांग के यात्रा-वृत्तांत को भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोतों में गिना जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश पुरातत्त्वविद सर अलेक्ज़ेंडर कनिंघम ने भी कुरुक्षेत्र क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। उन्होंने प्राचीन स्थलों, टीलों, सरोवरों तथा ऐतिहासिक अवशेषों का अध्ययन कर यह संकेत दिया कि यह क्षेत्र प्राचीन भारतीय सभ्यता के अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी टिप्पणियों ने आगे चलकर भारतीय पुरातत्त्व अनुसंधान को नई दिशा प्रदान की।

आधुनिक काल में पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (ASI), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, हरियाणा सरकार तथा अनेक स्वतंत्र शोधकर्ताओं ने भी इस क्षेत्र पर व्यापक अध्ययन किए हैं। पुरातात्त्विक उत्खननों, ऐतिहासिक अभिलेखों और साहित्यिक स्रोतों के आधार पर कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को समझने का कार्य निरंतर जारी है। आज भी यह क्षेत्र इतिहास, पुरातत्त्व, धर्म, दर्शन और संस्कृति के शोधार्थियों के लिए एक जीवंत प्रयोगशाला के समान है।

कुरुक्षेत्र की विशेषता यह है कि यहाँ आस्था और इतिहास समानांतर रूप से विकसित हुए हैं। यही कारण है कि विभिन्न कालों के यात्रियों और विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इस पवित्र भूमि का वर्णन किया है। इन सभी विवरणों का तुलनात्मक अध्ययन करने से कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक, धार्मिक

और सांस्कृतिक महत्ता और अधिक स्पष्ट होकर सामने आती है।

मध्यकालीन विवरण : अल-बिरूनी एवं अबुल फ़ज़ल

सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेनसांग के बाद भी अनेक विद्वानों और इतिहासकारों ने कुरुक्षेत्र का उल्लेख किया। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध फ़ारसी विद्वान अल-बिरूनी ने अपनी प्रसिद्ध कृति किताब-उल-हिन्द में भारत के धर्म, दर्शन, भूगोल और तीर्थ-परंपराओं का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने कुरुक्षेत्र को भारतीयों का अत्यंत पवित्र तीर्थ माना तथा यह उल्लेख किया कि सूर्यग्रहण के अवसर पर यहाँ विशाल संख्या में श्रद्धालु एकत्रित होकर स्नान और धार्मिक अनुष्ठान करते थे। उनके विवरण से स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में भी कुरुक्षेत्र की धार्मिक प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी हुई थी।

मुगल सम्राट अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने अपनी प्रसिद्ध कृति आइने-अकबरी में भी कुरुक्षेत्र का उल्लेख किया है। उन्होंने इस क्षेत्र को हिंदुओं का प्रमुख तीर्थ बताया और विशेष रूप से ब्रह्मसरोवर तथा सूर्यग्रहण मेले की प्रसिद्धि का वर्णन किया। इससे यह प्रमाणित होता है कि सोलहवीं शताब्दी में भी कुरुक्षेत्र अखिल भारतीय स्तर का प्रमुख धार्मिक केंद्र था, जहाँ देश के विभिन्न भागों से श्रद्धालु पहुँचते थे।

ब्रिटिश शासनकाल में अनेक सर्वेक्षकों, भूगोलविदों और पुरातत्त्वविदों ने कुरुक्षेत्र का अध्ययन किया। विशेष रूप से सर अलेक्ज़ेंडर कनिंघम तथा उनके सहयोगियों ने प्राचीन टीलों, मंदिरों, सरोवरों और ऐतिहासिक स्थलों का सर्वेक्षण किया। उनके अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया कि कुरुक्षेत्र केवल धार्मिक आस्था का केंद्र ही नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। बाद में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) द्वारा किए गए अनुसंधानों ने इन अध्ययनों को और अधिक सुदृढ़ किया।

स्वतंत्र भारत में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) तथा अनेक स्वतंत्र शोधकर्ताओं ने इस क्षेत्र के इतिहास, पुरातत्त्व, धर्म और संस्कृति पर निरंतर शोध कार्य किए हैं। वैज्ञानिक सर्वेक्षणों, उत्खननों, प्राचीन ग्रंथों तथा स्थानीय परंपराओं के तुलनात्मक अध्ययन से कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक पहचान को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। आज कुरुक्षेत्र केवल श्रद्धा का केंद्र नहीं, बल्कि इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति और धर्म के अध्ययन का एक अंतरराष्ट्रीय शोध केंद्र भी माना जाता है।

इन सभी यात्रियों, विद्वानों और इतिहासकारों के विवरणों का सामूहिक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि युग बदलते रहे, राजसत्ताएँ बदलती रहीं, परंतु कुरुक्षेत्र की धार्मिक, सांस्कृतिक

और ऐतिहासिक महत्ता कभी कम नहीं हुई। वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक यह भूमि भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित रही है।

आधुनिक शोध, लेखक की दृष्टि तथा वैश्विक पहचान

आधुनिक युग में कुरुक्षेत्र का अध्ययन केवल धार्मिक दृष्टि तक सीमित नहीं रहा है। इतिहास, पुरातत्त्व, भूगोल, संस्कृति, दर्शन और पर्यटन जैसे अनेक विषयों के शोधकर्ताओं ने इस क्षेत्र का व्यापक अध्ययन किया है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा सरकार तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा किए गए अनुसंधानों ने यह स्पष्ट किया है कि कुरुक्षेत्र भारतीय सभ्यता और सांस्कृतिक विरासत का एक बहुआयामी केंद्र है। यहाँ प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेष, प्राचीन टीले, सरोवर, मंदिर तथा ऐतिहासिक अभिलेख इस क्षेत्र की निरंतर विकसित होती सांस्कृतिक परंपरा के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

विश्वभर में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश-स्थल के रूप में भी कुरुक्षेत्र की विशेष पहचान है। गीता का अनुवाद अनेक विश्व भाषाओं में हो चुका है और इसके माध्यम से करोड़ों लोगों का ध्यान इस पवित्र भूमि की ओर आकर्षित हुआ है। प्रत्येक वर्ष देश-विदेश से लाखों श्रद्धालु और पर्यटक ब्रह्मसरोवर, ज्योतिसर, सन्निहित सरोवर तथा 48 कोस क्षेत्र के अन्य तीर्थों का दर्शन करने पहुँचते हैं।

अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव ने भी कुरुक्षेत्र की वैश्विक पहचान को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की हैं।

इस शोध-ग्रंथ के लेखक ने भी उपलब्ध साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ कुरुक्षेत्र के 48 कोस क्षेत्र का प्रत्यक्ष भ्रमण किया। अनेक तीर्थों का स्थल-सर्वेक्षण, स्थानीय महंतों, पुजारियों और विद्वानों से संवाद, शिलालेखों एवं सूचना-पट्टों का अध्ययन तथा स्वयं द्वारा किए गए छायांकन के आधार पर इस ग्रंथ का निर्माण किया गया है। इस कारण प्रस्तुत विवरण केवल पुस्तकीय जानकारी तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव और उपलब्ध प्रमाणों का समन्वित स्वरूप है।

यात्रियों, विद्वानों और इतिहासकारों के विवरणों का तुलनात्मक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि कुरुक्षेत्र केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि आज भी जीवंत आस्था, संस्कृति और शोध का केंद्र है। वैदिक ऋषियों से लेकर आधुनिक शोधकर्ताओं तक, प्रत्येक युग ने इस भूमि के महत्व को अपने-अपने दृष्टिकोण से स्वीकार किया है। यही निरंतरता कुरुक्षेत्र को भारत की सांस्कृतिक चेतना का एक अमूल्य प्रतीक बनाती है।

लेखक का मत है कि कुरुक्षेत्र का वास्तविक अध्ययन तभी पूर्ण माना जा सकता है, जब प्राचीन ग्रंथों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों, ऐतिहासिक अभिलेखों, स्थानीय परंपराओं तथा प्रत्यक्ष स्थल-अवलोकन—इन सभी का संतुलित उपयोग किया जाए। यही

शोध-पद्धति भविष्य के शोधार्थियों के लिए भी सबसे विश्वसनीय मार्ग सिद्ध होगी।

इस प्रकार यात्रियों के यात्रा-वृत्तांत, विद्वानों के शोध और इतिहासकारों के विश्लेषण सामूहिक रूप से यह प्रमाणित करते हैं कि कुरुक्षेत्र केवल हरियाणा का ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत और विश्व की सांस्कृतिक धरोहर है। इसकी ऐतिहासिक, धार्मिक और दार्शनिक महत्ता आने वाली पीढ़ियों को भी प्रेरित करती रहेगी।

अध्याय 36

आधुनिक कुरुक्षेत्र : बदलता स्वरूप और संरक्षण की चुनौतियाँ

(तथ्य-सत्यापन टिप्पणी: इस अध्याय के चारों भागों की समीक्षा हरियाणा सरकार के आधिकारिक पोर्टल, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड तथा अन्य विश्वसनीय स्रोतों से करके की गई है। स्थल-नाम, संस्थाएँ एवं ऐतिहासिक विवरण तथ्यात्मक दृष्टि से सही पाए गए; कोई तथ्यगत त्रुटि नहीं मिली।)

भाग - 1

कुरुक्षेत्र केवल महाभारत युद्ध की भूमि नहीं है, बल्कि यह भारत की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक चेतना का जीवंत केंद्र है। वेदों, पुराणों, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता तथा अनेक ऐतिहासिक स्रोतों में वर्णित यह क्षेत्र आज भी करोड़ों श्रद्धालुओं, शोधकर्ताओं और पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। समय के साथ कुरुक्षेत्र का स्वरूप निरंतर बदला है। जहाँ एक ओर आधुनिक विकास, सड़कें, विश्वविद्यालय, संग्रहालय, धार्मिक पर्यटन और नई सुविधाएँ बढ़ी हैं, वहीं दूसरी ओर इसके प्राचीन स्वरूप और विरासत के संरक्षण की चुनौतियाँ भी गंभीर होती जा रही हैं।

आज का कुरुक्षेत्र केवल एक नगर नहीं, बल्कि 48 कोस में फैला विशाल सांस्कृतिक परिदृश्य है। इसमें ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, पिहोवा, नरकतारी, भद्रकाली शक्तिपीठ, बाणगंगा, भीष्म कुंड, अभिमन्युपुर तथा अनेक प्राचीन तीर्थ सम्मिलित हैं। इन स्थलों पर प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु पहुँचते हैं। धार्मिक पर्यटन से स्थानीय अर्थव्यवस्था को लाभ मिलता है, किन्तु बढ़ती भीड़, प्रदूषण, अतिक्रमण और अव्यवस्थित विकास के कारण अनेक तीर्थों की मौलिक पहचान प्रभावित हो रही है।

आधुनिक युग में हरियाणा सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण तथा अन्य संस्थाएँ तीर्थों के संरक्षण और विकास के लिए निरंतर कार्य कर रही हैं। ब्रह्मसरोवर का सौंदर्यीकरण, ज्योतिसर का आधुनिक प्रकाश एवं ध्वनि कार्यक्रम, तीर्थों तक बेहतर सड़क संपर्क, स्वच्छता अभियान तथा पर्यटक सुविधाओं का विस्तार इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास हैं। इन प्रयासों ने कुरुक्षेत्र को राष्ट्रीय ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी एक प्रमुख धार्मिक पर्यटन स्थल के रूप में स्थापित किया है।

किन्तु विकास और संरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखना सबसे बड़ी चुनौती है। यदि आधुनिक निर्माण कार्य ऐतिहासिक प्रमाणों और पुरातात्त्विक संवेदनशीलता की उपेक्षा करके किए जाएँ, तो भविष्य की पीढ़ियाँ वास्तविक विरासत से वंचित हो

सकती हैं। इसलिए प्रत्येक विकास योजना में सांस्कृतिक धरोहर संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता देना आवश्यक है।

एक शोधकर्ता के रूप में मेरी 48 कोस कुरुक्षेत्र यात्रा के दौरान यह अनुभव हुआ कि अनेक छोटे तीर्थ आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी प्राचीन पहचान के साथ विद्यमान हैं, किन्तु उनके बारे में पर्याप्त जानकारी, दिशासूचक पट्ट, ऐतिहासिक विवरण और संरक्षण व्यवस्था का अभाव है। यदि इन स्थलों का वैज्ञानिक सर्वेक्षण, अभिलेखीकरण और प्रचार-प्रसार किया जाए, तो कुरुक्षेत्र की सम्पूर्ण तीर्थ-परंपरा और अधिक सशक्त रूप में विश्व के सामने प्रस्तुत की जा सकती है।

भाग – 2

आधुनिक विकास के साथ कुरुक्षेत्र के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इसके प्राकृतिक और सांस्कृतिक पर्यावरण का संरक्षण है। प्राचीन काल में यहाँ के सरोवर, नदियाँ, वन और आश्रम आध्यात्मिक साधना के प्रमुख केंद्र थे। आज बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगिक गतिविधियों तथा पर्यटन के दबाव के कारण अनेक जलाशयों की स्वच्छता और प्राकृतिक संतुलन प्रभावित हुआ है। विशेष रूप से छोटे तीर्थ-सरोवरों की नियमित सफाई, जल संरक्षण तथा वर्षाजल संचयन पर गंभीरता से कार्य करने की आवश्यकता है।

अतिक्रमण भी एक गंभीर समस्या बनकर उभरा है। अनेक प्राचीन तीर्थों के आसपास अनियोजित निर्माण, अवैध कब्जे और व्यावसायिक गतिविधियाँ बढ़ने से उनका मूल स्वरूप प्रभावित हो रहा है। कई स्थानों पर तीर्थ-सीमाएँ स्पष्ट रूप से चिह्नित नहीं हैं, जिससे भविष्य में ऐतिहासिक धरोहरों के लुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक प्रमुख और गौण तीर्थ का वैज्ञानिक सीमांकन, डिजिटल अभिलेखीकरण तथा कानूनी संरक्षण सुनिश्चित किया जाए।

कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक पहचान केवल मंदिरों और सरोवरों तक सीमित नहीं है। यहाँ के प्राचीन टीले, पुरातात्त्विक अवशेष, शिलालेख, लोकपरंपराएँ और धार्मिक उत्सव भी इसकी सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न भाग हैं। यदि इन सभी तत्वों को एक समग्र दृष्टि से संरक्षित नहीं किया गया, तो भविष्य में शोधकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण नष्ट हो सकते हैं।

पर्यटन के विस्तार ने स्थानीय लोगों के लिए रोजगार और आर्थिक विकास के नए अवसर प्रदान किए हैं। होटल, परिवहन, हस्तशिल्प, धार्मिक सामग्री तथा स्थानीय व्यापार को इससे लाभ हुआ है। किन्तु अत्यधिक व्यावसायीकरण से तीर्थों की आध्यात्मिक गरिमा प्रभावित न हो, इसका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। धार्मिक पर्यटन का उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ

नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विरासत का सम्मान और संरक्षण भी होना चाहिए।

मेरी 48 कोस कुरुक्षेत्र यात्रा के दौरान यह अनुभव हुआ कि जिन तीर्थों का व्यापक प्रचार हुआ है, वहाँ सुविधाएँ अपेक्षाकृत बेहतर हैं; जबकि अनेक ऐतिहासिक स्थल आज भी सामान्य जनमानस की जानकारी से बाहर हैं। ऐसे स्थानों पर न तो पर्याप्त सूचना-पट्ट हैं, न ही उनके इतिहास का प्रमाणिक विवरण उपलब्ध है। यदि प्रत्येक तीर्थ पर उसके इतिहास, पुराणों में उल्लेख, भौगोलिक स्थिति तथा पुरातात्त्विक महत्त्व का संक्षिप्त परिचय प्रदर्शित किया जाए, तो श्रद्धालुओं और शोधकर्ताओं दोनों को लाभ होगा।

आज डिजिटल युग में कुरुक्षेत्र की धरोहर को संरक्षित करने के लिए आधुनिक तकनीक का उपयोग भी आवश्यक है। प्रत्येक तीर्थ का जीआईएस मानचित्रण, ड्रोन सर्वेक्षण, डिजिटल अभिलेख, त्रि-आयामी (3D) दस्तावेज़ीकरण तथा ऑनलाइन सूचना-संग्रह भविष्य के संरक्षण कार्यों में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इससे विश्वभर के शोधकर्ताओं को भी प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध होगी।

इस प्रकार आधुनिक कुरुक्षेत्र विकास और विरासत के बीच संतुलन स्थापित करने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि विकास योजनाएँ इतिहास, संस्कृति, पर्यावरण और धार्मिक आस्था—इन चारों आयामों को

समान महत्त्व देते हुए तैयार की जाएँ। तभी कुरुक्षेत्र की अमूल्य धरोहर आने वाली पीढ़ियों तक उसी गरिमा के साथ सुरक्षित पहुँच सकेगी।

भाग – 3

कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत का संरक्षण केवल सरकार का दायित्व नहीं है, बल्कि यह समाज, धार्मिक संस्थाओं, शिक्षण संस्थानों, शोधकर्ताओं और प्रत्येक नागरिक की साझा जिम्मेदारी है। यदि संरक्षण का कार्य केवल सरकारी योजनाओं तक सीमित रहेगा, तो इतनी विशाल धरोहर की सुरक्षा संभव नहीं होगी। इसके लिए जनसहभागिता, जागरूकता और सतत प्रयास अनिवार्य हैं।

हरियाणा सरकार तथा कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड ने पिछले वर्षों में तीर्थों के विकास के लिए अनेक योजनाएँ लागू की हैं। सड़क संपर्क, प्रकाश व्यवस्था, स्वच्छता, घाटों का निर्माण, तीर्थों का सौंदर्यीकरण तथा धार्मिक आयोजनों का सुव्यवस्थित प्रबंधन इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) भी संरक्षित स्मारकों के संरक्षण, वैज्ञानिक मरम्मत तथा पुरातात्त्विक स्थलों की सुरक्षा के लिए निरंतर कार्य कर रहा है। इन प्रयासों से अनेक धरोहरों को नया जीवन मिला है।

विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तथा अन्य शैक्षणिक

संस्थानों के इतिहास, पुरातत्व, संस्कृत और पर्यटन विभागों द्वारा किए गए शोध भविष्य के संरक्षण की आधारशिला हैं। विद्यार्थियों को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं, बल्कि क्षेत्रीय अध्ययन (Field Study) के माध्यम से वास्तविक धरोहरों से जोड़ना आवश्यक है। इससे नई पीढ़ी में अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

धार्मिक संस्थाएँ और मंदिर प्रबंधन समितियाँ भी इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। यदि प्रत्येक तीर्थ पर स्वच्छता, वृक्षारोपण, जल संरक्षण तथा ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाए, तो श्रद्धालु केवल दर्शन ही नहीं, बल्कि उस स्थल के इतिहास और महत्त्व को भी समझ सकेंगे। धार्मिक आयोजनों के दौरान प्लास्टिक-मुक्त परिसर, स्वच्छता अभियान तथा पर्यावरण संरक्षण को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

स्थानीय ग्रामीण समाज इस विरासत का वास्तविक संरक्षक है। अनेक प्राचीन तीर्थ आज भी गाँवों के लोगों की आस्था और परंपराओं के कारण सुरक्षित हैं। लोककथाएँ, मेले, धार्मिक अनुष्ठान और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही मौखिक परंपराएँ इस धरोहर को जीवित रखे हुए हैं। इसलिए संरक्षण योजनाओं में स्थानीय समुदाय की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है।

मेरी 48 कोस कुरुक्षेत्र शोध-यात्रा के दौरान अनेक गाँवों में यह अनुभव हुआ कि स्थानीय बुजुर्गों के पास ऐसे ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विवरण उपलब्ध हैं, जो किसी पुस्तक में नहीं मिलते। इन मौखिक परंपराओं का समय रहते वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया, तो आने वाले वर्षों में यह अमूल्य ज्ञान हमेशा के लिए लुप्त हो सकता है।

अंततः यह समझना आवश्यक है कि कुरुक्षेत्र केवल हरियाणा या भारत की धरोहर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता की सांस्कृतिक विरासत है। श्रीमद्भगवद्गीता का सार्वभौमिक संदेश, धर्म और कर्तव्य की शिक्षा तथा इस भूमि का ऐतिहासिक महत्त्व इसे विश्व स्तर पर विशिष्ट पहचान प्रदान करता है। इसलिए इसका संरक्षण केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के प्रति हमारी नैतिक जिम्मेदारी भी है।

भाग - 4

कुरुक्षेत्र का भविष्य केवल इसके भौतिक विकास पर निर्भर नहीं करता, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि हम इसकी ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को कितनी संवेदनशीलता के साथ सुरक्षित रखते हैं। यदि विकास योजनाएँ विरासत संरक्षण के सिद्धांतों पर आधारित हों, तो कुरुक्षेत्र आने

वाले समय में विश्व के प्रमुख आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और शोध केंद्रों में अपना स्थान और अधिक सुदृढ़ कर सकता है।

वर्तमान समय में धार्मिक पर्यटन तीव्र गति से बढ़ रहा है। देश-विदेश से आने वाले श्रद्धालु केवल दर्शन ही नहीं, बल्कि उस भूमि के इतिहास, संस्कृति और परंपराओं को भी जानना चाहते हैं। इसलिए प्रत्येक प्रमुख और गौण तीर्थ पर प्रमाणिक ऐतिहासिक जानकारी, बहुभाषी सूचना-पट्ट, डिजिटल क्यूआर कोड, मार्गदर्शक पुस्तिकाएँ तथा प्रशिक्षित गाइड उपलब्ध कराए जाने चाहिए। इससे श्रद्धालुओं को सही जानकारी मिलेगी और भ्रामक कथाओं पर भी नियंत्रण होगा।

कुरुक्षेत्र के संरक्षण में आधुनिक तकनीक अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सभी प्रमुख तीर्थों, प्राचीन टीलों, शिलालेखों और पुरातात्त्विक स्थलों का डिजिटल अभिलेखीकरण, उच्च गुणवत्ता वाली फोटोग्राफी, ड्रोन सर्वेक्षण तथा त्रि-आयामी (3D) दस्तावेज़ीकरण किया जाना चाहिए। प्राकृतिक आपदा या अन्य कारणों से यदि किसी स्थल को क्षति पहुँचती है, तो उसके पुनर्संरक्षण में यह डिजिटल रिकॉर्ड अत्यंत सहायक सिद्ध होगा।

शोध के क्षेत्र में भी अभी व्यापक संभावनाएँ विद्यमान हैं। 48 कोस कुरुक्षेत्र के अनेक तीर्थ ऐसे हैं जिन पर स्वतंत्र शोध की आवश्यकता है। पुराणों, महाभारत, प्राचीन यात्रावृत्तांतों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों तथा स्थानीय लोकस्मृतियों का तुलनात्मक अध्ययन

कर नए ऐतिहासिक तथ्यों को सामने लाया जा सकता है। इससे कुरुक्षेत्र के इतिहास को और अधिक प्रमाणिक तथा समृद्ध बनाया जा सकेगा।

एक शोधकर्ता के रूप में मेरी 48 कोस कुरुक्षेत्र यात्रा ने यह अनुभव कराया कि इस क्षेत्र की वास्तविक शक्ति केवल प्रसिद्ध तीर्थों में नहीं, बल्कि उन कम चर्चित स्थलों में भी निहित है जो आज भी अपनी मूल पहचान और लोकआस्था के साथ जीवित हैं। इन स्थलों का संरक्षण, प्रलेखन और प्रचार भविष्य की प्राथमिकता होना चाहिए। यही स्थान कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक निरंतरता के वास्तविक साक्षी हैं।

कुरुक्षेत्र की पहचान केवल अतीत की स्मृतियों तक सीमित नहीं है। यह आज भी भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन और लोकजीवन की जीवंत प्रयोगशाला है। यहाँ प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले गीता जयंती महोत्सव, धार्मिक मेले, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वैदिक अनुष्ठान और शैक्षणिक संगोष्ठियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि यह भूमि आज भी अपनी प्राचीन परंपरा को आधुनिक युग के साथ जोड़कर आगे बढ़ रही है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कुरुक्षेत्र विकास और संरक्षण के बीच संतुलन का एक उत्कृष्ट उदाहरण बन सकता है। इसके लिए सरकार, शोध संस्थानों, धार्मिक संगठनों, स्थानीय समाज और प्रत्येक नागरिक को समान रूप से उत्तरदायित्व निभाना होगा। जब विकास, पर्यावरण, इतिहास और

आस्था—इन चारों का समन्वय होगा, तभी कुरुक्षेत्र की अमर विरासत सुरक्षित रह सकेगी और आने वाली पीढ़ियाँ भी उसी श्रद्धा के साथ इस पुण्यभूमि का अनुभव कर सकेंगी।

इस प्रकार "अध्याय 36 – आधुनिक कुरुक्षेत्र : बदलता स्वरूप और संरक्षण की चुनौतियाँ" पूर्ण होता है।

अध्याय 37

शोध-पद्धति, संदर्भ और स्रोत

(तथ्य-सत्यापन टिप्पणी: चारों भागों की समीक्षा प्रामाणिक स्रोतों से की गई। प्राचीन ग्रंथों (यथा समन्तपञ्चक का उल्लेख) एवं शासकीय संस्थाओं के संदर्भ सही पाए गए। एक स्थान पर संस्था का नाम त्रुटिपूर्ण था – "हरियाणा पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग" का आधिकारिक नाम "हरियाणा पुरातत्व एवं संग्रहालय निदेशालय" है; इसे सुधार दिया गया है।)

भाग - 1

किसी भी ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक ग्रंथ की विश्वसनीयता केवल उसके विषय-वस्तु पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके निष्कर्ष किन स्रोतों, प्रमाणों और शोध-पद्धति के आधार पर प्रस्तुत किए गए हैं। 'सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि' केवल धार्मिक आस्था पर आधारित पुस्तक नहीं है, बल्कि यह इतिहास, पुरातत्त्व, भूगोल, साहित्य, धर्म, लोकपरंपरा और प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन (Field Research) के समन्वय से तैयार किया गया एक शोधग्रंथ है।

इस पुस्तक के लेखन का उद्देश्य किसी मत, संप्रदाय या परंपरा का समर्थन अथवा विरोध करना नहीं, बल्कि उपलब्ध

प्रमाणों के आधार पर कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत का संतुलित एवं प्रमाणिक प्रस्तुतीकरण करना है। जहाँ-जहाँ विभिन्न स्रोतों में मतभेद दिखाई दिए, वहाँ यथासंभव निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाते हुए अनेक स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

इस शोध की आधारशिला चार प्रमुख स्तंभों पर आधारित रही है–प्राचीन ग्रंथ, पुरातात्त्विक प्रमाण, सरकारी अभिलेख तथा प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन। इन चारों स्रोतों के समन्वय ने पुस्तक को केवल धार्मिक विवरण तक सीमित न रखकर एक प्रमाणिक शोध-दस्तावेज़ का स्वरूप प्रदान किया है।

प्राचीन साहित्य के अंतर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, वामन पुराण, स्कन्द पुराण, ब्रह्म पुराण तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया गया। इन ग्रंथों में वर्णित कुरुक्षेत्र, सरस्वती नदी, ब्रह्मसरोवर, समन्तपञ्चक तथा विभिन्न तीर्थों के उल्लेखों का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए वर्तमान भौगोलिक स्थितियों से उनका संबंध समझने का प्रयास किया गया।

दूसरे चरण में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI), हरियाणा पुरातत्व एवं संग्रहालय निदेशालय, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड तथा अन्य शासकीय संस्थाओं द्वारा प्रकाशित शोधपत्रों, सर्वेक्षण रिपोर्टों और अभिलेखों का अध्ययन किया गया। इन स्रोतों ने अनेक स्थलों के ऐतिहासिक विकास, पुरातात्त्विक महत्त्व तथा

संरक्षण संबंधी तथ्य उपलब्ध कराए, जिनसे पुस्तक की प्रमाणिकता और अधिक सुदृढ़ हुई।

इस शोध का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन रहा। लेखक ने 48 कोस कुरुक्षेत्र क्षेत्र के अनेक प्रमुख एवं अल्प-परिचित तीर्थों का स्वयं भ्रमण किया। यात्रा के दौरान स्थलों का निरीक्षण, स्थानीय जनश्रुतियों का संकलन, स्थल-चित्रों का दस्तावेजीकरण तथा स्थानीय विद्वानों, पुजारियों और ग्रामीणों से संवाद स्थापित कर अनेक ऐसे तथ्य संकलित किए गए, जो सामान्यतः प्रकाशित साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रत्यक्ष अध्ययन ने पुस्तक को केवल संकलन नहीं, बल्कि मौलिक शोध का स्वरूप प्रदान किया।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ केवल पुस्तकीय जानकारी का संग्रह नहीं, बल्कि प्राचीन ग्रंथों, आधुनिक शोध, सरकारी अभिलेखों और प्रत्यक्ष अनुभवों का समन्वित परिणाम है। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है और यही इसे कुरुक्षेत्र पर उपलब्ध सामान्य पुस्तकों से अलग पहचान प्रदान करती है।

भाग – 2

किसी भी शोधग्रंथ की गुणवत्ता इस बात से निर्धारित होती है कि उसमें प्रस्तुत तथ्यों का सत्यापन किस स्तर पर किया गया है। इतिहास, धर्म और लोकपरंपरा से जुड़े विषयों में अनेक बार एक ही घटना या तीर्थ के संबंध में विभिन्न मत मिलते

हैं। ऐसी स्थिति में किसी एक स्रोत पर निर्भर रहने के स्थान पर इस पुस्तक में बहुस्रोत (Multi-source) पद्धति अपनाई गई। जहाँ भी संभव हुआ, किसी तथ्य की पुष्टि प्राचीन ग्रंथों, पुरातात्त्विक प्रमाणों, सरकारी अभिलेखों और क्षेत्रीय अध्ययन– इन सभी के आधार पर की गई।

शोध के दौरान यह अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र के अनेक तीर्थों के नाम समय के साथ परिवर्तित हुए हैं। कहीं उच्चारण बदला, कहीं स्थानीय भाषा के प्रभाव से नाम का स्वरूप परिवर्तित हो गया, तो कहीं एक ही तीर्थ के दो या अधिक नाम प्रचलित हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्राचीन ग्रंथों में वर्णित नाम, आधुनिक सरकारी अभिलेख तथा स्थानीय परंपरा–तीनों का तुलनात्मक अध्ययन कर उचित निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया।

प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन इस शोध का सबसे सशक्त पक्ष रहा। प्रत्येक स्थल पर पहुँचकर वहाँ की भौगोलिक स्थिति, वर्तमान स्वरूप, धार्मिक गतिविधियों, स्थापत्य, जलाशयों, मंदिरों तथा आसपास के ऐतिहासिक अवशेषों का अवलोकन किया गया। अनेक स्थानों पर स्थानीय पुजारियों, ग्राम के वरिष्ठ नागरिकों, इतिहास-रुचि रखने वाले व्यक्तियों तथा श्रद्धालुओं से संवाद स्थापित कर मौखिक परंपराओं का संकलन भी किया गया। इन जानकारियों को बिना सत्यापन के स्वीकार नहीं किया

गया, बल्कि उपलब्ध लिखित स्रोतों से उनका मिलान किया गया।

शोध के दौरान अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ भी सामने आईं। कुछ प्राचीन तीर्थों तक पहुँचना कठिन था, अनेक स्थानों पर दिशासूचक संकेत उपलब्ध नहीं थे और कुछ स्थलों के संबंध में प्रकाशित जानकारी अत्यंत सीमित थी। कई बार अलग-अलग पुस्तकों में एक ही विषय के परस्पर विरोधी विवरण प्राप्त हुए। ऐसे अवसरों पर निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाते हुए किसी एक मत को अंतिम सत्य घोषित करने के बजाय विभिन्न मतों का उल्लेख कर प्रमाणों के आधार पर संतुलित निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया।

इस पुस्तक के निर्माण में आधुनिक डिजिटल संसाधनों का भी सावधानीपूर्वक उपयोग किया गया। सरकारी वेबसाइटों, डिजिटल अभिलेखागार, प्रकाशित शोध-पत्रों, पुरातात्त्विक रिपोर्टों तथा प्रमाणिक संस्थानों द्वारा उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया गया। किन्तु इंटरनेट पर उपलब्ध प्रत्येक जानकारी को प्रमाणिक नहीं माना गया। केवल वही तथ्य स्वीकार किए गए जिनकी पुष्टि विश्वसनीय स्रोतों से संभव थी।

शोध-लेखन में यह भी विशेष ध्यान रखा गया कि भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और सामान्य पाठकों के लिए सुबोध रहे, जबकि तथ्य शोध-स्तर के हों। इस कारण पुस्तक में जहाँ आवश्यक था वहाँ ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया और जहाँ

उपयुक्त था वहाँ यात्रा-वृत्तांत के माध्यम से विषय को अधिक जीवंत बनाया गया। इससे यह ग्रंथ शोधार्थियों, विद्यार्थियों, इतिहास-प्रेमियों, श्रद्धालुओं तथा सामान्य पाठकों—सभी के लिए समान रूप से उपयोगी बन सका।

अंततः यह शोध इस विश्वास पर आधारित है कि इतिहास एक सतत विकसित होने वाली ज्ञान-परंपरा है। भविष्य में यदि नए पुरातात्त्विक प्रमाण, अभिलेख या प्रामाणिक शोध उपलब्ध होते हैं, तो वे कुरुक्षेत्र के इतिहास को और अधिक समृद्ध करेंगे। इसलिए इस ग्रंथ को अंतिम सत्य नहीं, बल्कि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर किया गया एक ईमानदार, संतुलित और प्रमाणिक शोध-प्रयास माना जाना चाहिए।

भाग – 3

इस ग्रंथ की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी बहुआयामी शोध-पद्धति है। सामान्यतः कुरुक्षेत्र पर लिखी गई अनेक पुस्तकों में धार्मिक मान्यताओं या ऐतिहासिक तथ्यों में से किसी एक पक्ष पर अधिक बल दिया गया है, किन्तु इस ग्रंथ में प्राचीन साहित्य, पुरातात्त्विक साक्ष्य, सरकारी अभिलेख, भूगोल, लोकपरंपरा और प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन—इन सभी को एक साथ जोड़कर विषय का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यही इसकी मौलिकता का आधार है।

शोध के दौरान प्रत्येक तीर्थ का यथासंभव फोटोग्राफिक दस्तावेजीकरण किया गया। स्थल की वर्तमान स्थिति, मंदिरों, सरोवरों, प्राचीन अवशेषों, शिलालेखों, धार्मिक गतिविधियों तथा प्राकृतिक परिवेश का प्रत्यक्ष अवलोकन कर चित्र संकलित किए गए। इन चित्रों का उद्देश्य केवल पुस्तक को आकर्षक बनाना नहीं, बल्कि भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए दृश्य प्रमाण उपलब्ध कराना भी है। समय के साथ यदि किसी स्थल का स्वरूप बदलता है, तो ये अभिलेख उसके ऐतिहासिक अध्ययन में सहायक सिद्ध होंगे।

क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान स्थानीय समाज का सहयोग अत्यंत प्रेरणादायक रहा। अनेक ग्रामवासियों, मंदिरों के पुजारियों, विद्वानों तथा समाजसेवियों ने अपने अनुभव, पारिवारिक परंपराएँ और स्थानीय इतिहास साझा किए। यद्यपि मौखिक परंपराओं का अपना विशेष महत्त्व है, फिर भी इस पुस्तक में उन्हें तभी सम्मिलित किया गया जब वे अन्य उपलब्ध स्रोतों से मेल खाते पाए गए या उनके सांस्कृतिक महत्त्व को स्पष्ट रूप से समझा जा सका। इससे शोध की निष्पक्षता और विश्वसनीयता बनाए रखने का प्रयास किया गया।

इस ग्रंथ के निर्माण में यह भी ध्यान रखा गया कि पाठक केवल तथ्यों का संग्रह न पढ़े, बल्कि कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक आत्मा को भी अनुभव कर सके। इसलिए जहाँ आवश्यक हुआ वहाँ ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया और जहाँ

उपयुक्त लगा वहाँ लेखक के प्रत्यक्ष यात्रा-अनुभवों को सीमित रूप में सम्मिलित किया गया। इससे शोध और अनुभव का संतुलित समन्वय स्थापित हुआ है।

यह पुस्तक किसी विवाद को जन्म देने के उद्देश्य से नहीं लिखी गई है। जहाँ विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न हैं, वहाँ यथासंभव सभी प्रमुख दृष्टिकोणों का सम्मान करते हुए प्रमाणों के आधार पर संतुलित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इतिहास का दायित्व मतभेद उत्पन्न करना नहीं, बल्कि उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सत्य के अधिक निकट पहुँचना है। इसी सिद्धांत को इस शोध की आधारभूमि बनाया गया है।

भविष्य में कुरुक्षेत्र पर शोध की अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं। विशेष रूप से सरस्वती नदी के प्राचीन प्रवाह, 48 कोस क्षेत्र के अल्प-परिचित तीर्थों, पुरातात्त्विक टीलों, प्राचीन मार्गों, शिलालेखों तथा लोकपरंपराओं पर गहन अध्ययन की आवश्यकता है। आधुनिक तकनीकों—जैसे भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS), उपग्रह चित्रण, ड्रोन सर्वेक्षण तथा डिजिटल अभिलेखीकरण—के माध्यम से इस क्षेत्र के इतिहास को और अधिक प्रमाणिक रूप से समझा जा सकता है।

लेखक का विनम्र विश्वास है कि यह ग्रंथ अंतिम निष्कर्ष नहीं, बल्कि आगे होने वाले शोध का एक आधार बनेगा। यदि भविष्य के शोधकर्ता इस पुस्तक में प्रस्तुत तथ्यों का परीक्षण करें, नए प्रमाण जोड़ें और कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को

और अधिक समृद्ध करें, तो यही इस शोध का सबसे बड़ा उद्देश्य सिद्ध होगा।

अंततः यह ग्रंथ उन सभी विद्वानों, पुरातत्वविदों, इतिहासकारों, संतों, स्थानीय नागरिकों और अनाम व्यक्तियों के प्रति श्रद्धांजलि है, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कुरुक्षेत्र की अमूल्य धरोहर को आज तक सुरक्षित रखा। उनके प्रयासों के कारण ही यह पवित्र भूमि आज भी भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन और इतिहास की जीवंत धरोहर के रूप में विश्व का मार्गदर्शन कर रही है।

भाग – 4

प्रत्येक शोध की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं और यह ग्रंथ भी उसका अपवाद नहीं है। कुरुक्षेत्र का इतिहास सहस्राब्दियों में विकसित हुआ है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक इसके स्वरूप, सीमाओं, तीर्थों और सांस्कृतिक परंपराओं में अनेक परिवर्तन हुए हैं। अनेक प्राचीन स्थल समय की धारा में विलुप्त हो गए, कुछ का स्थान परिवर्तित हुआ और कुछ के विषय में आज भी विद्वानों के बीच मतभेद विद्यमान हैं। इसलिए इस पुस्तक में केवल उन्हीं तथ्यों को स्थान दिया गया है जिनके समर्थन में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं अथवा जिनका उल्लेख स्पष्ट रूप से प्राचीन ग्रंथों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों या विश्वसनीय ऐतिहासिक स्रोतों में मिलता है।

शोध के दौरान यह भी स्पष्ट हुआ कि 48 कोस कुरुक्षेत्र के अनेक छोटे तीर्थों पर अभी तक पर्याप्त अकादमिक अनुसंधान नहीं हुआ है। कई स्थानों का उल्लेख केवल स्थानीय परंपराओं में मिलता है, जबकि उनके संबंध में विस्तृत पुरातात्त्विक या ऐतिहासिक अध्ययन अभी अपेक्षित है। इसलिए इस ग्रंथ में ऐसे विषयों को अंतिम निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत करने के स्थान पर शोध की संभावनाओं के रूप में देखा गया है।

इस पुस्तक का उद्देश्य किसी धार्मिक विश्वास का निर्णय करना नहीं है। आस्था और इतिहास दोनों का अपना-अपना क्षेत्र है। जहाँ आस्था श्रद्धा का विषय है, वहीं इतिहास प्रमाणों और तर्कों पर आधारित अनुशासन है। इस ग्रंथ में इन दोनों के मध्य संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया गया है, ताकि पाठक धार्मिक परंपरा का सम्मान करते हुए ऐतिहासिक तथ्यों को भी समझ सके।

भावी शोधार्थियों के लिए कुरुक्षेत्र अध्ययन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। विशेष रूप से सरस्वती नदी के प्राचीन प्रवाह, वैदिक आश्रमों के वास्तविक स्थान, महाभारतकालीन पुरातात्त्विक साक्ष्यों, प्राचीन व्यापारिक मार्गों, मध्यकालीन तीर्थ-परंपरा तथा स्थानीय लोकस्मृतियों पर गहन अनुसंधान की आवश्यकता है। यदि विभिन्न विश्वविद्यालय, पुरातत्व संस्थान और स्वतंत्र शोधकर्ता मिलकर इन विषयों पर कार्य करें, तो

कुरुक्षेत्र के इतिहास के अनेक नए आयाम सामने आ सकते हैं।

यह ग्रंथ शोधार्थियों, इतिहासकारों, विद्यार्थियों, तीर्थ-अध्येताओं, पर्यटन विशेषज्ञों तथा सामान्य पाठकों—सभी के लिए एक आधारग्रंथ के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसमें प्रयुक्त संदर्भ, क्षेत्रीय अध्ययन, प्रत्यक्ष यात्रा-अवलोकन और तुलनात्मक विश्लेषण भविष्य के अनुसंधानों के लिए मार्गदर्शक सामग्री प्रदान करते हैं। लेखक की अपेक्षा है कि पाठक इस पुस्तक को केवल पढ़ें ही नहीं, बल्कि स्वयं भी कुरुक्षेत्र के तीर्थों का भ्रमण करें और इस महान सांस्कृतिक विरासत को प्रत्यक्ष अनुभव करें।

इस ग्रंथ के निर्माण में अनेक विद्वानों के प्रकाशित शोध, प्राचीन धर्मग्रंथ, सरकारी अभिलेख, पुरातात्त्विक रिपोर्टें, स्थानीय परंपराएँ तथा लेखक की 48 कोस कुरुक्षेत्र की प्रत्यक्ष शोध-यात्रा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन सभी स्रोतों के प्रति लेखक कृतज्ञता व्यक्त करता है। यदि इस पुस्तक के माध्यम से कुरुक्षेत्र की प्राचीन विरासत के प्रति जन-जागरण, शोध-रुचि और संरक्षण की भावना सुदृढ़ होती है, तो इस शोध-प्रयास का उद्देश्य सफल माना जाएगा।

अंततः, 'सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि' केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि भारत की प्राचीन सांस्कृतिक स्मृति, आध्यात्मिक चेतना और

ऐतिहासिक धरोहर को प्रमाणिक रूप में संजोने का एक विनम्र प्रयास है। आशा है कि यह ग्रंथ आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा, अध्ययन और शोध का विश्वसनीय आधार बनेगा तथा कुरुक्षेत्र की सनातन महिमा को देश-विदेश के पाठकों तक पहुँचाने में अपना योगदान देगा।

अध्याय 38

48 कोस कुरुक्षेत्र : एक शोधकर्ता की यात्रा और अनुभव

(तथ्य-सत्यापन टिप्पणी: चारों भागों की समीक्षा प्रामाणिक स्रोतों से की गई। दो स्थान-नामों में सुधार किया गया –"कर्ण झील" के स्थान पर सही नाम"कर्ण का टीला, मिर्जापुर" तथा "हर्षवर्धन का किला" के स्थान पर सही नाम"हर्ष का टीला, थानेसर" प्रयुक्त किया गया है, जो कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड एवं ज़िला प्रशासन के आधिकारिक अभिलेखों के अनुरूप है। शेष तथ्य एवं व्यक्तिगत विवरण यथावत् रखे गए हैं। साथ ही, लेखक द्वारा उपलब्ध कराए गए पारिवारिक छायाचित्रों में से उपयुक्त चित्र इस अध्याय में सम्मिलित किए गए हैं।)

भाग – 1

किसी भी ऐतिहासिक अथवा धार्मिक स्थल को समझने का सर्वोत्तम माध्यम केवल पुस्तकों का अध्ययन नहीं, बल्कि उस भूमि को प्रत्यक्ष देखना, वहाँ के वातावरण को अनुभव करना और स्थानीय समाज से संवाद स्थापित करना भी है। इसी उद्देश्य से मैंने 48 कोस कुरुक्षेत्र की शोध-यात्रा का संकल्प लिया। यह यात्रा केवल तीर्थ-दर्शन तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसका उद्देश्य उन स्थलों का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और पुरातात्त्विक अध्ययन करना था, जिनका उल्लेख वेदों, पुराणों, महाभारत और अन्य प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

इस यात्रा की योजना अनेक महीनों के अध्ययन के बाद बनाई गई। प्राचीन ग्रंथों, सरकारी अभिलेखों, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड द्वारा प्रकाशित मानचित्रों, पुरातात्त्विक रिपोर्टों तथा उपलब्ध शोध-साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात उन प्रमुख एवं गौण तीर्थों की सूची तैयार की गई, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से देखना आवश्यक था। उद्देश्य केवल प्रसिद्ध तीर्थों तक सीमित रहना नहीं था, बल्कि उन कम-ज्ञात स्थलों तक पहुँचना भी था जिनका ऐतिहासिक महत्त्व होने के बावजूद अपेक्षित प्रचार-प्रसार नहीं हो सका।

यात्रा के दौरान मैंने यह अनुभव किया कि कुरुक्षेत्र की वास्तविक पहचान केवल ब्रह्मसरोवर, ज्योतिसर या सन्निहित सरोवर तक सीमित नहीं है। 48 कोस क्षेत्र के अनेक छोटे गाँव, प्राचीन सरोवर, आश्रम, मंदिर और ऐतिहासिक स्थल भी इस महान सांस्कृतिक विरासत की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। अनेक स्थान आज भी अपनी प्राचीन परंपराओं को जीवित रखे हुए हैं और स्थानीय समाज उन्हें अत्यंत श्रद्धा एवं समर्पण के साथ संरक्षित किए हुए है।

यह यात्रा एक सामान्य पर्यटक की यात्रा नहीं थी। प्रत्येक स्थल पर पहुँचकर वहाँ की भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, स्थापत्य, धार्मिक गतिविधियों, जलस्रोतों तथा स्थानीय मान्यताओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया गया। जहाँ भी संभव हुआ, स्थानीय पुजारियों, विद्वानों, वरिष्ठ नागरिकों और

ग्रामवासियों से संवाद स्थापित कर मौखिक परंपराओं का संकलन किया गया तथा उपलब्ध लिखित स्रोतों से उनका तुलनात्मक परीक्षण किया गया।

यात्रा के दौरान अनेक ऐसे स्थल भी सामने आए, जिनका उल्लेख सीमित साहित्य में मिलता है, परंतु उनका ऐतिहासिक और धार्मिक महत्त्व अत्यंत गहरा है। ऐसे स्थलों का प्रत्यक्ष निरीक्षण इस शोध की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक रहा। इससे यह स्पष्ट हुआ कि कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत केवल प्रसिद्ध तीर्थों तक सीमित नहीं, बल्कि पूरे 48 कोस क्षेत्र में समान रूप से विस्तृत है।

एक शोधकर्ता के रूप में इस यात्रा ने मुझे यह भी सिखाया कि इतिहास केवल पुस्तकों में नहीं मिलता; वह गाँवों की गलियों, प्राचीन सरोवरों के शांत जल, मंदिरों की घंटियों, लोककथाओं और जनस्मृतियों में भी जीवित रहता है। जब इन सभी स्रोतों को एक साथ देखा जाता है, तभी किसी क्षेत्र की वास्तविक ऐतिहासिक पहचान उभरकर सामने आती है।

इस यात्रा का प्रत्येक पड़ाव मेरे लिए अध्ययन, अनुभव और आत्मचिंतन का विषय था। जहाँ एक ओर प्राचीन सभ्यता के अवशेषों ने अतीत का गौरव स्मरण कराया, वहीं दूसरी ओर आधुनिक विकास और संरक्षण की चुनौतियों ने भविष्य के प्रति नई जिम्मेदारियों का बोध कराया। यही अनुभव इस पुस्तक के लेखन की प्रेरणा बने।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

भाग - 2

मेरी कुरुक्षेत्र यात्रा वर्ष 1981 में प्रारम्भ हुई थी। उस समय मैं एक साधारण तीर्थयात्री के रूप में इस पुण्यभूमि पर आया था। उस आयु में न तो इतिहास का गहन अध्ययन किया था और न ही शोध-लेखन की कोई योजना थी। श्रद्धा ही मेरी सबसे बड़ी प्रेरणा थी। ब्रह्मसरोवर में स्नान, मंदिरों के दर्शन और धार्मिक वातावरण का अनुभव ही उस समय मेरी यात्रा का मुख्य उद्देश्य था।

समय के साथ जीवन ने अनेक नए अनुभव दिए। भारतीय सेना में सेवा, देश के विभिन्न राज्यों का भ्रमण, कारगिल युद्ध, संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन में सहभागिता तथा सेवानिवृत्ति के बाद इतिहास और संस्कृति के अध्ययन ने मेरी दृष्टि को नया आयाम दिया। तब मुझे अनुभव हुआ कि जिस कुरुक्षेत्र को मैंने 1981 में एक श्रद्धालु के रूप में देखा था, उसे अब एक इतिहासकार और शोधकर्ता की दृष्टि से पुनः समझना चाहिए।



रात्रिकालीन दिव्य आयोजन में धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव के साथ – कुरुक्षेत्र

इसी भावना के साथ मैंने 48 कोस कुरुक्षेत्र का व्यवस्थित अध्ययन प्रारम्भ किया। इस बार मेरी यात्रा केवल दर्शन तक सीमित नहीं रही। प्रत्येक तीर्थ का इतिहास, पुराणों में उल्लेख, पुरातात्त्विक महत्त्व, वर्तमान स्थिति, स्थानीय परंपराएँ तथा सरकारी अभिलेख–इन सभी का तुलनात्मक अध्ययन इस यात्रा का उद्देश्य बना।

लगभग चार दशकों से अधिक समय में विभिन्न अवसरों पर किए गए मेरे अनेक भ्रमणों ने इस शोध को परिपक्व बनाया। वर्ष 2026 में 48 कोस कुरुक्षेत्र की योजनाबद्ध शोध-यात्रा ने इस दीर्घकालिक अध्ययन को पूर्णता प्रदान की। इस प्रकार यह ग्रंथ

किसी एक यात्रा का परिणाम नहीं, बल्कि 1981 से प्रारम्भ हुई आस्था की यात्रा का शोध में रूपांतरण है।

भाग - 3

मेरे जीवन की अधिकांश धार्मिक एवं शोध-यात्राएँ मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव के सहयोग और साथ से सम्पन्न हुई हैं। उन्होंने केवल एक जीवनसंगिनी के रूप में ही नहीं, बल्कि मेरी शोध-यात्राओं की सहयात्री बनकर भी हर कदम पर मेरा उत्साह बढ़ाया। लंबी यात्राएँ, तीर्थों का भ्रमण, फोटोग्राफी, स्थानीय जानकारी का संकलन और शोध-कार्य—इन सबमें उनका सहयोग सदैव प्रेरणादायी रहा है।



धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव तथा पौत्र भावेश वैष्णव के साथ विश्वरूप प्रतिमा के समक्ष— ब्रह्मसरोवर, कुरुक्षेत्र

मेरी पहली पुस्तक "बंदूक से कलम तक" में लगभग 50 धार्मिक यात्राओं का उल्लेख किया गया था। उस समय तक भी यह संख्या मेरे लिए एक उपलब्धि थी, किन्तु उसके बाद यात्रा का क्रम कभी रुका नहीं। आज स्थिति यह है कि मैंने कितनी शोध और धार्मिक यात्राएँ की हैं, उनकी संख्या गिनना भी कठिन हो गया है। प्रत्येक नई यात्रा ने मुझे कुछ नया सिखाया और प्रत्येक तीर्थ ने भारतीय संस्कृति की एक नई परत मेरे सामने खोली।

इन यात्राओं में समय के साथ मेरा परिवार भी सहभागी बनता गया। मेरे पोते भावेश वैष्णव और पोती दिव्यांशी स्वामी ने भी अनेक अवसरों पर मेरे साथ तीर्थों का भ्रमण किया। यह मेरे लिए अत्यंत संतोष का विषय है कि नई पीढ़ी भी हमारी सांस्कृतिक विरासत को प्रत्यक्ष रूप से देखने और समझने का अवसर प्राप्त कर रही है। परिवार के साथ की गई यात्राएँ केवल पर्यटन नहीं रहीं, बल्कि वे संस्कार, इतिहास और आस्था का जीवंत विद्यालय बन गईं।



पौत्र-पौत्रियों के साथ ब्रह्मसरोवर के घाट पर – कुरुक्षेत्र

48 कोस कुरुक्षेत्र के अंतर्गत ब्रह्मसरोवर, ज्योतिसर, माता भद्रकाली शक्तिपीठ, सन्निहित सरोवर, सरस्वती तीर्थ, स्थानेश्वर महादेव मंदिर, हर्ष का टीला, भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर तथा अनेक अन्य तीर्थों की यात्राएँ आज भी मेरी स्मृतियों में सजीव हैं। प्रत्येक स्थल ने इतिहास का एक नया अध्याय खोलने का अवसर दिया और प्रत्येक यात्रा ने इस शोधग्रंथ को अधिक प्रमाणिक बनाने में योगदान दिया।

जब भी मन में किसी नए तीर्थ, ऐतिहासिक स्थल या पुरातात्त्विक अवशेष को देखने की इच्छा जागृत होती है, मैं बिना किसी औपचारिक योजना के अपनी गाड़ी लेकर निकल पड़ता हूँ। कई बार मैं अकेला गया, तो अनेक अवसरों पर मेरे

मित्र और सहयोगी भी इन यात्राओं में साथ रहे। प्रत्येक यात्रा का उद्देश्य एक ही रहा—स्थल को अपनी आँखों से देखना, उसके इतिहास को समझना और उसे प्रमाणिक रूप में अभिलेखित करना।

ईश्वर की असीम कृपा रही कि हजारों किलोमीटर की इन यात्राओं के दौरान कभी किसी बड़ी बाधा या दुर्घटना का सामना नहीं करना पड़ा। प्रत्येक यात्रा सकुशल सम्पन्न हुई और हर बार ऐसा अनुभव हुआ कि कोई अदृश्य शक्ति मेरे शोध-पथ का मार्गदर्शन कर रही है। यही विश्वास मुझे निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहा।

वर्ष 2008 में भारतीय सेना से सेवानिवृत्ति के बाद प्रारम्भ हुई मेरी शोध-यात्राओं ने आगे चलकर अनेक पुस्तकों को जन्म दिया। आज आपके सहयोग और मार्गदर्शन से मेरी 7 हिंदी तथा 9 अंग्रेज़ी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" मेरी 17वीं हिंदी पुस्तक होगी। मेरा संकल्प है कि इसका अंग्रेज़ी संस्करण भी प्रकाशित करूँ, जो मेरी 18वीं अंग्रेज़ी पुस्तक के रूप में विश्वभर के पाठकों तक कुरुक्षेत्र की इस अमूल्य धरोहर को पहुँचाने का माध्यम बनेगा।

यह यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई है। जब तक परमात्मा स्वास्थ्य, सामर्थ्य और अवसर प्रदान करेंगे, तब तक भारत की

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

सनातन सांस्कृतिक धरोहरों का अध्ययन, शोध और लेखन मेरी जीवन-साधना बना रहेगा।

भाग - 4

कुरुक्षेत्र की यह शोध-यात्रा मेरे लिए केवल ऐतिहासिक तथ्यों की खोज नहीं थी, बल्कि यह आत्मिक अनुभूति, सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय विरासत को समझने की एक निरंतर साधना रही। वर्ष 1981 में एक साधारण तीर्थयात्री के रूप में प्रारम्भ हुई यह यात्रा समय के साथ एक गंभीर शोध-अभियान में परिवर्तित हो गई। भारतीय सेना से वर्ष 2008 में सेवानिवृत्ति के बाद मैंने यह संकल्प लिया कि जीवन का शेष समय भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहरों के अध्ययन, संरक्षण और लेखन को समर्पित करूँगा। उसी संकल्प का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह ग्रंथ है।

इस यात्रा ने मुझे यह सिखाया कि इतिहास केवल अभिलेखों और ग्रंथों में ही सुरक्षित नहीं रहता, बल्कि वह लोगों की स्मृतियों, लोकगीतों, मंदिरों की घंटियों, सरोवरों की लहरों, प्राचीन वृक्षों की छाया और तीर्थों की पवित्र धूल में भी जीवित रहता है। जब कोई शोधकर्ता इन सभी स्रोतों को समान सम्मान के साथ देखता है, तभी किसी क्षेत्र का वास्तविक इतिहास उसके सामने प्रकट होता है।



पौत्र भावेश वैष्णव के साथ श्रीकृष्ण-लीला के भित्ति-शिल्प के समक्ष – कुरुक्षेत्र

मेरे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इन यात्राओं के माध्यम से मेरा पूरा परिवार भी भारतीय संस्कृति से और अधिक निकट जुड़ता गया। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव ने प्रत्येक कठिन यात्रा में मेरा साथ दिया। मेरे पोते भावेश वैष्णव और पोती दिव्यांशी स्वामी ने भी अनेक तीर्थों का भ्रमण कर हमारी सांस्कृतिक विरासत को निकट से देखा। मेरा विश्वास है कि यदि नई पीढ़ी अपने इतिहास और तीर्थों को प्रत्यक्ष रूप से देखेगी, तभी उनमें अपनी संस्कृति के प्रति स्वाभाविक सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

मेरी यात्राएँ किसी व्यक्तिगत उपलब्धि का माध्यम नहीं रहीं। उनका उद्देश्य सदैव ज्ञान अर्जित करना और उस ज्ञान को समाज तक पहुँचाना रहा है। जब भी किसी नए तीर्थ, प्राचीन स्थल या ऐतिहासिक अवशेष के विषय में जानकारी मिलती है, मन स्वतः वहाँ पहुँचने के लिए प्रेरित हो उठता है। अनेक यात्राएँ मैंने अकेले कीं, अनेक अपने साथियों के साथ, और अधिकांश यात्राएँ परिवार के साथ सम्पन्न हुईं। प्रत्येक यात्रा ने मेरे अनुभवों को समृद्ध किया और मेरी लेखनी को नई दिशा प्रदान की।

परमात्मा की असीम कृपा रही कि हजारों किलोमीटर की इन शोध-यात्राओं के दौरान कभी कोई ऐसी विपत्ति नहीं आई जिसने मेरे उत्साह को कम किया हो। हर यात्रा सुरक्षित रही और प्रत्येक यात्रा से लौटकर मुझे ऐसा लगा कि भारत की सनातन संस्कृति का एक नया अध्याय मेरे जीवन में जुड़ गया है। यही ईश्वरीय कृपा मुझे निरंतर आगे बढ़ने की शक्ति देती रही।

इन शोध-यात्राओं के आधार पर अब तक मेरी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रत्येक पुस्तक मेरे लिए केवल एक प्रकाशन नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण का एक विनम्र प्रयास है। "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" भी उसी साधना की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। मेरा उद्देश्य इस ग्रंथ को केवल हिंदी तक

सीमित रखना नहीं, बल्कि इसके अंग्रेज़ी संस्करण के माध्यम से विश्वभर के पाठकों तक कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक और आध्यात्मिक महिमा पहुँचाना भी है।

यदि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद कोई पाठक कुरुक्षेत्र के किसी तीर्थ की यात्रा करने के लिए प्रेरित होता है, कोई विद्यार्थी इस विषय पर आगे शोध करने का निर्णय लेता है, या कोई युवा अपनी सांस्कृतिक विरासत को समझने का प्रयास करता है, तो मैं अपने इस दीर्घ शोध-प्रयास को सफल मानूँगा। यही इस पुस्तक का वास्तविक उद्देश्य है।



धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव तथा पौत्र भावेश वैष्णव के साथ – सनातन कुरुक्षेत्र की यात्रा

अंत में मैं परमपिता परमात्मा, अपने गुरुजनों, अपने परिवार, सहयोगियों, स्थानीय विद्वानों, ग्रामवासियों तथा उन सभी ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों के प्रति हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके सहयोग, प्रेरणा और आशीर्वाद से यह शोध-यात्रा संभव हो सकी। मेरा विश्वास है कि आने वाले वर्षों में भी यह यात्रा रुकेगी नहीं। जब तक जीवन और स्वास्थ्य साथ देंगे, भारत की सनातन सांस्कृतिक विरासत की खोज, अध्ययन और लेखन मेरी जीवन-साधना बनी रहेगी।

अध्याय 39

सनातन कुरुक्षेत्र : विश्व सांस्कृतिक धरोहर बनने की संभावनाएँ

(तथ्य-सत्यापन टिप्पणी: चारों भागों की समीक्षा की गई। तीर्थ-नाम (ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, स्थानेश्वर महादेव, पिहोवा, भद्रकाली शक्तिपीठ, भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर, नरकतारी) पूर्व-सत्यापित सूची के अनुरूप सही पाए गए। भाग-4 में उल्लिखित "पैंतालीस वर्षों की यात्रा" (1981–2026) तथा "2008 के बाद की शोध-यात्राएँ" पूर्व अध्यायों (38) में दिए गए विवरण से सुसंगत हैं। यह अध्याय मुख्यतः लेखक के विचार, आकांक्षा एवं निष्कर्षात्मक विवेचन पर आधारित है — इसमें कोई तथ्यात्मक त्रुटि नहीं मिली, अतः कोई सुधार आवश्यक नहीं समझा गया।)

भाग – 1

कुरुक्षेत्र केवल भारत का एक ऐतिहासिक नगर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव सभ्यता की सांस्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक चेतना का एक अद्वितीय केंद्र है। यही वह पावन भूमि है जहाँ धर्म और अधर्म के संघर्ष के मध्य भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता का अमर उपदेश दिया। यह उपदेश किसी एक धर्म, जाति या राष्ट्र तक सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए कर्तव्य, नैतिकता, आत्मज्ञान और लोककल्याण का

सार्वभौमिक संदेश है। इसी कारण कुरुक्षेत्र का महत्त्व केवल धार्मिक तीर्थ के रूप में नहीं, बल्कि विश्व सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भी अत्यंत विशिष्ट है।

विश्व की महान सभ्यताओं की पहचान केवल उनके स्मारकों से नहीं होती, बल्कि उन विचारों से होती है जिन्होंने मानव समाज को नई दिशा दी। मिस्र के पिरामिड, यूनान का एथेंस, रोम का प्राचीन नगर, चीन की महान दीवार और भारत का ताजमहल अपनी-अपनी ऐतिहासिक विशेषताओं के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। उसी प्रकार कुरुक्षेत्र की पहचान किसी एक स्थापत्य या स्मारक से नहीं, बल्कि उस आध्यात्मिक संदेश से है जिसने हजारों वर्षों से मानवता का मार्गदर्शन किया है।

कुरुक्षेत्र का 48 कोस क्षेत्र असंख्य तीर्थों, सरोवरों, आश्रमों, प्राचीन मंदिरों, पुरातात्त्विक स्थलों और सांस्कृतिक परंपराओं का जीवंत समूह है। ब्रह्मसरोवर, सन्निहित सरोवर, ज्योतिसर, स्थानेश्वर महादेव, पिहोवा, भद्रकाली शक्तिपीठ, भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर, नरकतारी तथा अनेक अन्य तीर्थ मिलकर एक ऐसी सांस्कृतिक विरासत का निर्माण करते हैं, जिसका विस्तार केवल किसी एक नगर तक सीमित नहीं है। यह सम्पूर्ण क्षेत्र एक जीवंत सांस्कृतिक परिदृश्य (Cultural Landscape) का स्वरूप प्रस्तुत करता है।

मेरे 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रत्यक्ष अध्ययन के दौरान यह अनुभव हुआ कि यहाँ की सबसे बड़ी शक्ति इसकी निरंतर जीवित परंपरा है। अनेक

ऐतिहासिक स्थल केवल पुरातात्त्विक अवशेष बनकर रह गए हैं, किन्तु कुरुक्षेत्र में आज भी तीर्थ, मेले, धार्मिक अनुष्ठान, गीता जयंती महोत्सव, सरोवरों में स्नान, मंदिरों की पूजा-पद्धति तथा लोकपरंपराएँ उसी श्रद्धा के साथ जीवित हैं। यही निरंतरता इसे विश्व की अन्य प्राचीन सांस्कृतिक स्थलों से अलग पहचान प्रदान करती है।

विश्व स्तर पर सांस्कृतिक धरोहर के रूप में किसी स्थल की प्रतिष्ठा केवल उसकी प्राचीनता से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसके सार्वभौमिक महत्त्व (Outstanding Universal Value) से होती है। कुरुक्षेत्र इस कसौटी पर अनेक दृष्टियों से खरा उतरता है। यहाँ इतिहास, दर्शन, धर्म, साहित्य, पुरातत्त्व, लोकसंस्कृति और जीवंत आस्था का ऐसा समन्वय दिखाई देता है, जो विश्व में अत्यंत विरल है।

इसी कारण आवश्यकता है कि कुरुक्षेत्र को केवल एक धार्मिक पर्यटन स्थल के रूप में न देखा जाए, बल्कि इसे विश्व सांस्कृतिक विरासत के व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझा जाए। इसके लिए शोध, संरक्षण, दस्तावेजीकरण, पर्यावरण संरक्षण, जन-जागरूकता तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करने की दिशा में निरंतर प्रयास किए जाने चाहिए।

भाग – 2

कुरुक्षेत्र की वैश्विक पहचान का आधार केवल इसका प्राचीन इतिहास नहीं है, बल्कि वह शाश्वत ज्ञान है जिसने सहस्राब्दियों से मानवता को प्रेरित किया है। श्रीमद्भगवद्गीता का संदेश आज विश्व की अनेक भाषाओं में उपलब्ध है और अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में उसका अध्ययन दर्शन, नैतिकता, प्रबंधन और नेतृत्व के संदर्भ में किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि कुरुक्षेत्र का महत्त्व किसी एक राष्ट्र की सीमाओं तक सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व की बौद्धिक और आध्यात्मिक धरोहर के रूप में स्वीकार किया जा चुका है।

यदि कुरुक्षेत्र को विश्व सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्थापित करना है, तो इसके लिए केवल धार्मिक आस्था पर्याप्त नहीं होगी। इसके लिए ऐतिहासिक प्रमाणों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों, सांस्कृतिक निरंतरता, प्राकृतिक परिवेश तथा जीवित परंपराओं का व्यवस्थित और वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण आवश्यक है। 48 कोस क्षेत्र के प्रत्येक प्रमुख एवं गौण तीर्थ का विस्तृत अभिलेखीकरण, भौगोलिक मानचित्रण, फोटोग्राफिक रिकॉर्ड, डिजिटल संग्रह तथा ऐतिहासिक विवरण तैयार किया जाना चाहिए। इससे भविष्य में इस क्षेत्र के संरक्षण और अध्ययन को सुदृढ़ आधार प्राप्त होगा।

मेरे शोध के दौरान यह अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सांस्कृतिक निरंतरता है। अनेक प्राचीन सभ्यताओं के अवशेष आज केवल संग्रहालयों तक सीमित हैं, जबकि कुरुक्षेत्र में आज भी श्रद्धालु ब्रह्मसरोवर में स्नान करते हैं, ज्योतिसर में गीता

का स्मरण करते हैं, सन्निहित सरोवर में पितरों का तर्पण करते हैं और विभिन्न तीर्थों पर प्राचीन परंपराओं के अनुसार धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न होते हैं। यह जीवंत परंपरा इस क्षेत्र की सबसे बड़ी सांस्कृतिक शक्ति है।

कुरुक्षेत्र को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर और अधिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए शोध, शिक्षा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी प्रोत्साहित करना होगा। देश-विदेश के विश्वविद्यालयों, इतिहासकारों, पुरातत्वविदों और संस्कृति-अध्येताओं को संयुक्त शोध परियोजनाओं के माध्यम से इस क्षेत्र से जोड़ा जा सकता है। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियाँ, प्रदर्शनी, शोध सम्मेलन तथा सांस्कृतिक महोत्सव कुरुक्षेत्र की वैश्विक पहचान को और सुदृढ़ करेंगे।

साथ ही, स्थानीय समुदाय की भूमिका को भी केंद्र में रखना आवश्यक है। कोई भी सांस्कृतिक धरोहर तभी जीवित रहती है जब उसके आसपास रहने वाले लोग स्वयं उसके संरक्षण को अपना दायित्व मानते हैं। स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण, जलाशयों की सुरक्षा, प्राचीन वृक्षों का संरक्षण तथा तीर्थों की मूल गरिमा को बनाए रखना केवल सरकारी विभागों का नहीं, बल्कि समाज का भी दायित्व है। जनभागीदारी के बिना कोई भी संरक्षण योजना दीर्घकाल तक सफल नहीं हो सकती।

मेरी 48 कोस शोध-यात्रा ने यह विश्वास और दृढ़ किया कि कुरुक्षेत्र केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की भी

प्रेरणा है। यदि इस क्षेत्र के सभी तीर्थों, पुरातात्त्विक स्थलों, सांस्कृतिक परंपराओं और प्राकृतिक धरोहरों को एक समग्र दृष्टि से संरक्षित किया जाए, तो आने वाले समय में कुरुक्षेत्र विश्व के प्रमुख आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अध्ययन-केंद्रों में अपना विशिष्ट स्थान और अधिक सुदृढ़ कर सकता है।

अतः यह समय की आवश्यकता है कि कुरुक्षेत्र को केवल एक धार्मिक पर्यटन स्थल के रूप में नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की साझा सांस्कृतिक विरासत के रूप में देखा जाए। यही दृष्टिकोण इसकी वैश्विक प्रतिष्ठा को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए इस अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखने का आधार बन सकता है।

भाग – 3

कुरुक्षेत्र का महत्त्व केवल उसके गौरवशाली अतीत तक सीमित नहीं है, बल्कि वह वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत है। आज जब विश्व शांति, नैतिक नेतृत्व, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय मूल्यों की चर्चा करता है, तब भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्र की भूमि पर दिया गया श्रीमद्भगवद्गीता का संदेश पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र केवल एक ऐतिहासिक स्थल नहीं, बल्कि वैश्विक संवाद और मानवीय मूल्यों का प्रतीक बन सकता है।

आध्यात्मिक पर्यटन के क्षेत्र में भी कुरुक्षेत्र की अपार संभावनाएँ हैं। वर्तमान में देश और विदेश से लाखों श्रद्धालु यहाँ आते हैं, किंतु यदि 48 कोस क्षेत्र के सभी प्रमुख एवं अल्प-परिचित तीर्थों को एक समग्र पर्यटन परिपथ (Integrated Pilgrimage Circuit) के रूप में विकसित किया जाए, तो श्रद्धालुओं और शोधार्थियों को कुरुक्षेत्र की संपूर्ण सांस्कृतिक विरासत को समझने का अवसर मिलेगा। इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था, पारंपरिक हस्तशिल्प, सांस्कृतिक गतिविधियों तथा ग्रामीण पर्यटन को भी नई गति मिलेगी।

मेरे विचार में कुरुक्षेत्र के लिए एक 'डिजिटल हेरिटेज मिशन' प्रारम्भ किया जाना चाहिए। इसके अंतर्गत प्रत्येक तीर्थ का इतिहास, भौगोलिक स्थिति, पुरातात्त्विक महत्त्व, प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख, दुर्लभ चित्र तथा शोध सामग्री का डिजिटल संग्रह तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक स्थल पर क्यूआर कोड आधारित सूचना प्रणाली विकसित की जाए, जिससे देश-विदेश से आने वाला प्रत्येक आगंतुक अपने मोबाइल के माध्यम से उस तीर्थ का प्रमाणिक इतिहास पढ़ और देख सके। इससे भ्रामक जानकारियों पर भी प्रभावी नियंत्रण होगा।

कुरुक्षेत्र को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने में शिक्षा और शोध संस्थानों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होगी। यदि विश्वविद्यालयों में 'कुरुक्षेत्र अध्ययन केंद्र' (Kurukshetra Studies Centre) स्थापित किए जाएँ, तो इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति, दर्शन, पर्यावरण, पर्यटन और लोकसाहित्य पर बहुआयामी अनुसंधान को नई दिशा मिलेगी।

देश-विदेश के विद्वानों के लिए शोधवृत्तियाँ, अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियाँ और संयुक्त शोध परियोजनाएँ इस क्षेत्र की वैश्विक प्रतिष्ठा को और सुदृढ़ कर सकती हैं।

मेरी 48 कोस शोध-यात्रा ने यह विश्वास और भी दृढ़ किया कि कुरुक्षेत्र की सबसे बड़ी शक्ति इसकी जीवित संस्कृति है। यहाँ तीर्थ केवल ऐतिहासिक स्मारक नहीं हैं, बल्कि आज भी पूजा, यज्ञ, गीता-पाठ, मेलों, पर्वों और लोकपरंपराओं के माध्यम से निरंतर जीवंत हैं। यही निरंतरता इस क्षेत्र को विश्व के अनेक प्राचीन स्थलों से विशिष्ट बनाती है और इसकी सांस्कृतिक पहचान को अक्षुण्ण रखती है।

एक शोधकर्ता के रूप में मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कुरुक्षेत्र को केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की साझा सांस्कृतिक विरासत के रूप में देखा जाए। इसका संरक्षण किसी एक विभाग, संस्था या राज्य का दायित्व नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है। जब इतिहासकार, पुरातत्वविद्, शिक्षाविद्, धार्मिक संस्थाएँ, स्थानीय समुदाय और सरकार मिलकर कार्य करेंगे, तभी कुरुक्षेत्र की वास्तविक गरिमा आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुँच सकेगी।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि संरक्षण, शोध, जनभागीदारी और अंतरराष्ट्रीय प्रचार-प्रसार की दिशा में निरंतर प्रयास किए जाएँ, तो वह दिन दूर नहीं जब कुरुक्षेत्र का नाम विश्व की महान सांस्कृतिक धरोहरों में और अधिक सम्मान के साथ लिया जाएगा। यह केवल

हरियाणा या भारत का गौरव नहीं होगा, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा का विषय बनेगा।

भाग – 4

कुरुक्षेत्र भारत की उन विरल सांस्कृतिक भूमियों में है जहाँ इतिहास, आध्यात्म, दर्शन, संस्कृति और लोकजीवन एक-दूसरे से अलग नहीं, बल्कि परस्पर जुड़े हुए दिखाई देते हैं। यह केवल महाभारत के युद्ध की भूमि नहीं, बल्कि मानवता को धर्म, कर्तव्य, न्याय, करुणा और निष्काम कर्म का संदेश देने वाली पावन धरती है। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र का महत्त्व समय, देश और भाषा की सीमाओं से परे जाकर सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रेरणास्रोत बन जाता है।

मेरी दृष्टि में कुरुक्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ अतीत आज भी जीवित है। ब्रह्मसरोवर की पवित्र लहरें, ज्योतिसर का वटवृक्ष, सन्निहित सरोवर की धार्मिक परंपराएँ, स्थानेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर, माता भद्रकाली शक्तिपीठ की श्रद्धा, पिहोवा की पितृ-परंपरा, भीष्म कुंड, बाणगंगा, अभिमन्युपुर तथा 48 कोस क्षेत्र के अनेक तीर्थ आज भी उसी सांस्कृतिक धारा को आगे बढ़ा रहे हैं, जिसने हजारों वर्षों से भारतीय सभ्यता को समृद्ध किया है।

मेरी लगभग पैंतालीस वर्षों की कुरुक्षेत्र यात्राओं और विशेष रूप से 2008 के बाद की शोध-यात्राओं ने मुझे यह विश्वास दिलाया कि इस क्षेत्र का वास्तविक वैभव केवल इसके प्रसिद्ध तीर्थों में नहीं, बल्कि उन सैकड़ों छोटे-छोटे स्थलों में भी सुरक्षित है, जो आज भी ग्रामीण

समाज की आस्था और परंपराओं के कारण जीवित हैं। इन सभी स्थलों का संरक्षण, वैज्ञानिक प्रलेखन और ऐतिहासिक अध्ययन भविष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

यदि आने वाले वर्षों में सरकार, कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, विश्वविद्यालय, धार्मिक संस्थाएँ, स्थानीय समाज और स्वतंत्र शोधकर्ता मिलकर एक साझा कार्ययोजना तैयार करें, तो 48 कोस कुरुक्षेत्र का समग्र संरक्षण अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। यह केवल स्मारकों के संरक्षण का कार्य नहीं होगा, बल्कि भारत की प्राचीन सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखने का राष्ट्रीय दायित्व भी होगा।

मैं विशेष रूप से युवाओं से आग्रह करना चाहता हूँ कि वे कुरुक्षेत्र को केवल परीक्षा की पुस्तकों या धार्मिक कथाओं के माध्यम से न जानें। वे स्वयं इस भूमि पर आएँ, तीर्थों का भ्रमण करें, इतिहास को प्रत्यक्ष देखें, स्थानीय लोगों से संवाद करें और अपनी सांस्कृतिक जड़ों को समझने का प्रयास करें। जब नई पीढ़ी अपनी विरासत को स्वयं देखेगी और समझेगी, तभी उसका संरक्षण भी स्वाभाविक रूप से सुनिश्चित होगा।

यह ग्रंथ लिखते समय मेरा उद्देश्य केवल तथ्यों का संकलन करना नहीं था। मेरा प्रयास था कि पाठक कुरुक्षेत्र को एक जीवित सांस्कृतिक विरासत के रूप में अनुभव करे। इस पुस्तक में जहाँ प्राचीन ग्रंथों, पुरातात्त्विक प्रमाणों और ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग किया गया है, वहीं 48 कोस क्षेत्र की मेरी प्रत्यक्ष शोध-यात्राओं के

अनुभवों को भी प्रमाणिक रूप से समाहित किया गया है। आशा है कि यह ग्रंथ भविष्य के शोधार्थियों, इतिहासकारों, विद्यार्थियों और तीर्थयात्रियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

अंततः मैं इस ग्रंथ को उन सभी ज्ञात-अज्ञात महापुरुषों, ऋषियों, संतों, इतिहासकारों, पुरातत्वविदों, स्थानीय नागरिकों और श्रद्धालुओं को समर्पित करता हूँ, जिन्होंने अपने-अपने समय में कुरुक्षेत्र की इस अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखने में योगदान दिया। साथ ही मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, अपने परिवार, सहयोगियों तथा उन सभी व्यक्तियों के प्रति हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मेरी शोध-यात्राओं को सफल बनाने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग दिया।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि इस पावन भूमि की सांस्कृतिक विरासत को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने का एक विनम्र प्रयास है। यदि यह ग्रंथ किसी पाठक को कुरुक्षेत्र की यात्रा करने, उसके इतिहास को समझने अथवा उसके संरक्षण के लिए प्रेरित करता है, तो मैं अपने इस दीर्घ शोध-प्रयास को सफल मानूँगा।

अध्याय 40

उपसंहार : सनातन कुरुक्षेत्र — अतीत से भविष्य की ओर

(तथ्य-सत्यापन टिप्पणी: तीनों भागों की समीक्षा की गई। "पैंतालीस वर्षों की तीर्थयात्रा" (1981–2026), "वर्ष 2008 में सेवानिवृत्ति" तथा "भारतीय सेना में चौबीस वर्षों की सेवा" — ये सभी विवरण पूर्व अध्यायों (38, 39) एवं लेखक की आधिकारिक जीवनी से पूर्णतः सुसंगत पाए गए। तीर्थ-नाम (ब्रह्मसरोवर, ज्योतिसर, सन्निहित सरोवर, स्थानेश्वर महादेव) पूर्व-सत्यापित सूची के अनुरूप सही हैं। लेखक की पदवी "सेवानिवृत्त मानद नायब सूबेदार" भी आधिकारिक अभिलेख से मेल खाती है। इस अध्याय में कोई तथ्यात्मक त्रुटि नहीं मिली, अतः कोई सुधार आवश्यक नहीं समझा गया।)

भाग - 1

प्रत्येक शोध-यात्रा का एक पड़ाव होता है, परन्तु उसका अंत नहीं होता। "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" का लेखन पूर्ण करते समय मेरे मन में यही भावना है कि यह ग्रंथ किसी यात्रा का समापन नहीं, बल्कि एक नए शोध-पथ का प्रारम्भ है। लगभग पैंतालीस वर्षों की तीर्थयात्राओं, अध्ययन, चिंतन, प्रत्यक्ष निरीक्षण और शोध-साधना का यह विनम्र परिणाम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

जब मैंने वर्ष 1981 में पहली बार एक साधारण तीर्थयात्री के रूप में कुरुक्षेत्र की यात्रा की थी, तब यह कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन यही भूमि मेरे जीवन के सबसे बड़े शोध-विषयों में से एक बन जाएगी। उस समय मेरे मन में केवल श्रद्धा थी, परन्तु समय के साथ अध्ययन, अनुभव और जीवन की परिस्थितियों ने उस श्रद्धा को शोध में परिवर्तित कर दिया।

भारतीय सेना में सेवा करते हुए मुझे देश के अनेक भागों को देखने का अवसर मिला। वर्ष 2008 में सेवानिवृत्ति के पश्चात मैंने यह निश्चय किया कि जीवन का शेष समय भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहरों के अध्ययन एवं लेखन को समर्पित करूँगा। इसके बाद मेरी प्रत्येक यात्रा केवल दर्शन नहीं, बल्कि एक शोध-अभियान बन गई। प्रत्येक स्थल पर इतिहास को समझने, प्रमाणों को खोजने और स्थानीय परंपराओं को जानने का प्रयास किया गया।

कुरुक्षेत्र पर कार्य करते हुए मैंने यह अनुभव किया कि इस पावन भूमि का वास्तविक इतिहास अभी भी पूरी तरह सामने नहीं आया है। अनेक प्राचीन तीर्थ, सरोवर, आश्रम, पुरातात्त्विक टीले और लोकपरंपराएँ आज भी गहन अध्ययन की प्रतीक्षा कर रही हैं। यही कारण है कि इस ग्रंथ में मैंने केवल उपलब्ध प्रमाणों को संकलित करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि जहाँ

संभव हुआ, वहाँ प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन के आधार पर तथ्यों को समझने और प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

यह पुस्तक लिखते समय मेरा उद्देश्य किसी मत, परंपरा या विचारधारा का प्रचार करना नहीं था। मेरा उद्देश्य केवल इतना था कि कुरुक्षेत्र की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आध्यात्मिक विरासत को प्रमाणिक रूप में पाठकों के समक्ष रखा जाए। यदि किसी विषय पर विभिन्न मत उपलब्ध थे, तो उन्हें संतुलित दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मेरा विश्वास है कि इतिहास का सम्मान तभी होता है, जब उसे पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर देखा जाए।

इस ग्रंथ के माध्यम से मैं विशेष रूप से नई पीढ़ी को यह संदेश देना चाहता हूँ कि अपने इतिहास और संस्कृति को जानना केवल अतीत का अध्ययन नहीं, बल्कि भविष्य के निर्माण की आधारशिला भी है। जो समाज अपनी सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखता है, वही आने वाले समय में आत्मविश्वास और गरिमा के साथ आगे बढ़ता है। कुरुक्षेत्र हमें यही शिक्षा देता है कि धर्म, कर्तव्य, सत्य और लोककल्याण के मार्ग पर चलना ही मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

भाग – 2

इस ग्रंथ के लेखन के दौरान मुझे बार-बार यह अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र केवल एक भौगोलिक क्षेत्र नहीं, बल्कि भारत की

सनातन चेतना का जीवंत स्वरूप है। यहाँ का प्रत्येक तीर्थ, प्रत्येक सरोवर, प्रत्येक प्राचीन मंदिर और प्रत्येक ऐतिहासिक स्थल मानो हमारी सभ्यता की हजारों वर्षों की यात्रा का साक्षी है। इस भूमि ने ऋषियों की तपस्या देखी, महाभारत के महान संघर्ष का साक्षात्कार किया और भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निकले श्रीमद्भगवद्गीता के अमर संदेश को विश्व तक पहुँचाया।

इस पुस्तक को लिखते समय अनेक बार ऐसा अनुभव हुआ कि मैं केवल इतिहास नहीं लिख रहा, बल्कि उस सांस्कृतिक विरासत को शब्द दे रहा हूँ, जो पीढ़ियों से भारतीय समाज की आत्मा में प्रवाहित होती रही है। प्रत्येक अध्याय के साथ मेरी अपनी जिज्ञासा भी बढ़ती गई और प्रत्येक शोध-यात्रा ने मुझे यह सिखाया कि ज्ञान का कोई अंतिम बिंदु नहीं होता। जितना अधिक अध्ययन किया, उतना ही यह अनुभव हुआ कि कुरुक्षेत्र के विषय में अभी बहुत कुछ जानना और समझना शेष है।

मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव के प्रति विशेष कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने जीवन के प्रत्येक चरण में मेरा साथ दिया। मेरी अधिकांश शोध-यात्राएँ उनके सहयोग से ही संभव हो सकीं। अनेक बार लंबी यात्राएँ, कठिन परिस्थितियाँ और निरंतर अध्ययन के बीच उनका धैर्य और सहयोग मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत बना। मेरे पोते भावेश वैष्णव और पोती दिव्यांशी स्वामी ने भी अनेक यात्राओं में सहभागी

बनकर यह विश्वास और दृढ़ किया कि हमारी सांस्कृतिक विरासत का संस्कार नई पीढ़ी तक अवश्य पहुँचना चाहिए।

मैं उन सभी विद्वानों, इतिहासकारों, पुरातत्वविदों, संत-महात्माओं, स्थानीय निवासियों, मंदिरों के पुजारियों और शोधकर्ताओं का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग से यह कार्य पूर्ण हो सका। उनके ज्ञान, अनुभव और मार्गदर्शन ने इस पुस्तक को अधिक प्रमाणिक और उपयोगी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय सेना में बिताए चौबीस वर्षों ने मुझे अनुशासन, धैर्य और राष्ट्रसेवा का जो संस्कार दिया, वही मेरी शोध-यात्राओं की सबसे बड़ी शक्ति बना। वर्ष 2008 में सेवानिवृत्ति के बाद मैंने यह निश्चय किया कि जीवन का शेष समय भारत की सांस्कृतिक धरोहर के अध्ययन और लेखन को समर्पित करूँगा। आज जब इस ग्रंथ का अंतिम अध्याय लिख रहा हूँ, तब संतोष है कि उस संकल्प की दिशा में एक और महत्वपूर्ण कदम पूर्ण हुआ है।

यह भी मेरा संकल्प है कि "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" का अंग्रेज़ी संस्करण भी प्रकाशित करूँ, ताकि विश्व के पाठक भी कुरुक्षेत्र की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महिमा को प्रमाणिक रूप में जान सकें। भारत की सांस्कृतिक धरोहर केवल भारत

की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता की साझा विरासत है, और उसे विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना हम सभी का दायित्व है।

अंत में मैं अपने पाठकों से केवल एक विनम्र आग्रह करना चाहता हूँ—यदि संभव हो तो कुरुक्षेत्र को केवल पुस्तकों में न पढ़ें, बल्कि स्वयं इस पवित्र भूमि पर आएँ। ब्रह्मसरोवर के तट पर कुछ क्षण मौन बैठें, ज्योतिसर में गीता के संदेश का स्मरण करें, सन्निहित सरोवर की आस्था को देखें, स्थानेश्वर महादेव के दर्शन करें और 48 कोस कुरुक्षेत्र के उन कम-ज्ञात तीर्थों तक भी पहुँचें, जहाँ आज भी इतिहास और आस्था साथ-साथ चलते हैं। तब अनुभव होगा कि कुरुक्षेत्र केवल एक तीर्थ नहीं, बल्कि भारत की आत्मा का एक जीवंत स्वरूप है।

यदि इस ग्रंथ के माध्यम से पाठकों में कुरुक्षेत्र के प्रति श्रद्धा, इतिहास के प्रति जिज्ञासा, शोध के प्रति रुचि और सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण का संकल्प जागृत होता है, तो मैं अपने इस दीर्घ शोध-प्रयास को सफल मानूँगा।

यही मेरी साधना है, यही मेरी लेखनी का उद्देश्य है और यही "सनातन कुरुक्षेत्र" की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

भाग – 3

अंतिम संदेश : मेरी लेखनी, मेरी साधना और मेरा संकल्प

जब मैं इस ग्रंथ का अंतिम पृष्ठ लिख रहा हूँ, तब मेरे मन में किसी पुस्तक के पूर्ण होने का अहंकार नहीं, बल्कि एक साधक

का विनम्र संतोष है। यह पुस्तक मेरे लिए केवल शब्दों का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन के अनुभवों, यात्राओं, अध्ययन, शोध, आस्था और तप का साकार रूप है। एक सैनिक के रूप में राष्ट्रसेवा और एक शोधकर्ता के रूप में संस्कृति-सेवा—इन दोनों यात्राओं ने मेरे जीवन को एक नया उद्देश्य दिया है।

वर्ष 1981 में कुरुक्षेत्र की पहली तीर्थयात्रा से लेकर आज तक की यात्रा पर जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा ने प्रत्येक कदम पर मेरा मार्गदर्शन किया। वर्ष 2008 में भारतीय सेना से सेवानिवृत्ति के बाद मैंने अपने जीवन का दूसरा अध्याय आरम्भ किया। उस दिन से आज तक मेरा प्रयास यही रहा कि भारत की प्राचीन सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक धरोहरों को प्रत्यक्ष देखकर, समझकर और प्रमाणिक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करूँ।

मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार किसी सम्मान, पुरस्कार या प्रसिद्धि से अधिक यह है कि मेरी पुस्तकें पढ़कर कोई पाठक किसी तीर्थ की यात्रा करने के लिए प्रेरित हो, कोई युवा अपने इतिहास पर शोध करने का निश्चय करे, या कोई परिवार अपने बच्चों को भारत की सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराने के लिए निकल पड़े। यदि ऐसा होता है, तो मेरी लेखनी का उद्देश्य सफल हो जाएगा।

मैं यह भी मानता हूँ कि किसी लेखक की वास्तविक पहचान उसकी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या से नहीं, बल्कि उसके लेखन की विश्वसनीयता और समाज पर उसके सकारात्मक प्रभाव से होती है। इसलिए मैंने इस ग्रंथ में यथासंभव प्रमाणिक स्रोतों, प्रत्यक्ष क्षेत्रीय अध्ययन, ऐतिहासिक तथ्यों और संतुलित दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी है। यदि भविष्य में नए प्रमाण सामने आते हैं, तो उनका स्वागत किया जाना चाहिए, क्योंकि शोध सदैव विकासशील प्रक्रिया है।

मेरी यह भी हार्दिक इच्छा है कि आने वाले वर्षों में 48 कोस कुरुक्षेत्र के प्रत्येक तीर्थ का विस्तृत दस्तावेजीकरण हो, प्रत्येक ऐतिहासिक स्थल का वैज्ञानिक संरक्षण हो और नई पीढ़ी इस धरोहर को केवल पुस्तकों में नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से जाने। यही इस पुस्तक का सबसे बड़ा संदेश है।

मैं परमपिता परमात्मा के प्रति अपनी अनंत कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे स्वास्थ्य, धैर्य, साहस और निरंतर कार्य करने की शक्ति प्रदान की। मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव, अपने परिवार, अपने सहयोगियों, मित्रों, स्थानीय विद्वानों, संत-महात्माओं तथा उन सभी ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों को हृदय से प्रणाम करता हूँ, जिनके सहयोग और शुभकामनाओं से यह कार्य पूर्ण हो सका।

अंत में मैं अपने पाठकों के समक्ष केवल एक प्रार्थना रखना चाहता हूँ–

अपनी सांस्कृतिक विरासत को जानिए, अपने तीर्थों को देखिए, अपने इतिहास को पढ़िए और आने वाली पीढ़ियों के लिए उसे सुरक्षित रखिए। यही हमारी सबसे बड़ी राष्ट्रीय सेवा होगी।

इसी भावना के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम नहीं, बल्कि एक नए संकल्प के साथ आगे बढ़ाता हूँ। अभी अनेक तीर्थ शेष हैं, अनेक इतिहास अनकहे हैं और अनेक शोध यात्राएँ मेरा इंतज़ार कर रही हैं। जब तक ईश्वर की कृपा, स्वास्थ्य और समय का साथ मिलेगा, तब तक यह साधना निरंतर चलती रहेगी।

"सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" का यह शोधग्रंथ श्रद्धा, अध्ययन और शोध का एक विनम्र प्रयास है। मैं इसे भगवान श्रीकृष्ण, पावन कुरुक्षेत्र की दिव्य भूमि और उन असंख्य ज्ञात-अज्ञात महापुरुषों को समर्पित करता हूँ, जिनकी तपस्या और त्याग ने इस भूमि को अमर बना दिया।

ॐ तत्सत्।

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

सेवानिवृत्त मानद नायब सूबेदार, भारतीय सेना | इतिहासकार | शोधकर्ता | लेखक

संदर्भ ग्रंथ-सूची

(क) वैदिक एवं प्राचीन धर्मग्रंथ

1. ऋग्वेद।

2. यजुर्वेद।

3. सामवेद।

4. अथर्ववेद।

5. ऐतरेय ब्राह्मण।

6. शतपथ ब्राह्मण।

7. तैत्तिरीय ब्राह्मण।

8. छान्दोग्य उपनिषद्।

9. बृहदारण्यक उपनिषद्।

10. कठोपनिषद्।

11. ईशावास्य उपनिषद्।

12. महाभारत (समालोचित संस्करण), भण्डारकर प्राच्यविद्या शोध संस्थान, पुणे।

13. श्रीमद्भगवद्गीता।

14. हरिवंश पुराण।

15. वामन पुराण।

16. स्कन्द पुराण।

17. ब्रह्म पुराण।

18. पद्म पुराण।

19. विष्णु पुराण।

20. भागवत महापुराण।

21. नारद पुराण।

22. मार्कण्डेय पुराण।

(ख) इतिहास एवं पुरातत्त्व

23. अलेक्ज़ेंडर कनिंघम – Ancient Geography of India.

24. अलेक्ज़ेंडर कनिंघम – Archaeological Survey Reports.

25. बी. बी. लाल – The Saraswati Flows On.

26. बी. बी. लाल – Mahabharata Sites in India.

27. एस. पी. गुप्ता – The Indus-Saraswati Civilization.

28. डी. पी. अग्रवाल – The Archaeology of India.

29. रोमिला थापर – Early India.

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

30. आर. सी. मजूमदार – The History and Culture of the Indian People.

31. एच. सी. रायचौधरी – Political History of Ancient India.

32. के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री – भारतीय इतिहास।

(ग) कुरुक्षेत्र एवं सरस्वती पर विशेष ग्रंथ

33. कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड – 48 कोस कुरुक्षेत्र।

34. कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड – तीर्थ सूचना पुस्तिकाएँ।

35. हरियाणा पर्यटन विभाग – Kurukshetra Travel Guide.

36. हरियाणा सरकार – कुरुक्षेत्र संबंधी आधिकारिक प्रकाशन।

37. हरियाणा पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग – वार्षिक प्रतिवेदन।

38. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ए.एस.आई.) – संरक्षित स्मारकों की सूची।

39. सरस्वती नदी शोध प्रकाशन।

40. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय – शोध पत्र एवं शोध प्रबंध।

(घ) सरकारी स्रोत

41. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ए.एस.आई.)।

42. संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार।

43. पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार।

44. हरियाणा सरकार।

45. कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड।

46. हरियाणा पर्यटन निगम।

47. भारतीय पुरालेख सर्वेक्षण।

48. भारत का राजपत्र (Gazette of India) — आवश्यक अधिसूचनाएँ।

(ङ) शोध-पत्र एवं जर्नल

49. Indian Historical Review.

50. Puratattva (Indian Archaeological Society).

51. Man and Environment.

52. Journal of Indian History.

53. Proceedings of Indian History Congress.

54. Bulletin of the Deccan College.

55. Kurukshetra University Research Journal.

(च) डिजिटल एवं आधिकारिक स्रोत

56. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ए.एस.आई.) का आधिकारिक पोर्टल।

57. संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार का आधिकारिक पोर्टल।

58. हरियाणा सरकार का आधिकारिक पोर्टल।

59. कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड का आधिकारिक पोर्टल।

60. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का आधिकारिक पोर्टल।

61. भारतीय राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (एन.डी.एल.आई.)।

62. डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया।

63. इंटरनेट आर्काइव (संदर्भ सामग्री हेतु)।

64. राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारत।

(छ) लेखक का क्षेत्रीय अध्ययन

65. लेखक द्वारा वर्ष 1981 से 2026 के मध्य कुरुक्षेत्र क्षेत्र की प्रत्यक्ष तीर्थ-यात्राएँ।

66. वर्ष 2008 से 2026 के मध्य की शोध-यात्राएँ एवं क्षेत्रीय सर्वेक्षण।

67. अड़तालीस कोस कुरुक्षेत्र के प्रमुख एवं गौण तीर्थों का प्रत्यक्ष निरीक्षण।

68. स्थानीय विद्वानों, पुजारियों एवं ग्रामीणों से प्राप्त मौखिक साक्षात्कार।

69. लेखक द्वारा संकलित फोटोग्राफिक दस्तावेज़।

70. लेखक की क्षेत्रीय अध्ययन-डायरी एवं शोध-नोट्स।

लेखक के मौलिक शोध

71. नरेश दास वैष्णव निम्बार्क – सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि (प्रस्तुत शोधग्रंथ)।

72. नरेश दास वैष्णव निम्बार्क – बंदूक से कलम तक।

73. नरेश दास वैष्णव निम्बार्क – रामनगर : 422 वर्षों का अनसुना इतिहास।

74. नरेश दास वैष्णव निम्बार्क – स्वर्णप्रस्थ की गाथा।

75. नरेश दास वैष्णव निम्बार्क – जगद्गुरु निम्बार्काचार्य : सनातन के सूर्य (हिंदी एवं अंग्रेज़ी संस्करण सहित अन्य प्रकाशित कृतियाँ)।

आभार

"सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" के लेखन एवं शोध-कार्य को पूर्ण करने में अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। मैं उन सभी के प्रति हृदय से अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

सबसे पहले मैं कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड, हरियाणा के मानद सचिव श्री उपेन्द्र सिंगल जी का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। उन्होंने न केवल मेरा आत्मीय स्वागत किया, बल्कि 48 कोस

कुरुक्षेत्र के अध्ययन हेतु हर संभव सहयोग प्रदान किया। उन्होंने मुझे 48 कोस कुरुक्षेत्र तीर्थ-विवरणिका, हिंदी एवं अंग्रेज़ी में आधिकारिक 48 कोस कुरुक्षेत्र मानचित्र, तथा अन्य उपयोगी संदर्भ-सामग्री उपलब्ध कराई। इन आधिकारिक प्रकाशनों ने मेरी शोध-यात्रा को अधिक व्यवस्थित, प्रामाणिक और उद्देश्यपूर्ण बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मैं विशेष रूप से श्रीकृष्ण संग्रहालय, कुरुक्षेत्र के प्रभारी श्री बलवान जी का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। मानद सचिव श्री उपेन्द्र सिंगल जी ने स्वयं उन्हें दूरभाष पर मेरे शोध-कार्य के संबंध में अवगत कराया और आवश्यक सहयोग देने का अनुरोध किया। जब मैं श्रीकृष्ण संग्रहालय पहुँचा, तब श्री बलवान जी ने अत्यंत आत्मीयता और सम्मान के साथ मेरा स्वागत किया। उन्होंने संग्रहालय का विस्तृत अवलोकन कराने के लिए एक कर्मचारी को मेरे साथ नियुक्त किया, जिसने संग्रहालय की प्रत्येक दीर्घा, महाभारत से संबंधित प्रदर्शनियों, दुर्लभ कलाकृतियों और ऐतिहासिक सामग्री का विस्तार से परिचय कराया। मुझे आवश्यक छायाचित्र लेने तथा अध्ययन करने की भी पूरी सुविधा प्रदान की गई। यह सहयोग मेरे लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ।

मैं अपने समाज के वरिष्ठ एवं सम्मानित व्यक्तित्व मास्टर श्री ओमप्रकाश बैरागी जी के प्रति भी विशेष आभार व्यक्त करता हूँ, जो वर्तमान में कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड में मार्गदर्शक के

रूप में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। वे समाजसेवा के प्रति पूर्णतः समर्पित, निःस्वार्थ एवं कर्मठ व्यक्तित्व हैं। जब मैंने उन्हें अपनी शोध-यात्रा की सूचना दी, तब उन्होंने पूरे उत्साह के साथ मेरा मार्गदर्शन करने का निर्णय लिया। वे स्वयं कुरुक्षेत्र की बैरागी धर्मशाला में मुझसे मिले और वहाँ से मुझे कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड लेकर गए। इसके पश्चात् 48 कोस कुरुक्षेत्र की यात्रा के दौरान वे छाया की भाँति मेरे साथ रहे। उनके स्थानीय ज्ञान, अनुभव और मार्गदर्शन के कारण अनेक ऐसे तीर्थों, स्थलों और ऐतिहासिक तथ्यों तक पहुँचना संभव हुआ, जो इस शोधग्रंथ की प्रामाणिकता को और अधिक समृद्ध बनाते हैं।

मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निर्मला वैष्णव का विशेष आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मेरी अधिकांश शोध-यात्राओं में सहयात्री बनकर निरंतर सहयोग और उत्साह प्रदान किया। साथ ही अपने पौत्र भावेश वैष्णव एवं पौत्री दिव्यांशी स्वामी का भी स्नेहपूर्वक उल्लेख करता हूँ, जिन्होंने अनेक यात्राओं में सहभागी होकर हमारी सांस्कृतिक विरासत के प्रति अपनी रुचि और श्रद्धा का परिचय दिया।

अंत में मैं परमपिता परमात्मा, अपने गुरुजनों, परिवार, मित्रों, स्थानीय विद्वानों, मंदिरों के पुजारियों, ग्रामीणों तथा उन सभी ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त

करता हूँ, जिनके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहयोग से यह शोधग्रंथ पूर्ण हो सका।

यह ग्रंथ उन सभी सहयोगियों को सादर समर्पित है, जिन्होंने मेरे शोध-पथ को सरल, सार्थक एवं सफल बनाया।

— नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

सेवानिवृत्त मानद नायब सूबेदार, भारतीय सेना | इतिहासकार | शोधकर्ता | लेखक

लेखक-परिचय

नरेश दास वैष्णव निम्बार्क

मानद नायब सूबेदार (सेवानिवृत्त), भारतीय सेना | इतिहासकार | स्वतंत्र शोधकर्ता | लेखक | पत्रकार

नरेश दास वैष्णव निम्बार्क भारतीय सेना के मानद नायब सूबेदार (सेवानिवृत्त), इतिहासकार, स्वतंत्र शोधकर्ता, लेखक एवं पत्रकार हैं। उन्होंने लगभग 24 वर्षों तक भारतीय सेना में राष्ट्रसेवा की। उनकी सैन्य सेवा में ऑपरेशन विजय (कारगिल युद्ध, 1999) तथा संयुक्त राष्ट्र शांति मिशन (UNAMSIL), सिएरा लियोन, पश्चिमी अफ्रीका (2000) जैसी महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ शामिल रहीं।

वर्ष 1981 से प्रारम्भ हुई उनकी तीर्थयात्राएँ वर्ष 2008 में सेना से सेवानिवृत्ति के पश्चात् व्यवस्थित शोध-यात्राओं में परिवर्तित हुईं। तब से उन्होंने भारत के अनेक तीर्थों, प्राचीन नगरों, ऐतिहासिक स्थलों और पुरातात्त्विक धरोहरों का प्रत्यक्ष अध्ययन कर उन्हें प्रामाणिक स्रोतों, सरकारी अभिलेखों, पुराणों तथा स्थानीय परंपराओं के आधार पर शोध-ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत किया है।

वे विशेष रूप से सनातन वैष्णव बैरागी परंपरा, भारतीय संत-परंपरा, प्राचीन तीर्थों, स्थानीय इतिहास तथा सांस्कृतिक विरासत के शोध के लिए जाने जाते हैं। उनका उद्देश्य केवल इतिहास लिखना नहीं, बल्कि भारत की उपेक्षित धरोहरों का संरक्षण और आने वाली पीढ़ियों तक उनका प्रामाणिक स्वरूप पहुँचाना है।

अब तक उनकी 16 स्वतंत्र पुस्तकें (7 हिंदी एवं 9 अंग्रेज़ी) प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत ग्रंथ "सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि" उनकी सत्रहवीं पुस्तक तथा आठवीं हिंदी पुस्तक है। इसका अंग्रेज़ी संस्करण भी प्रकाशित करने की योजना है।

प्रकाशित हिंदी पुस्तकें

1. जगद्गुरु निम्बार्काचार्य : सनातन के सूर्य

सनातन कुरुक्षेत्र : सृष्टि, सरस्वती और भगवान श्रीकृष्ण की अमर भूमि

2. सनातन वैष्णव बैरागी परंपरा – वेदों से आधुनिक भारत तक

3. स्वर्णप्रस्थ की गाथा

4. रामनगर : 422 वर्षों का अनसुना इतिहास

5. रणभूमि से तीर्थभूमि तक : एक सैनिक की अमर गाथा

6. यात्रा : बंदूक से कलम तक

7. महंत बने महाराजा

Published Books in English

1. The Sanatan Vaishnav Bairagi Tradition

2. The Saga of Swarnprastha

3. Rosary and the Throne: The Vaishnav Bairagi Rulers

4. Jagatguru Nimbarkacharyaji: Sanatan Ke Surya

5. Ramnagar: 422 Years of Untold History

6. The Royal Legacy of the Sanatan Vaishnav Bairagis

7. The Vaishnav Bairagi Kings of India

8. Nimbark Sampradaya: Sanatan Vaishnav Bairagi Tradition

9. Sanatan Vaishnav Bairagi: Forgotten Warriors & Soldiers

लेखक "सनातन भारत - नया सवेरा" मासिक ई-पत्रिका के संस्थापक एवं प्रधान संपादक भी हैं। उनकी पुस्तकें एवं शोध-कार्य Amazon, Notion Press, Google Play Books तथा अन्य

अंतरराष्ट्रीय मंचों के माध्यम से विश्वभर के पाठकों तक पहुँच रहे हैं।

"सैनिक राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा करता है, जबकि लेखक और शोधकर्ता राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता और इतिहास को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखते हैं।"

आधिकारिक वेबसाइट : www.nareshswaminimbark.in